Ph.D THESIS

“समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला कहानीकारों की कहानियों में प्रतिरोधी चेतना (2000 से 2010 तक की कहानियों के विशेष सन्दर्भ में)”

SAMAKALEEN HINDI-MALAYALAM MAHILA KAHANIKARON KI KAHANIYON MEIN PRATIRODHI CHETNA (2000 SE 2010 TAK KI KAHANIYON KE VISHESH SANDARBH MEIN)

Thesis

Submitted to

Cochin University of Science and Technology

For the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

In

HINDI

Under the Faculty of Humanities

By

सजना बीगम के.एच

SAJANA BEEGUM. K.H

Dr. K. AJITHA

Supervising Teacher

Professor and Head of the Department

Department of Hindi

Cochin University of Science and Technology

Kochi-682 022

February 2018

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis entitled **“SAMAKALEEN HINDI – MALAYALAM MAHILA KAHANIKARON KI KAHANIYON MEIN PRATIRODHI CHETANA (2000 SE 2010 TAK KI KAHANIYON KE VISHESH SANDARBH MEIN) “** is a bonafide record of work carried out by SAJANA BEEGUM K. H under my supervision for Ph.D. (Doctor of philosophy) Degree and no part of this has either to been submitted for a degree in any university. All the relevant corrections and modifications suggested by the audience during the pre-synopsis seminar and recommended by the Doctoral committee of the candidate has been incorporated in the thesis.

Prof. K. AJITHA

(Supervising Teacher)

Professor & Head of the Department

Department of Hindi

Cochin University of Science

And Technology

Kochi – 682 022

Place:
Date:

DECLARATION

I hereby declare that the work presented in this thesis is entitled **"SAMAKALEEN HINDI–MALAYALAM MAHILA KAHANIKARON KI KAHANIYON MEIN PRATIRODHI CHETANA (2000 SE 2010 TAK KI KAHANIYON KE VISHESH SANDARBH MEIN)"**based on the original work done by me under the guidance of Dr. K Ajitha, Professor, Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, Cochin-682022 and no part of this dissertation has been included in any other thesis submitted Previously for the award of any degree in any University.

SAJANA BEEGUM K H

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE
AND TECHNOLOGY
KOCHI- 682022.

Place : Kochi

Date :

पुरोवाक्

समाज में हज़ारों सालों से पुरुष का स्त्री पर वर्चस्व बरकरार रहा है। वर्चस्व हमेशा शोषित व उत्पीडित जनता को शोषण एवं दमन सहने के लिए मजबूर बनाता है। यह स्त्री के पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों की समस्याओं को बहुत जटिल बनाता है। कानूनन, स्त्री के उत्थान के लिए अनेक नियम बनाए हैं लेकिन पितृसत्तात्मक समाज इन्हें सहज रूप में स्वीकारने के लिए तैयार नहीं। स्त्रियाँ आज अपने साथ हो रहे अन्याय को पहचानने लगी हैं। अपनी पहचान की लड़ाई स्त्रियों को स्वयं लडनी है। शिक्षित चेतना संपन्न आत्मसजग स्त्रियाँ न तो शोषित होना चाहती हैं न ही विद्रोही। वे अपनी क्षमता के अनुसार इन दोनों से अलग रास्ता अख्तियार करने में जुडी हुई हैं। वे समाज में समानता की साझेदारी चाहती हैं कि पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर चल सकें न आगे न पीछे। सामाजिक दशा में सुधार लाने के लिए प्रतिरोध की आवश्यकता को वे महसूसने लगी हैं। अपने अस्तित्व के प्रति सजग होने से ही प्रतिरोध उत्पन्न होता है। प्रतिरोध अहिंसात्मक है , वह विश्वव्यापी सत्यों को उजागर करता है। ख़ास तौर पर बराबरी के समाज की माँग करती हैं। समाज में शांति के लिए प्रतिरोध का महत्वपूर्ण योगदान है। यह समाज में दमन एवं वर्चस्व के खिलाफ है। इसलिए प्रतिरोध अस्वीकार से ही शुरू होता है। स्त्री-प्रतिरोध यह माँग करता है कि पुरुष सत्तात्मक समाज अपने वर्चस्व से मुक्त हो जाए और स्त्री की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकारें। आज स्त्रियाँ प्रतिरोध का उपयोग अपने विकास के लिए मात्र न कर व्यापक समाज की भलाई के लिए कर रही हैं जिसमें पर्यावरण हो, आदिवासी हो या दलित हो सब शामिल हो जाते हैं। वे अपने साथ इन हाशिएकृतों की अस्मिता व अस्तित्व के लिए आवाज़ उठा रही हैं।

समकालीन साहित्य प्रतिरोध का साहित्य है। प्रतिरोध के माध्यम से साहित्यकार समाज को सही रास्ता दिखलाने की कोशिश में है। प्रतिबद्ध साहित्यकार जनविरोधी शासकवर्गों के विपक्ष में हैं और वे सत्ता का विरोध कर रहे हैं। इनमें हिंसा का भाव तनिक भी नहीं है।

साहित्यकारों का लक्ष्य केवल समाज को स्वत्व बनाना है जिसमें मानव चैन से जी सके । समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला लेखिकाएँ स्वातंत्रता , समता, न्याय, बंधुता पर आधारित एक समाज के निर्माण के लिए प्रतिरोध का समर्थन कर रही हैं । वे अपने जीवन और जीवनदृष्टि से अर्जित किए अनुभावों के द्वारा समाज में परिवर्तन लाना चाहती हैं । मानव की गरिमा पर आधारित एक समाज उनका सपना है जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों में किसी भी तरह का भेदभाव न हो । वे स्त्री समाज की प्रगति के साथ हाशिएकृतों की प्रगति के लिए भी संघर्ष कर रही हैं । वे यह पहचान गयी हैं कि प्रकृति पर अंधाधुंध शोषण मानव द्वारा हो रहा है । प्रकृति के बिना मानव का अस्तित्व खतरे में पड जाएगा । स्त्री प्रतिरोध, मानव और प्रकृति को घुलमिलकर जीने की आवश्यकता पर ज़ोर दे रहा है ताकि पृथ्वी पर एक शांत वातावरण उत्पन्न हो जाए ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला कहानीकारों की इस प्रतिरोधी चेतना पर आधारित है । शोध प्रबंध का शीर्षक है **“समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला कहानीकारों की कहानियों में प्रतिरोधी चेतना (2000 से 2010 तक की कहानियों के विशेष सन्दर्भ में)”** ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है । पहला अध्याय है- **‘साहित्य और प्रतिरोधी चेतना’** । इस अध्याय में साहित्य और मानवता एवं साहित्य की प्रतिपक्ष धर्मिता पर विचार किया गया है । पाश्चात्य सन्दर्भ में, भारतीय सन्दर्भ में और केरलीय सन्दर्भ में स्त्री के प्रतिरोध पर विचार करते हुए आदिवासी एवं दलित के जीवन यथार्थ का परिचय भी इसमें दिया गया है । प्रकृति पर मानव द्वारा किए जा रहे शोषण एवं उससे उत्पन्न आपदाओं को भी इसमें अंकित किया है ।

दूसरा अध्याय- **‘स्त्री-प्रतिरोध और समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला कहानीकार’** है । इसमें विशेष तौर पर समकालीनता पर विचार करते हुए समकालीन महिला लेखन की

विशेषताओं को रेखांकित किया है साथ ही हिन्दी और मलयालम की लेखिकाओं का परिचय भी दिया गया है ।

तीसरा अध्याय **'समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला कहानियों में स्त्री-प्रतिरोध; सामाजिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भ में'** है । इस अध्याय में पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में स्त्री पर हो रहे शोषण से लेखिकाएँ पाठकों को किस प्रकार अवगत कराती हैं इस पर विचार किया गया है । प्रतिरोध के माध्यम से वे अपनी कहानियों में इन क्षेत्रों में स्त्रियों के साथ हो रहे शोषण ख़त्म करने के प्रयास में हैं, यह तथ्य प्रस्तुत है ।

चौथा अध्याय है **'समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला कहानियों में स्त्री-प्रतिरोध: आर्थिक एवं राजनैतिक सन्दर्भ में'** । इस अध्याय में आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होने के लिए प्रयास करती स्त्री को किन-किन यातनाओं का सामना करना पड़ता है और इन विपरीत परिस्थितियों से उनके उभरने की कोशिश को लेखिकाओं ने अपनी कहानियों के ज़रिए उकेरा है । आरक्षण मिलने पर भी राजनीतिक क्षेत्र में स्त्रियों का प्रवेश कम ही हुआ है । यह पहचानती लेखिकाएँ सत्ता में स्त्रियों के प्रवेश से समाज में होनेवाले सकारात्मक बदलाव की ओर पाठकों की श्रद्धा आकर्षित करती हैं । इन्हीं विषयों को इस अध्याय में रेखांकित किया गया है ।

पाँचवां अध्याय है **'समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला कहानियों में स्त्री-प्रतिरोध; पर्यावरण संकट एवं अन्य हाशिएकृतों के सन्दर्भ में'** । इसमें स्वच्छ पर्यावरण की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया है । समकालीन महिला कहानीकारों ने अपनी कहानियों में प्रकृति के बचाव के साथ-साथ अन्य हाशिएकृत समाज जैसे दलित, आदिवासी , उन्हें भी उभारने का प्रयास किया है । इस पर विस्तृत चर्चा इस अध्याय में प्रस्तुत है ।

अंत में उपसंहार है । इसमें उपर्युक्त पाँच अध्यायों में प्रस्तुत विचारों का निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है ।

प्रस्तुत शोधकार्य, कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्विद्यालय, हिन्दी विभाग की विभागाध्यक्षा डॉ. के. अजिता के मार्गनिर्देशन में संपन्न हुआ है। उनके सहयोग और प्रेरणा से ही अपना शोधकार्य बिना कोई विलंब के आगे बढ़ा। उनके प्यार और ममता के लिए मैं सदैव उनके प्रति आभारी रहूँगी।

प्रो. डॉ. एन.जी. देवकी मेरे शोधकार्य की विशेषज्ञा रही हैं। विषय संबंधी जुड़े हुए उनके निर्देश और सुझाव मुझे हमेशा मिलते रहे। इसमें मेरे शोध को सही दिशा देने में मदद की। मैं उनके प्रति हमेशा कृतज्ञ रहूँगी।

प्रो. डॉ. आर. शशिधरन, प्रो. डॉ. के. वनजा और प्रो. डॉ. एन. मोहनन आदि मेरे गुरुजनों ने मेरे मन में उठनेवाले सवालों के समाधान ढूँढ़ निकालने में मदद की थी। मैं उनके प्रति आभारी हूँ। इस शोधकार्य की पूर्ति के लिए यहाँ के पुस्तकालय का योगदान बहुत महत्वपूर्ण रहा। पुस्तकालय के कर्मचारियों एवं विभाग के कर्मचारियों के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ। हिन्दी विभाग के सभी शोध छात्र-छात्राओं के प्रति मैं अपनी कृराज्ञता प्रकट करती हूँ। मेरे परिवार के सभी सदस्यों के प्रति भी मैं आभारी हूँ।

उस महान ईश्वर के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ जिनकी कृपा हमेशा मेरे साथ बनी रही। मेरा यह शोध प्रबंध विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करती हूँ।

सविनय,

सजनाबीगम् के.एच

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग

कोच्चिन विज्ञान व

प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्चिन- 22

तारीख :

विषयानुक्रमणिका

पहला अध्याय **पृ . सं**

साहित्य और प्रतिरोधी चेतना 1 - 78

1.1 साहित्य और मानवजीवन

1.2 साहित्य और प्रतिपक्ष संस्कृति

1.2.1 भक्तिकाल की प्रतिपक्षधर्मिता

1.2.2 आधुनिककाल की प्रतिपक्षधर्मिता

1.3.1 पाश्चात्य परिदृश्य

1.3.2 स्त्रीपक्ष चिंतन की मुख्य धाराएँ

1.3.2.1 उदारवादी स्त्रीवाद

1.3.2.2 उग्र उन्मूलनवादी स्त्रीवाद

1.3.2.3 मनोविश्लेषणात्मक स्त्रीवाद एवं फ्रांसीसी स्त्रीवाद

1.3.2.4 मार्क्सवादी एवं समाजवादी स्त्रीवाद

1.3.2.5 उत्तर आधुनिक स्त्रीविमर्श

1.3.2.6 पारिस्थितिक स्त्रीवाद

1.3.3 भारतीय परिदृश्य

1.3.3.1 थेरीगाथाएँ

1.3.3.2 भक्तिआन्दोलन में स्त्रियों की भूमिका

1.3.3.3 नवजागरण का स्त्री पक्ष

1.3.3.4 भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम और स्त्रियाँ

1.3.3.5 साहित्य में स्त्री चेतना के चार हस्तक्षेप

1.3.3.5.1 बंग महिला

1.3.3.5.2 ताराबाई शिन्दे

1.3.3.5.3 अज्ञात हिन्दू औरत

1.3.3.5.4 सुभद्राकुमारी चौहान

1.3.3.5.5 महादेवी वर्मा

1.3.3.5.6 स्वतंत्र भारत में नारी मुक्ति - आन्दोलन

1.3.4 केरलीय परिदृश्य

1.4 अन्य हाशियेकृतों का प्रतिरोध

1.4.1 दलितों की संवेदना एवं प्रतिरोध

1.4.1.1 दोहरी मार को झेलती दलित स्त्री का प्रतिरोध

1.4.2 आदिवासी की संवेदना एवं प्रतिरोध

1.4.2.1 आदिवासी समाज की स्त्रियाँ

1.4.3 पर्यावरण और स्त्री प्रतिरोध

1.4.4 वेश्या, वृद्ध आदि की संवेदना एवं उभार

1.4.4.1 वेश्या जीवन

1.4.4.2 वृद्ध जीवन

निष्कर्ष

दूसरा अध्याय

स्त्री-प्रतिरोध और समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला कहानीकार 79-144

2.1 समकालीनता

2.2 स्त्री का प्रतिरोध और समकालीन महिला लेखन

2.2.1 समकालीन हिन्दी महिला कहानीकार

2.2.1.1 कृष्णा सोबती

2.2.1.2 मन्नू भण्डारी

2.2.1.3 उषा प्रियंवदा

2.2.1.4 शशिप्रभा शास्त्री

2.2.1.5 ममता कालिया

2.2.1.6 दीप्ति खण्डेलवाल

2.2.1.7 मृणाल पाण्डेय

2.2.1.8 मृदुला गर्ग

2.2.1.9 चित्रा मुद्गल

2.2.1.10 राजी सेठ

2.2.1.11 मंजुल भगत

2.2.1.12 मणिका मोहिनी

2.2.1.13 प्रतिमा वर्मा

2.2.1.14 सुधा अरोडा

2.2.1.15 सूर्यबाला

2.2.1.16 मेहरुन्निसा परवेज़

2.2.1.17 इन्दु बाली

2.2.1.18 मालती जोशी

2.2.1.19 कृष्णा अग्निहोत्री

2.2.1.20 चन्द्रकान्ता

2.2.1.21 कुसुम चतुर्वेदी

2.2.1.22 मैत्रेयी पुष्पा

2.2.1.23 नमिता सिंह

2.2.1.24 उषाकिरन खान

2.2.1.25 कमलकुमार

2.2.1.26 नासिरा शर्मा

2.2.1.27 ऋता शुक्ल

2.2.1.28 गीताञ्जलि श्री

2.2.1.29 लवलीन

2.2.1.30 मुक्ता

2.2.1.31 अलका सरावगी

2.2.1.32 अरुणा सीतेश

2.2.1.33 मीराकांत

2.2.1.34 क्षमा शर्मा

2.2.1.35 शरद सिंह

2.2.1.36 कविता

2.2.1.37 उर्मिला शिरीष

2.2.1.38 दीपक शर्मा

2.2.2 समकालीन मलयालम कहानीकार

2.2.2.1 माधविक्कुट्टी

2.2.2.2. सारा तोमस

2.2.2.3 सारा जोसफ

2.2.2.4 अषिता

2.2.2.5 गीता हिरण्यन

2.2.2.6 चन्द्रमती

2.2.2.7 पी. वत्सला

2.2.2.8 ग्रेसी

2.2.2.9 बी.एम. सुहरा

2.2.2.10 मानसी

2.2.2.11 श्रीकुमारी रामचन्द्रन

2.2.2.12 प्रिया ए.एस.

2.2.2.13 सितारा एस.

2.2.2.14 के.पी. सुधीरा

2.2.2.15 सिल्विक्कुट्टी

2.2.2.16 सी.एस. चन्द्रिका

2.2.2.17 के.आर. मीरा

2.2.2.18 इन्दु मेनोन

2.2.2.19 तनूजा एस. भट्टतिरी

2.2.2.20 डॉ. लता लक्ष्मी

निष्कर्ष

तीसरा अध्याय

समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला कहानियों में स्त्री - प्रतिरोध : सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ में 145-253

3.1 स्त्री: व्यक्ति की अहमियत

3.1.1 जीवन साथी का चयन

3.1.2 अकेले जीने का फैसला

3.1.3 अस्मिता की पहचान

3.2 स्त्री जीवन का पारिवारिक संदर्भ

3.2.1 माँ की संवेदना

3.2.2 पति-पत्नी संबन्ध

3.2.2.1 शारीरिक शोषण

3.2.2.2 तलाक की माँग

3.2.2.3 दूसरी औरत की समस्या

3.3 स्त्री जीवन का सामाजिक संदर्भ

3.3.1 कामुक दृष्टि की शिकार

3.3.2 बलात्कार की शिकार

3.3.3 दहेज विरोधी स्वर

3.3.4 स्त्री-पुरुष संबन्ध

3.3.4.1 कुँवारी माँ

3.3.4.2 अवैध संबन्ध

3.3.4.3 वेश्याजीवन

3.3.4.4 बाल विवाह

3.3.4.5 सहजीवन

3.3.4.6 समलैंगिकता

3.3.5 विधवा जीवन

3.3.6 वृद्धजीवन

3.3.7 बालिकाओं का यौन शोषण

3.3.8 शिक्षा प्रतिरोध की बुनियाद

3.4 सांस्कृतिक प्रतिरोध

3.4.1 लिंग भेद की शिकार

3.4.2 नवउपनिवेशवादी संस्कृति

3.4.2.1 सौंदर्य प्रतियोगिता

3.4.2.2 ब्राण्ड संस्कृति

3.5 धार्मिक प्रतिरोध

3.5.1 परंपरा

3.5.2 धार्मिक रूढ़ियाँ

3.5.3 खान-पान

3.5.4 वेश-भूषा बदलती नैतिक दृष्टि

3.5.5 हक की माँग

3.5.6 धर्म परिवर्तन

निष्कर्ष

चौथा अध्याय

समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला कहानियों में स्त्री प्रतिरोध : आर्थिक एवं राजनीतिक संदर्भ में 254 - 304

4.1 स्त्री जीवन का आर्थिक सन्दर्भ में

4.1.1.1 पुरुष केन्द्रित अर्थ व्यवस्था

4.1.1.2 निर्णय की क्षमता

4.1.1.3 आजीविका के लिए वेश्यावृत्ति

4.1.1.4 कामुक दृष्टि के प्रति सजग नारी

4.1.1.5 आत्मनिर्भर होने का प्रयत्न

4.1.1.6 संपत्ति में हिस्सेदारी

4.2 स्त्री जीवन का राजनीतिक संदर्भ

4.2.1 स्त्री : सजग नागरिक

4.2.2 सत्ताधारी स्त्री

4.2.3 कानून

4.2.4 सांप्रदायिकता के खिलाफ

4.2.4.1 अत्याचार की शिकार

4.2.4.2 मानवीय संवेदना के पक्षधर

4.2.5 उग्रवाद या आतंकवाद का विरोध

निष्कर्ष

पाँचवाँ अध्याय

समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला कहानियों में स्त्री - प्रतिरोध :

पर्यावरण संकट एवं अन्य हाशिएकृतों के संदर्भ में 305 - 348

5.1 पर्यावरण संकट

5.1.1 जीव-जन्तुओं का बचाव

5.1.2 नदी का बचाव

5.1.3 पेड़-जंगल का बचाव

5.2 दलित जीवन यथार्थ

5.2.1 दलित स्त्रियों का प्रतिरोध

5.2.1.1 परिवार में स्त्री

5.2.1.2 सत्ता के प्रति विद्रोह

5.2.1.3 जाति संस्कृति का विरोध

5.2.1.4 शिक्षा की मुक्ति

5.2.1.5 अस्मिता की तलाश

5.3 आदिवासी जीवन यथार्थ

5.3.1 आदिवासी स्त्रियों का प्रतिरोध

5.3.1.1 प्रकृति और आदिवासी स्त्री

5.3.1.2 विस्थापन से मुक्ति

5.3.1.3 शारीरिक शोषण

5.3.1.4 पारिवारिक संघर्ष

5.3.1.5 दिकुओं के खिलाफ

5.3.1.6 कानून के खिलाफ

5.3.1.7 शिक्षा का महत्व

निष्कर्ष **349 - 359**

सहायक ग्रंथ सूची **360 - 383**

परिशिष्ट **384 - 385**

पहला अध्याय

साहित्य और प्रतिरोधी चेतना

पहला अध्याय

साहित्य और प्रतिरोधी चेतना

'सहित' शब्द से बने साहित्य में सामूहिकता का भाव अन्तर्निहित है और उसका सबसे बड़ा हित मानव में सद्वृत्तियों को जगाना है। अतीत में नज़र डालने पर हमें यह महसूस होता है कि हर एक काल में समाज में व्यक्ति या वर्ग नैतिक और मानसिक संघर्ष से गुज़रता रहा। वह इस दमित स्थिति से ऊपर उठकर बेहतर जीवन जीना चाहता भी रहा। लेकिन समाज में स्थापित मान्यतायें उसके प्रयत्नों पर रोक लगा देती रही है ताकि इससे उसकी परंपरा द्वारा स्थापित किये गए आदर्श न टूटें। तब समाज का प्रतिनिधित्व करनेवाला साहित्यकार का फर्ज बनता है कि वह अपने अस्तित्व को खतरे में डालकर इन रूढ़ियों से टक्कर लें। इस खतरे की स्वीकृति ही उसकी सजीवता को बनाये रखती है। यही साहित्य एवं साहित्यकार का प्रतिरोध है।

साहित्यकार के सामने सबसे बड़ी चुनौती है संवेदना का पुनःसंस्कार करना और समाज के प्रति उत्तरदायित्व निभाना। समाज में बहुत सी विषमताएँ हैं। लेखक पाठकों को उन विषमताओं से साक्षात् कराता है। "रचना हमें जीवन के उतार-चढ़ावों, लहरों, आँधियों हर तरह के चोटों और ठेसों से साक्षात्कार कराती है। रचनाकार इन्हें तभी अभिव्यक्ति कर सकता है जब उसने अपने से बाहर निकलकर दूसरों की जिन्दगी में पैठने का प्रयास किया हो। जिन्दगी जैसी है, वैसी जस-की-तस, चाहे वो कितनी ही कुरूप, निर्मम, भद्दी क्यों न हो उसके सारे पहलुओं को छूने का

साहस दिखाया है। इन्हीं से रचना की शक्ति का विकास होता है।"[1] इस प्रकार लेखक की चेतना में आस पास होनेवाली घटनाएँ मौजूद रहती हैं। यह चेतना विवेकाधिष्ठित होती है। साहित्य का विषय लेखक की चेतना से ही उपजता है।

अपने विवेक पर निर्दिष्ट होकर जीना लेखक को स्वाधीन बनाता है और स्वतंत्र अभिव्यक्ति की ओर प्रेरित करता है। अज्ञेय के शब्दों में "लेखक को वह स्थिति और वातावरण खोजना और गढ़ना है जिसमें स्वाधीन व्यक्तित्व पनप सके, उन साधनों को पाना और बनाना है जिनके द्वारा वह व्यक्तित्व अभिव्यक्त हो सके। उसे न समष्टि में विलीन हो जाना है, न निरे स्वच्छन्दतावाद में पलायित होना है; न सर्वसत्तावाद स्वीकार करना है, न सम्पूर्ण अराजकता। वह उत्तरदायित्व मुक्त नहीं है, पर उसका उत्तरदायित्व न तो अधिकार की अभ्यस्त पुरानी पीढ़ी का अपने प्रति उत्तरदायित्व। उसका उत्तरदायित्व है स्वाधीन विवेक के प्रति [2]।" अभिव्यक्ति में ही वह शक्ति निहित है जिससे रचनाकार सत्ता पर प्रहार करता है और उसके प्रति अपना प्रतिरोध भी जताता है।

साहित्य के ज़रिए संप्रेषण को बनाये रखना रचनाकार की मौलिक चुनौती है। एक महान साहित्यकार तभी बनता है जब वह अपनी रचना के द्वारा लोगों के हृदय पर स्थायी प्रभाव डालने में समर्थ हो। "साहित्य के संप्रेषण में यह निहित है कि केवल उसका संदेश ही नहीं पहुँचता और पहुँच करके भीतर कहीं टँक नहीं जाता, उसके शब्द भी पहुँचते हैं; और शब्द भी भीतर गूँजों की

---

[1] निर्मल वर्मा- दुसरे शब्दों में, पृ.193

[2] अज्ञेय- आत्मनेपद, पृ.86

विद्युत धारा बन जाते हैं । ज़रा-सा छुए, ज़रा-सा दबाए - नया आलोक फूट जाता है ।"[3] एक व्यापक समुदाय को प्रभावित करके ही साहित्य अपना सामाजिक दायित्व निभा पाता है ।

साहित्यकार समय-समय पर सामाजिक समस्याओं पर अपना मत प्रकट करता रहता है । लिखित साहित्य की विधा कविता या गद्य कोई भी हो वह समाज में व्याप्त विसंगतियों से प्रतिरोध जताकर समाज की चेतना को जगाती है । "लिखने का कारण एक ही होता है कि हम मौजूदा व्यवस्था से असन्तुष्ट है; उससे हमारा मोहभंग हो चुका है । हम स्वीकृत मूल्यों से असहमत हैं इसलिए उनका विश्लेषण-विवेचन करके नये मूल्यों का प्रतिपादन करना चाहते हैं । ज़रूरत पड़ने पर साहित्य सीधा वार भी करता है, इसके समानान्तर, प्रतिरोध वह तत्व है जो साहित्य में सतत् विद्यमान है ।"[4] हमारे समय के तसलीमा नसरीन जैसे साहित्यकार अपनी अन्तश्चेतना की आवाज़ को सुनते रहने के कारण सज़ा भुगत रही हैं । साहित्यकार समाज में व्याप्त अपसंस्कृतियों पर प्रतिरोध जताकर अपनी रचनाओं के ज़रिए नयी संस्कृति का आह्वान करता है, जो मानवता, समता और स्वाधीनता जैसे मूल्यों के आधार पर होता है । इस प्रकार प्रतिरोध हमेशा से साहित्य का स्थायी भाव रहा है ।

1.1 साहित्य और मानवजीवन

साहित्य मानवचेतना को प्रभावित करता है । इसलिए मानवजीवन में साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है । सामान्यतः जन जीवन के विविध पहलुओं को छूने पर ही साहित्य महान बनता है । साहित्य मनुष्य की संवेदनाओं को जगाता है । लेखक का अनुभूति-क्षेत्र इतना विस्तृत

---

[3] विद्यानिवास मिश्र- साहित्य का पुनरालोकन, पृ.113

[4] चित्रा मुद्गल- नई धारा

होना चाहिए कि समाज में व्याप्त रूढ़ियों से सड़ता मानवजीवन, तद्जनित उसकी प्रतिक्रिया से सदैव सतर्क रहे। "जो विचार और अनुभूतियाँ शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त होती हैं, उनकी दूसरों तक पहुँच अपेक्षाकृत शीघ्र होती हैं।"[5] यह भाषा के माध्यम से जगत की यथार्थ अनुभूति की अभिव्यक्ति है जो मनुष्य के मानसिक स्तर को ऊँचा करता है।

साहित्य की पहली शर्त यह होनी चाहिए कि वह युगीन यथार्थ को समझें, मानव को सही रास्ता दिखायें और उसकी चेतना को पहचान दिलायें। इसके लिए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता ही साहित्यकार का श्रेष्ठतम गुण है। कला की सार्थकता, अनुभूति को पूरी तीव्रता के साथ अभिव्यक्त करने में है और साथ ही साथ वह मानव समाज को उतनी ही तीव्रता से प्रभावित करती है। "The work of art is in some sense a liberation of the personality; normally our feelings are inhibited and repressed. We contemplate a work of art, and immediately there is a release; and not only a release – sympathy is release of feelings – but also a heightening, a tautening, a sublimation… art is release, but also a bracing. Art is the economy of feeling; it is emotion cultivating good form."[6] साहित्य समयबोध और अनुभूति से जुडा हुआ है इसलिए साहित्यकार अपनी सामग्री और दृष्टि दोनों मानव जीवन से ही पाता है।

आज संसार भूमण्डलीकरण, वैश्वीकरण, उदारीकरण, बाज़ारीकरण और उपभोक्तावादी दौर से गुज़र रहा है। औद्योगिक क्रान्ति के चलते सबकुछ व्यावसायिक हो गया है। सूचना क्रांति ने हमारे तमाम मानवीय मूल्यों को हाशिये पर धकेल दिया है और विज्ञापन की दुनिया को जबरदस्ती हमारे जीवन में थोप दिया है। वास्तव में विज्ञापन ने मनुष्य को वस्तु बनाकर रख

---

[5] मोहन राकेश- परिवेश, पृ.139

[6] Hrbert Read- The meaning of art, P.31-32

दिया है । युग की यांत्रिकता ने उसकी स्वतंत्रता का हरण कर उसे क्षणजीवी बना दिया है । भूमण्डलीकरण की विनाशकारी शक्ति को समझाते हुए प्रभाकर श्रोत्रीय का कहना है "यह पूरी दुनिया को सीधे-सीधे दो भागों में बाँटता है - अमीर देश और गरीब देश । यह शुद्ध रूप से बाज़ारवाद है जिसे उदारीकरण के मोहक शब्द जाल में बाँधा गया है, जो यह सुनिश्चित करता है कि गरीब लोग और देश विश्व के नक्शे से मिट जाएँ। दूसरे शब्दों में यह पूँजीपति देशों का आर्थिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक और सुरक्षात्मक अधिनायकत्व है, जो गरीब देशों की अस्मिता और वैविध्य को नष्ट करता है।"[7] बाज़ार अपनी सभ्यता और संस्कृति को लेकर आया है जिससे वह हमारे मन और रहन-सहन पर कब्जा कर रहा है।

स्वार्थतावश मानव ने अपनी निजी रिश्तों को छोड़ दिया। अब वह भीड़ में अकेले होने के भीषण दबाव को झेल रहा है । व्यक्ति अपनी जडें, निजत्व, मानवीय गुण सब कुछ खोकर अनिश्चितता के घेरे में फँस चुका है। आज उसकी स्वतंत्रता की छटपटाहट ज़ोरों पर है। इस संदर्भ में साहित्य को मानवधर्मी होना है । "मानवधर्मी वही होता है जो जड़ पदार्थों की तरह केवल परिस्थितियों के आधार पर व्याख्यायित न करे वरन् उसके निर्णय की स्वतंत्रता, कर्म शक्ति की अप्रतिशत गतिशीलता तथा परिष्कृत सौंदर्यबोध को प्रामाणिक मानकर उन्हें गौरव प्रदान करें एवं उसकी असफलताओं को भी। मनुष्य को उसके विकास क्रम में समाहित करके देखें।”[8] साहित्य यांत्रिकता के स्थान पर मानवीय ममता, करुणा सहित नैतिक मूल्यों की स्थापना करता है जहाँ आत्मविश्वास और अपनेपन की पहचान बनाए रखना आज कठिन कार्य बन गया है।

मानव जीवन की विभिन्न घटनाओं की झाँकी साहित्य में दिखाई पड़ती है । हर युग के साहित्य में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सभी क्षेत्रों में मानव की कठिनाईयों का रेखांकन

---

[7] प्रभाकर श्रोत्रीय- साहित्य के नए प्रश्न, पृ.9

[8] सं. डॉ. रामजी तिवारी- भारतीय साहित्य विमर्श, पृ.319

हुआ है साथ ही साथ वह मानव के संघर्ष, जिजीविषा, आशा-आकांक्षा का साक्षी भी रहा है। "हमारे समस्त प्रयत्नों का एकमात्र लक्ष्य यही मनुष्य है। इसको वर्तमान दुर्गति से बचाकर भविष्य में आत्यंतिक कल्याण की ओर उन्मुख करना ही हमारा लक्ष्य है। तही सत्य है, यही धर्म है।"[9] साहित्य के ज़रिए मानव भीतर से सुसंस्कृत बनता है। समय की वास्तविकता को झेल रहे मनुष्य के विवेक को उदार संवेदना के साथ जागृत करना रचनाशीलता का केन्द्रीय चिंतन होता है। मानव जीवन के परिवर्तनों के साथ सचेत साहित्य को भी अपनी भूमिका पर पुनर्विचार करते रहना है।

साहित्य सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् के आदर्श को लेकर चलता है। यथार्थ मानव जीवन की संवेदना को व्यक्त करनेवाला साहित्य ही मानव की हितैषी है। वह मनुष्य की महिमा को स्वीकार कर सामूहिक मुक्ति की बात करता है। वह समाज को शोषण से मुक्त कर सामाजिक समरसता को बनाए रखने की कोशिश करता है।

1.2 साहित्य और प्रतिपक्ष संस्कृति

साहित्य युगशक्ति की अभिव्यक्ति है। साहित्यकार युग को अपनी विराट प्रतिभा से बदलता है और उन्नत बनाता रहता है। उसका विचार उसके चारों ओर व्याप्त समाज और वातावरण से ही निर्मित है। वह समाज से प्रेरणा पाकर उसकी उपयोगिता के लिए सदैव खडा रहता है। भारतीय समाज विविध वर्गों, जातियों, धर्मों, संप्रदायों के आचारों, विचारों, संस्कारों, सामाजिक परंपराओं, रूढ़ियों को लेकर चलता आया है। इस अवसर पर साहित्य का लक्ष्य वर्ग-हीन मानव समाज की स्थापना है। हर एक साहित्यकार युगीन आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को शब्द प्रदान करता है।

---

[9] हजारी प्रसाद द्विवेदी- अशोक के फूल, पृ.176

हाशिए से सिर्फ वह रचनाकार बच जाता है जो स्वाधीन है स्वतंत्र है । रचनाकार की स्वाधीनता का अर्थ है अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता । यह स्वतंत्रता साहित्य को हमेशा प्रतिपक्ष में ला खड़ा करती है । "वह परंपरागत रास्ते को छोड़कर नया रास्ता बनाने के किसी निरर्थक जुनून का शिकार ही नहीं होता, बल्कि यह कि वह नए गंतव्यों की तलाश में रहता है और यह भी कि बनी-बनाई सड़क से निश्चित गंतव्य तक पहुँचने की यांत्रिकता में गिरफ्त होना नहीं चाहता । यदि गंतव्य एक भी हो तो उसके लिए वह एक नया और पहले से अधिक प्रयोगसिद्ध रास्ता बनाना चाहता है ताकि उसका सृजनोन्मुख अहं चीत्कार न करने लगे ।"[10] अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता लेखक का सबसे बडा साहसपूर्ण कदम है । आत्मचिंतन और आत्मान्वेषण में बाधक सभी पक्षधरताओं को ठुकरानेवाला ही एक सच्चा जोखिम उठानेवाला लेखक होता है । लेकिन जड़ीभूत व्यवस्था इसके खिलाफ है । लेखक को इस भ्रष्ट व्यवस्था के विरुद्ध अपने शब्दों को खड़ा करने की हिम्मत रखनी चाहिए ।

प्रतिकूल सामाजिक परिवेश से साहित्यकार की प्रतिभा का सामना होने पर केवल एक ही विकल्प रहता है विद्रोह । "कितना दूषित, कितना दुष्ट है वह समाज जिसमें सर्जक प्रतिभा, रचनाशील मानव इकाई, विद्रोही की भूमिका में देखी जाती है । जिसमें सर्जक प्रतिभा, रचनाशील मानव इकाई, बाध्य होती है कि अपने को विद्रोही की भूमिका में देखें ।"[11] साहित्य में विद्रोह का स्वर अस्वीकार से शुरू होता है । यह ध्वंस की आगे की स्थिति है । यह निषेधात्मक स्थिति के स्तर को ऊँचा करने की व्यावहारिक सक्रियता की ज़रूरत है । ठोस वैचारिक आधार पर ही इसकी सर्जनात्मक अभिव्यक्ति संभव हो सकती है। यह विचार ही आवेश और संवेदना दोनों को संयमित रख सकता है ।

---

[10] रामस्वरूप चतुर्वेदी- साहित्य के नए दायित्व, पृ.38

[11] अज्ञेय- शाश्वती, पृ.27

हर युग के साहित्य में किसी-न-किसी चरम मूल्य की प्रतिष्ठा का प्रयास रहता है। रामायण, महाभारत, कुरान, बाइबिल आदि क्लासिक रचनाएँ मनुष्य को उसके समय और मूल्यबोध से परिचित करवाती हैं। समाज में स्वस्थ जीवन कैसे बिताया जाय यह सिखानेवाली ये रचनाएँ मानव के मानसिक मनोवेगों को प्रभावित करने में सक्षम हैं। इसलिए वे कालातीत जान पड़ती हैं। अश्वघोष जैसे रचनाकार अपनी कृति को सिर्फ अपने ही लिए नहीं सारे लोक के लिए "मोक्षार्थगर्भा" मानते हैं। कालिदास ने भी अपनी रचनाओं के द्वारा सज्जनों के मंगल के लिए श्री और सरस्वती की मिलन करवाया। सामाजिक रूढ़ियों के प्रति साहित्यकार का सशक्त प्रतिरोध मुख्यतः भक्तिकाल और आधुनिककाल में दिखाई पड़ता है।

1.2.1 भक्तिकाल की प्रतिपक्षधर्मिता

भक्ति आन्दोलन का उदय अपने वक्त के गहरे तनाव और संघर्ष का परिणाम था। भक्त कवियों ने कुल, जाति, धर्म, सम्प्रदाय, स्त्री-पुरुष का भेद, शास्त्र का भय, लोक का भ्रम आदि को तोड़ने का भरसक प्रयास किया। तुलसी, कबीर, रहीम, सूर, मीरा आदि के सामाजिक विचार अधिक प्रगतिशील थे। उनके विचारों में तरह-तरह के भेद-भाव पर टिकी व्यवस्था के स्थान पर मनुष्यत्व पर आधारित समतामूलक मानवीय व्यवस्था को स्थापित करने की इच्छा विद्यमान है।

यह भावना पर बल देने वाला धार्मिक आन्दोलन था जो सबको समान मानता था। "सामंती समाज व्यवस्था में सदियों से पीड़ित, दलित और वर्ण-व्यवस्था के निम्नतर स्तर पर रहनेवाली छोटी जातियों में रचनात्मक प्रतिभा का विस्फोट और उस समाज व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह की भावना की अभिव्यक्ति यह भक्ति आन्दोलन का क्रान्तिकारी महत्व है।"[12] विभिन्न क्षेत्रों

---

[12] मैनेजर पाण्डेय- भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य, भूमिका में

और जातियों से आये इन भक्ति कवियों ने उनकी सर्जनात्मक अभिव्यक्ति मातृभाषा में की थी, यह भक्ति आन्दोलन की सबसे बड़ी विशेषता है । इसलिए समाज में निम्न स्तर पर जीने के लिए अभिशप्त पिछडे वर्ग के लोगों के रुदन को पूरे देश में वाणी मिली । मनुष्य की रक्षा व विकास के लिए मानुष सत्य की खोज करना ये अपना कर्तव्य मानते थे । यह समन्वय भावना पर आधारित अपने ढंग की सामूहिक जागृति थी ।

1.2.2 आधुनिककाल की प्रतिपक्षधर्मिता

अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना के साथ देश के सामाजिक संघटन में परिवर्तन लक्षित होने लगा । पुरातन आर्थिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न होती गयी । अंग्रेज़ों ने सामन्तीय व्यवस्था से आगे बढ़कर पूँजीवादी व्यवस्था को अपनाया । महाजनी सभ्यता को फैलाने का श्रेय भी अंग्रेज़ों को ही था । 19वीं शताब्दी के उत्तराद्र्ध में सामाजिक - नैतिक रूढ़ियों के विरोध में पत्र-पत्रिकाओं का उपयोग किया गया। इनके माध्यम से देश-हित के विरुद्ध चलानेवाले अंग्रेज़ी हुकूमत की कार्यवाइयों का विरोध हुआ । भारतीय पुनर्जागरण के लिए प्रेस का योगदान अत्यधिक मूल्यवान सिद्ध हुआ । इसका प्रचार साहित्य के लिए अत्यन्त हितकर सिद्ध हुआ । इसमें समसामयिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया ।

तत्कालीन भारत की परिस्थितियों पर गौर करे तो साधारण लोग धर्म के नाम पर ठगी, बाह्याडम्बर, अन्धविश्वास और छुआछूत में जकड़े हुए थे । नवजागरण के अग्रदूतों ने धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में एक निर्णायक लड़ाई छोडी । इन लोगों ने अपने विचार, कार्यों और लेखन से भारतीय समाज में नवजागरण को संभव किया । "राष्ट्रीयकोण से उपनिवेशवाद की आलोचना और आधुनिक कोण से सामाजिक, धार्मिक रूढ़ियों की आलोचना

उसकी दो बड़ी खूबियाँ है ।"[13] इसप्रकार ये एक ओर जनतांत्रिक भावनाओं का पोषण कर रहे थे और दूसरी ओर समाज की रूढ़ियों पर प्रहार करती हुई राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में महत्वपूर्ण योग दे रहे थे ।

भारतेन्दुयुग के संपूर्ण लेखन में सामंती उत्पीड़न, जातिगत रूढ़ि एवं संकीर्णता, नारी-शोषण आदि विषयों पर लेखक लगातार चोट करते रहे । वे विचारों के स्तर पर ही नहीं, कर्म के स्तर पर भी सकर्मक थे। इन लोगों ने शिक्षा के व्यापक प्रचार के लिए कई संस्थाएँ चलाई । इसी समय नवीन मानवतावाद का आविर्भाव हो चुका था। नवजागरण की चेतना में सामंती मूल्यों का विरोध और आधुनिकता के वरण की सकर्मक कोशिश भी थी । "अगर हमारा समाज ठिठका हुआ है, भटका हुआ है तो निश्चय ही उसमें परिवर्तन की कसमसाहट भी होगी । इसी कसमसाहट के गर्भ से नवजागरण का अंकुर फूट सकता है ।"[14] सांस्कृतिकर्मी होने के नाते नवजागरण के उन्नायकों ने समाज में हो रहे हलचलों को पहचानने लिया था ।

नवागत जीवन पद्धति के कारण इस समय देश की पहचान खो रही थी । इस अवरोध ने यहाँ के प्रबुद्ध वर्ग को नये सिरे से सोचने के लिए मजबूर किया । देश की संकटपूर्ण अवस्था से मुक्ति हेतु तर्क विवेक और बुद्धि से काम लेना साहित्यकारों के लिए अनिवार्य हो गया । बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान के फलस्वरूप द्विवेदी युग की प्रधान भावधारा रही, 'राष्ट्रीयता' ।

भारत के लिए अस्मिता की खोज का युग छायावाद, नवीन आदर्शों को प्रतिष्ठित करने की कला चेष्टा का परिणाम था । "नवीन युग की नवीन आकांक्षाओं, क्रियाओं, नवीन इच्छाओं,

---

[13] शंभुनाथ- हिन्दी नवजागरण और संस्कृति, पृ.9

[14] कर्मेंदु शिशिर- नवजागरण और संस्कृति, पृ.17

आशाओं के अनुसार कवि की वीणा से नये गीत, नये छन्द, नये राग, नई रागिनियाँ, नई कल्पनाएँ फूट पड़ी ।"[15] जीवन और जगत की कटुता से कतराकर कल्पना के आदर्श लोक में रमण करना इनकी प्रतिपक्षधरता थी । इसमें व्यक्तिवादिता के स्वर अधिक सशक्त है । मानवीय जीवन के भावात्मक पक्ष पर अधिक ज़ोर देने से उनके काव्य में मूल्यों की अभिव्यक्ति व्यापक मानवीय स्तर पर दिखाई पड़ी ।

बीसवीं शती के वैज्ञानिक विकास में समाज में बिखराहट पैदा की । पूर्वकाल में इतना वैविध्य न था । इस वैविध्यपूर्ण जटिल परिस्थितियों में व्यक्ति की समस्या को समझना मुश्किल हो गया । गहरे सामाजिक सरोकार से ओतप्रोत साहित्यकारों ने सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और पीड़ित, शोषित, कमज़ोर, असहाय, दलित वर्ग का पक्षधर बना । "साहित्य या शब्द कोई निर्जीव वस्तु नहीं, वह एक धडकता हुआ जीवन है । जैसे बन्धन में मनुष्य के प्राण छटपटाते हैं, वैसे ही शब्द भी बन्धन में तड़पता है । उसकी तड़प और उसका विद्रोह सार्वजनिक होता है । इसलिए सर्जना की मुक्ति मनुष्य की मुक्ति का पर्याय है ।"[16] आधुनिक काल के भारतीय समाज में एक ओर जाति व्यवस्था के दमन चक्र से दलितों की आज़ादी का आन्दोलन खड़ा हुआ तो दूसरी ओर पुरुष सत्ता की दासता से स्त्रियों की स्वतंत्रता का आन्दोलन विकसित हुआ । इन पराधीन लोगों के जीवन की वास्तविकताओं और उनकी आज़ादी की आकांक्षाओं के सबसे बडे कथाकार थे 'प्रेमचन्द' ।

प्रगतिवाद हो या प्रयोगवाद सभी तद्युगीन समाज में उपजी अन्याय के खिलाफ खडे रहे । साठोत्तरी साहित्य नयी किस्म की तेज़ और आक्रामक रुख अपनाये हुए थे । हर युग के साहित्यकार अपने ढंग से रचनाएँ करते हुए अपने आसपास की दुनिया और लोगों से सीधे संवाद करते हैं और उनका स्वतंत्र व्यक्तित्व गढ़ने का प्रयास भी जारी रखते हैं । साहित्यकार ने प्रजातंत्र पर भी प्रहार

---

[15] सुमित्रानंदन पंत- पल्लव, भूमिका में

[16] प्रभाकर श्रोत्रीय- साहित्य के नए प्रश्न, पृ.35

किया क्योंकि वह सामान्य जन में अस्वतंत्रता की स्थिति पैदा करता है। "राजनीतिक व्यवस्था के विकृत हो जाने पर जब विचार और वाणी की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लग जाता है, तो साहित्यकार के सामने जीवन मरण का प्रश्न उपस्थित हो जाता है।"[17] सत्ता आज अपने अस्तित्व के लिए हर मोल चुकाने और हर रास्ता अख्तियार करने के लिए तत्पर है। इससे टकराने की हिम्मत रचनाकार रखते हैं।

सत्ता और संचार दोनों ने मिलकर एक 'ऑर्गनइजेशन मैन' की रचना की है जो व्यक्तिगत विचार और कर्म के बाहर रिश्तों को त्याग कर देते हैं। "संचार-साधन के मारे आदमियों के लिए इंसान होना मयस्सर कर सकना साहित्य के लिए नया, कठिन पर निश्चय ही उसके योग्य दायित्व है।"[18] यानि इसके मारे प्रत्येक व्यक्ति स्वयं न रहकर दूसरा बन जाता है, जिसके विरुद्ध बुद्धिजीवी विद्रोह कर रहे हैं। आज राजनीति और प्रविधि सर्जनात्मकता के विरुद्ध खडी हैं। पूरे वैश्विक स्तर पर देखने पर साहित्य सदा इसके प्रतिपक्ष में रहा है।

कहा गया है 'निरंकुशः कवयाः' यानि कवि निरंकुश होता है। वह किसी के अनुशासन में नहीं चलता बल्कि स्वविवेक से चलता है। "साहित्यकार के प्रतिरोध का माध्यम जाहिर है साहित्य ही हो सकता है। वह मनुष्य के पक्ष में उस सब के खिलाफ है, जो मनुष्य के खिलाफ है। इसलिए मानवीय मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा से ही वह भूमण्डलीकरण के खतरों से संवेदनात्मक और वैचारिक धरातल पर न केवल अपना प्रतिवाद दर्ज कर सकता है वरन् एक बेहतर मानव और समाज की प्रतिष्ठा में अपना योगदान कर सकता है।"[19]

---

[17] नगेन्द्र- साहित्य का समाजशास्त्र, पृ.57

[18] रामस्वरूप चतुर्वेदी- साहित्य के नए दायित्व, पृ.20

[19] धनंजय वर्मा- वागर्थ 2012

साहित्यकार 'नवनवोन्मेशशालिनी प्रज्ञा' से धनी होता है। नवोन्मेश समाज की गति और मुक्ति में समाहित है। समाज में व्याप्त समस्याओं का अतिक्रमण और नवप्रवर्तन लेखन की माँग है। वह सत् और असत् की राह दिखाकर हमें इन समस्याओं के प्रति सतर्क बनाता है। साहित्य के साथ हमेशा से निरन्तरता, अखंडता और परस्परसंबद्धता जैसे गुण जुडे हुए हैं। वह दर्शन, विचार, मूल्य और संपूर्ण संस्कृति है जो समय और समाज में अन्तःप्रवेश की क्षमता रखती है। "अपने देश के तरुण साहित्यकारों से मेरा अनुरोध है कि वे अपने देश को उसके समस्त गुण-दोषों के साथ देखें और ऐसे साहित्य की सृष्टि करें जो इस जीर्ण-देश में ऐसे नवीन अमृत का संचार करे कि वह एक दद्चेता व्यक्ति की भाँति संसार से घृणा और अन्याय को मिटा देने के लिए उठ खड़ा हो।"[20] यानि वह समाज में व्याप्त अपराध एवं हिंसा पर विचार करके मनुष्य के सरोकारों से जुड़कर, उसकी रक्षा करता है।

अपने समाज से प्रतिबद्ध रहने के कारण साहित्यकार उसके बदलाव के लिए सार्थक भूमिका अदा करता है। हर युग के विरोधी ताकतों के परस्पर विरोधी उद्देश्यों को समझनेवाला साहित्यकार ही वास्तव में सचेत होता है। इन विरोधी ताकतों के प्रतिपक्ष में सदैव खड़े रहना साहित्यकार का दायित्व है। अनेक महिला साहित्यकारों ने भी समाज में व्याप्त असंगतियों पर अपनी प्रतिपक्षधर्मिता ज़ाहिर करते हुए अपनी उपस्थिति को दर्ज किया। स्त्री के इस प्रतिरोध को या उसकी चेतना की जागृति को एक आकस्मिक घटना मात्र समझना आधी आबादी के मुक्ति संघर्ष के प्रयास को ठुकरा देना है। सदियों से चले आ रहे मुक्ति संघर्ष ही आज इनकी प्रतिरोधी चेतना को ऊर्जा प्रदान करता है। इन संघर्षों में नवोत्थान, शैक्षिक संस्थाओं, महिला संगठनों और नारी आन्दोलनों का महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए समकालीन साहित्य में स्त्री प्रतिरोध पर विचार करने से पहले हमारे लिए यह बहुत ज़रूरी है कि उस स्त्री संघर्ष के इतिहास को समझें।

---

[20] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी- अशोक के फूल, पृ.50

1.3 स्त्री प्रतिरोध का इतिहास

जीवन की निरन्तरता या विकास को बनाये रखने के लिए ही प्रकृति ने नर-नारी का निर्माण किया। इसलिए जीवन को सुचारु ढंग से चलाने के लिए पारिवारिक व सामाजिक जीवन में दोनों का सहयोग तथा पूर्ण संतुलन अनिवार्य है। प्रागैतिहासिक काल में इन दोनों की समान साझेदारी बनी रही थी। प्रजनन क्षमता नारी की श्रेष्ठता का कारण बना। मातृसत्तात्मक समाज की स्थापना के पीछे यही श्रेष्ठता बनी रही। बाद में मातृत्व, पत्नीत्व आदि गार्हिक भूमिकाओं के तहत उसके लिए आचरण की कसौटी निर्धारित की गयी। बाहर की सारी सुविधाएँ प्राप्त पुरुष समाज ने जीने का सारा नियम अपने अनुकूल बना लिया। "जानवरों का 'पालतू' करना आदमी ने अपने लंबे अनुभवों से सीखा। औरतों और दास-दासियों तथा शूद्रों को वश में रखने के लिए - अपने इन अनुभवों और पाशविक कामनाओं के आधार पर बनाए गए सामाजिक नियम।"[21] तब से लेकर आज तक स्त्री सामाजिक संरचना के हर स्तर पर स्थाई रूप से शोषित होती आ रही है।

पुरुष सत्तात्मक समाज द्वारा निर्धारित ढाँचे से बाहर निकलकर अपने अस्तित्व को पहचान दिलवाना उसके लिए आसान कार्य नहीं था। जब उसमें अपने अधीनत्व का अहसास जागा तब समाज-सत्ता-सम्पत्ति के गठबन्धन से बाहर निकलने का उसका सख्त अभियान शुरू हुआ। इससे प्रतिरोध की चेतना जाग उठी। यह दलित और वंचित होने के एहसास के साथ ही शुरू होती है। "हम अपने आपको उघाड़ कर ही यथास्थिति के खिलाफ विद्रोह कर पाती हैं। हमारा अन्तरंग अनुभव ही हमारा पहला अस्त्र है। वही हमारी बौद्धिकता का प्रस्थान बिन्दु है, जो आगे जाकर अपनी प्रामाणिकता के ज़रिए इतिहास बनता है।"[22] परंपरागत रूढ़ छवि को तोड़ने की इसकी

---

[21] सं. नासिरा शर्मा- आज़ाद औरत कितनी आज़ाद, पृ.69

[22] प्रभा खेतान- पितृसत्ता के नए रूप : स्त्री और भूमंडलीकरण, भूमिका से

कोशिश स्त्री प्रतिरोध का आधार है । यह व्यावहारिक तौर पर स्त्रियों को सक्रिय बनाने की कोशिश में लगा है । स्त्रीवादी आन्दोलन के ज़रिए यह कार्य सार्थक सिद्ध हुआ ।

स्त्री-आन्दोलन जीवन के उन पक्षों पर प्रकाश डालता है जहाँ स्त्री अब तक उपेक्षित और वंचिता की हैसियत में रहती आई है । इसका पहला पक्ष वर्चस्वविहीन समाज की स्थापना है । "आन्दोलन तो तभी जन्मेगा जब तमाम अड़चनों अवरोधों के बावजूद सिर पर कफन बांधने का जज़्बा लेकर उठे निजी प्रयास अनवरत चलते रहेंगे ।"[23] व्यर्थ के विलाप से कोई फायदा नहीं इस अमानवीय परंपरा का विरोध आवश्यक है । इन सभी प्रयत्नों का मतलब यह नहीं कि स्त्री कोई पुरुष-विहीन समाज चाह रही है । वह ऊँचा ओहदा प्राप्त करना नहीं चाहती, समानता की साझेदारी चाहती है । वह यह जानती है कि विश्व की सभी स्त्रियों का दर्द एक ही है । इसलिए लिंग के आधार पर होनेवाले दमन से स्त्री को मुक्ति दिलवाने के लिए नारीवाद प्रयत्नशील है ।

1.3.1 पाश्चात्य परिदृश्य

वाल्सेयर, दिदेरो, मान्टेस्क्यू, रूसो आदि ज्ञान-प्रसार आन्दोलन के नेताओं के अनुसार सभी स्त्रियाँ समाज में पत्नी और माता के रूप में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं, लेकिन सार्वजनिक विकास के लिए वे मात्र उपयुक्त नहीं थी । इस मानसिकता के फलस्वरूप जो सामाजिक परिवर्तन हुए, उसमें उनके उदारवादी चिन्तन ने औरतों की अधिकार-चेतना को विकसित किया । स्त्रियों को पुरुष के समान अधिकार दिलवाने के लिए पहली आवाज़ मेक्सिको की ईसाई सन्यासिनी सिस्टेर जुआना ने उठायी । पाश्चात्य देश में कई जगह स्त्रियों ने पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष किया । इंग्लैंड की मेरी वोल्स्टनक्राफ्ट, बारबरा ले स्मिथ,

---

[23] रोहिणी अग्रवाल- समकालीन कथा साहित्य सरहदें और सरोकार, पृ.17

बेस्सी रैनर, पाक्र्स, एमिली डेविड, जोसफैन, बटलर, फ्रांस में ओलिंपे गौज, अमेरिका में लुक्रिषिया मोट्ट, एलिजबथ, केटी स्टॉटण आदि इनमें से प्रमुख थीं ।

इंग्लैंड की मेरी वाल्स्टनक्राफ्ट (1759-1797) स्त्रीवाद की जननी मानी जाती है । समान अधिकारों की माँग पर लिखी गई उनकी पुस्तक 'विन्डिकेशन ऑफ दि राइट्स ऑफ वुमन' (1972) स्त्रीवाद का आधार ग्रंथ माना जाता है । राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में शोषण से मुक्ति की यह कोशिश 19वीं सदी तक आते-आते आंदोलनों का रूप धारण कर लिया । आधुनिक सभ्यता के केन्द्र यूरोप में नवजागरण के प्रारंभ से नारी के अधिकारों पर सवाल खड़ा हो गया था । मताधिकार को लेकर पहला आन्दोलन चला । परिणामस्वरूप 1869 में अमेरिका में मतदान का अधिकार देना प्रारंभ हुआ। तभी से औरतों के अधिकार के प्रश्न भी नए रूप से उभरकर सामने आने लगे । "साठ के दशक में जो नारीवादी आन्दोलन एक विस्फोट की तरह पहले अमेरिका और फिर पूरी पश्चिमी दुनिया में फूट पडा, वह नारी समुदाय के शोषण-उत्पीड़न की स्थिति के विरुद्ध एक अंधविद्रोह था, उसकी कई शाखाएँ और उपशाखाएँ आगे चलकर फली-फूली लेकिन उनके पास न तो नारी-समस्या के सभी पहलुओं की कोई इतिहाससम्मत तर्कपरक व्याख्या थी और न ही दूरगामी सामाजिक संघर्ष के रूप में नारी-मुक्ति के संघर्ष को आगे ले जाने का कोई ठोस कार्यक्रम ।"[24] इस समय ऐसे अनेक नारीवादी धाराओं का विकास हुआ जो अपने-अपने विचारों पर केन्द्रित था ।

नारी-मुक्तिवादियों ने यह नारा लगाना शुरू किया कि उसको शोषण से मुक्त होना है तो पहले स्वयं को शक्तिशाली बनाना पडेगा । एक इनसान होने के नाते उन्हें भी इज्जत

---

[24] कात्यायनी- दुर्ग द्वार पर दस्तक, पृ. 82

से जीने का हक इससे ही प्राप्त होगा ।

1.3.2 स्त्रीपक्ष चिंतन की मुख्य धाराएँ

स्त्रीवाद में अनेक धाराएँ पैदा हुईं । कुछ लोगों ने अपने ढंग से स्त्रीवाद की एक खास तस्वीर तैयार करने में योगदान दिया । स्त्रीवादियों में कुछ लोग ऐसे थे जो उदारवादी विचारों के आधार पर इसमें शामिल हुए थे ।

1.3.2.1 उदारवादी स्त्रीवाद

इस के उन्नायकों में जॉन स्टुअर्ट मिल (1869), जॉन एफ केनेडी, सिमोन द बाउवार (1949), तथा बेट्टी फ्रायडन (1963) का स्थान महत्वपूर्ण है । केनेडी के समय इसकी कर्रवाइयां कच्ची थीं । इससे असन्तुष्ट होकर 1966 में बेट्टी फ्रायडन जैसी महिलाओं के एक समूह द्वारा 'सिविल राइट्स संगठन' और फिर 'नेशनल आर्गेनाइजेशन फॉर विमेन' गठित किए गए । इससे संबन्धित उनकी प्रमुख पुस्तक है 'The Feminine Mystique' । सफेदपोश, मध्यवर्गीय कामकाजी महिलाओं की राजनीति थी लिबरल फेमिनिज़्म । इस स्त्रीवादी आन्दोलन का प्रभाव पश्चिम के सभी देशों पर पड़ा ।

इन्होंने उदारवादी राज्य द्वारा स्त्रियों को अधिकार और अवसर देने से मुकरना नारी उत्पीड़न का कारण माना । इसलिए वैधानिक उपायों और सरकारी कदमों से समानता को हासिल करने का प्रयास किया । इस संदर्भ में जॉन स्टुअर्ट मिल की प्रसिद्ध क्लासिक रचना 'द सब्जेक्शन ऑफ विमेन' विशेष महत्व रखता है । इसमें स्त्री संबन्धी उनकी मान्यता है, स्त्री और पुरुष के बीच जीवशास्त्रीय विषमताएँ अवश्य है लेकिन उनके नैतिक और बौद्धिक क्षमताएं बराबर है । उनकी मानसिक और स्वभावगत विशिष्टताएं हैं जो साझे की होनी चाहिए । जिसके लिए पुरुषों में स्त्रियोचित गुण और स्त्रियों में पुरुषोचित गुणों का समावेश होना ज़रूरी है । इस आदर्श उभयलिंग

व्यक्तित्व ही समाजोपयोगी है। स्टैनली, ग्लोरिया, स्टीमेन, सूसन ऐथेनी, लूसी स्टोन, इलिजाबेद, हूकर, इलिजाबेद केडी स्टैटन आदि लिबरल फेमिनिस्टों के अनुसार राजनीतिक समानता, शिक्षा, संपत्ति और वोट के अधिकार स्त्रियों के व्यक्तित्व के समुचित विकास की प्राथमिक शर्तें हैं।

सामाजिक सुधारों का महत्व रेखांकित करने के पश्चात् जो सांस्कृतिक समीक्षा का नया सिद्धांत इन स्त्रियों ने दिया इसमें सिमोन द बाउआ का 'द सेकेंड सेक्स' महत्वपूर्ण है। समग्र अध्ययन के बाद उन्होंने यह स्थापित किया कि स्त्री पैदा नहीं होती, स्त्री बना दी जाती है। 1968 में फ्रांस की स्त्रीवादी आन्दोलन में वे भी शामिल हो गयी थीं। "स्त्री को अमीर हो या गरीब, श्वेत हो या काली, अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी। यह दुनिया पुरुषों ने बनाई, पर स्त्री से पूछकर नहीं। फ्रांस की राज्य क्रान्ति हो या विश्व-युद्ध, स्त्री से पुरुष सहारा लेता है और पुनः उसे घर लौट जाने को कहता है। वह सदियों से ठगी गई है। यदि उसने कुछ स्वतंत्रता हासिल भी की है, तो उतनी ही, जितनी कि पुरुष ने अपनी सुविधा के लिए उसे देना चाहा।"[25] नारी को पहले अपने नारीपन से मुक्त होना है। उन्होंने स्त्री के शरीर को उसकी गुलामी का मुख्य कारण माना था। सिमोन ने इस आधी आबादी के लिए अपनी लड़ाई जारी रखी। इसप्रकार उदारवादियों ने स्त्रियों के मूलभूत मानवीय अधिकारों के लिए संघर्ष किया। इसके बाद समाज में नये प्रकार के स्त्रीवाद की बाढ सी आ गयी।

1.3.2.2 उग्र उन्मूलनवादी स्त्रीवाद

60 के उत्तरार्द्ध में एक दूसरे प्रकार का स्त्रीवाद सामने आया। 1968 में टाइ-ग्रेस ऐटकिन्सन के नेतृत्व में लिबरल ग्रूप से रैडिकल ग्रूप अलग हो गया। इनका कहना है छिटपुट सुधारों से स्त्री

---

[25] सिमोन द बाउआ- स्त्री उपेक्षिता, पृ.21

की स्थिति में परिवर्तन नहीं आ सकता । साम-दाम-दण्ड-भेद अपनाने से भी शोषण नहीं रुकेगा । इस आन्दोलन का उद्देश्य हर स्तर पर स्त्री को समानता हासिल कराना था । वे स्त्रीवाद को व्यापक रूप में देखकर समाज में योजनाबद्ध परिवर्तन करके परिवार, धर्म एवं शिक्षा के वर्तमान स्वरूप को बदलना चाहती थी ।

इन्होंने स्त्री की पराधीनता का मुख्य कारण प्रजनन शक्ति को माना । शुलिथ फायरस्टोन ने अपनी पुस्तक 'द डायलेक्टिक ऑफ सेक्स' में गर्भधारण को हैवानियता माना तथा विवाह और मातृत्व का विरोध किया । क्योंकि इसका उपयोग कर ही पुरुषसत्तात्मक समाज उनके मनोबल पर प्रहार करता है । इस अतिवादी प्रवृत्ति के विरोध में ही पेरिस में कुछ स्त्री संगठनों के सदस्यों के ज़रिए अन्तर्वस्त्रों की उपेक्षा या ब्रॉ बर्निंग चलाया गया था । इन्होंने पोर्नोग्रॉफी, वेश्यावृत्ति, बलात्कार, मारपीट, सती प्रथा, पर्दा प्रथा, डायनदहन आदि सेक्स-स्टीरियो टाइप्स को तोड़ने की कोशिश की और साथ-साथ इन लोगों ने स्त्रियों के लिए लेस्बियनिज्म का औचित्य प्रमाणित किया । साहित्यिक समालोचना में 'इमेजेस ऑफ विमेन' आन्दोलन रैडिकल फेमिनिस्टों की देन है ।

रैडिकल फेमिनिस्टों ने इस तरह पृथकतावाद की रचना की जो बाद में उनकी दुर्बलता बन गयी । लेकिन इसका सकारात्मक प्रभाव था 1971 के 'मेडिकल टर्मीनेशन ऑफ प्रेग्नेन्सी ऐक्ट' । इसके तहत् स्त्री को अपने स्वास्थ्य व आर्थिक स्थिति के सन्दर्भ में परिवार का आकार निश्चित करने का अधिकार मिला । उनका मन्तव्य है अगर इसे पृथकतावाद कहा जाता है तो यह वरेण्य ही माना जाना चाहिए ।

1.3.2.3 मनोविश्लेषणात्मक स्त्रीवाद एवं फ्रांसीसी स्त्रीवाद

मनोविश्लेषणात्मक स्त्रीवाद का आधार फ्रायड का सिद्धान्त है । उनका मानना है प्राक् - एडिपीय अवस्था से गुज़रते हुए पुरुष कोशिश करता रहता है कि वह मातृमोह से मुक्त हो जाए । यह कठिन निर्णय उन्हें आत्मनिर्भर, सामाजिक, बहिर्मुखी, अनुशासनप्रिय, निर्णयकुशलता से भर

देता है । बचपन से माँ से अलग न होने पर स्त्रियों को इस अवस्था से गुज़रना ही नहीं पडता। इससे वह माँ से पृथक अपने व्यक्तित्व का विकास न कर कम अनुशासित, कम सामाजिक, अन्तर्मुखी, कोमल और कमज़ोर रह जाती है । प्रसिद्ध महिला-मनोविज्ञानविद नैन्सी शोदोरोव ने मातृमूलक संवेदनाओं का अध्ययन करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि उनके मूलभूत समर्पणभाव उनकी स्वतंत्र अस्मिता में बाधक बन जाती है ।

स्त्री भावनात्मक रूप से पुरुषों से ज़्यादा दूसरों से जुडी रहती है । इसके प्रभाव से स्त्री और पुरुष में स्वभाव गत अंतर भी दिखाई पड़ता है । नस्ल और वर्ग भी मातृमूलक संवेदनाओं को प्रभावित करते हैं । अश्वेत माताएँ अपने बच्चों को दुखांत कहानियाँ सुनाके बचपन से ही पूँजीवादी व्यवस्था के शोषण तंत्र से उन्हें अवगत कराती हैं । संपन्न खुशहाल माताएँ बच्चों के मनोबल को मजबूत करनेवाली कहानियाँ सुनाती हैं । इससे यह सिद्ध होता है कि अंतःकरण पर पड़े अनुचित दबाव ही शोषण का कारण है ।

मनोविश्लेषणवादी स्त्रीवाद के विकास में फ्रांसीसी स्त्रीवादियों का महत्वपूर्ण स्थान है । वे दरिदा के संरचनावाद और लॉका के मनोविश्लेषणवाद का अध्ययन करने के उपरान्त पितृसत्तात्मक व्यवस्था के संस्कारों, निर्देशों, सिद्धान्तों और लक्ष्यों की पूर्ति हेतु बनायी गयी भाषा को उनके शोषण का सबसे बड़ा कारण बताया । इसलिए ही इरिगरे, सिक्सू, जुलिया क्रिस्तेवा जैसी स्त्रीवादियों ने स्त्रियों के लिए अपनी एक भाषा की माँग की ।

1.3.2.4 मार्क्सवादी एवं समाजवादी स्त्रीवाद

नारी की अस्मिता के सवाल पर सबसे ज़्यादा बल दुनिया के समाजवादियों और मार्क्सवादियों ने ही दिया था । इन दोनों के स्त्री संबन्धी नजरिए में थोडा फर्क है पर दोनों ने मूलग्रन्थ के रूप में फ्रेडरिक एंगेल्स का 'परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति' (The origin of the family, private property and the state) को स्वीकारा । इनमें उनका विचार है आधुनिक

वैयक्तिक परिवार, नारी की प्रत्यक्ष या परोक्ष घरेलू दासता पर आधारित है। पूरी नारी जाति का सार्वजनिक उद्योग में प्रवेश करना ही उनकी मुक्ति की पहली शर्त है। मतलब यह है कि वैयक्तिक संपत्ति का प्रावधान स्त्री के शोषण का मुख्य कारण है।

मार्क्सवाद ने नारी मुक्ति को उसकी आर्थिक स्वतंत्रता के साथ जोड़ा। उन्होंने नारी मुक्ति के प्रश्न को मेहनतकशों की मुक्ति के साथ जोड़कर देखा। क्योंकि पूँजिपतियों का मजदूरों से जो रिश्ता है वही पुरुषों का स्त्रियों से है। उत्पादन की संरचना ही इनके अनुसार स्त्रियों की दुर्दशा की जिम्मेदार है। जब सामाजिक क्रांति के तहत् पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था समाप्त होगी तभी पुरुष वर्चस्ववाली जड़ परंपरा ख़त्म होगी। पूँजीवाद की भूमिका का विश्लेषण करते हुए एंगेल्स ने लिखा है कि उसका दोष कितना भी हों लेकिन आधुनिक उद्योग ने स्त्रियों, लड़के-लड़कियों और बच्चे, बच्चियों को घरेलू क्षेत्र से बाहर निकाल कर एक नया आर्थिक आधार प्रदान किया। इस विचार ने स्त्रीवादी चिंतन को इतना प्रभावित किया कि इसे समझे बिना इसके पूरे परिप्रेक्ष्य को समझना असंभव सा हो जाएगा। इससे स्त्रीवादी आन्दोलन की एक नयी धारा का विकास हुआ।

स्त्रियों की आर्थिक दुर्बलता को सामने रखते हुए उससे मुक्ति हेतु उन लोगों ने 'बराबर मज़दूरी की बराबर पगार' और 'तुलनीय काम की तुलनीय पगार' आदि मुद्दों को लेकर संघर्ष किया। इसके लिए स्त्रियों को घर में पितृसत्तात्मकता से और बाहर पूँजीवादी ताकतों से लड़ने के लिए प्रेरित किया। समाज के उद्धार के लिए स्त्री को भी दमित स्थिति से ऊपर उठाने की आवश्यकता को वे पहचान चुकी थी। मार्क्स ने कहा था कि सामाजिक प्रगति के लिए समाज में स्त्रियों की स्थिति पर भी ध्यान देना है। मार्क्स ने नारी के रोज़गार को प्रगतिशील स्थिति बताया पर यौन उत्पीड़न पर विचार नहीं किया। यह उनकी सबसे बड़ी दुर्बलता थी।

इसके बदले समाजवादी स्त्रीवाद ने नारी के मनोविज्ञान, यौनशोषण, उनपर होनेवाले उत्पीड़न आचार-विचार को आर्थिक स्वतंत्रता के साथ जोड़कर देखा। क्योंकि उनका विचार था

कि सारे शोषणों से मुक्ति सिर्फ कामकाजी होने पर निर्भर नहीं रहती। इस पर मिलेट की किताबों का प्रभाव पड़ा था। एंगेल्स की मान्यताओं का समर्थन करते हुए इनका मानना है पितृसत्तात्मक व्यवस्था का अस्तित्व में आना सिर्फ स्त्री-पुरुष की जैविक संरचना पर निर्भर नहीं करता। इस जैविक भिन्नता के आधार पर बनाये गये सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक अवधारणाओं से यह व्यवस्था मज़बूत बनी। इसके तहत् समाज ने स्त्री-पुरुष दोनों के अलग-अलग कार्यशैली को निर्धारित किया। यही वजह है कि आर्थिक आत्मनिर्भरता के बावजूद आज भी समाज में स्त्रियों की स्थिति बेहतर नहीं। इसलिए स्त्री की मुक्ति के लिए समाज की परम्परागत सोच में परिवर्तन लाना आवश्यक है।

स्त्रीवादी चिंतक फायर स्टोवन का मंतव्य है प्रेम महिलाओं के उत्पीड़न का एक प्रमुख कारण है। यह उनकी आर्थिक और सामाजिक निर्भरता को ही दर्शित कराता है। इस तंत्र का उपयोग कर पुरुष ने स्त्री के मन को इतना प्रभावित किया है कि वह इस गुलामी के विरुद्ध आवाज़ न उठा सकी। इस षड्यंत्र से बचने के लिए उसका लक्ष्य सिर्फ पुरुषों के विशेषाधिकारों को समाप्त करना मात्र नहीं बल्कि लिंग भेद को भी समाप्त करना है। ताकि यौन के आधार पर उसके साथ कोई भेदभाव न रह जाय। कुछ लोग गर्भनिरोधकों को स्त्री की स्वतंत्रता का ज़रिया मानते हैं। लेकिन इसके विपरीत वह नारियों की अधिकतम यौन शोषण का रास्ता खोलता है। इससे महिलाओं के स्वास्थ्य और सामाजिक स्थिति पर विपरीत असर पड़ता है।

समाजवादी स्त्रीवादियों ने मार्क्सवादी विचारों एवं उग्र उन्मूलनवादी विचारों का समन्वय करके अपने विचारों को रूपायित किया। उनके हिसाब से स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए आर्थिक उत्पादन में उनकी सक्रिय भागीदारी को बढ़ाना है। उसके साथ प्रजननात्मक एवं यौनशोषण पर भी नियंत्रण लाना ज़रूरी है। यदि शैक्षिक, कानूनी और चिकित्सकीय सहायता भी अगर मिलें तो वह सम्मानपूर्वक जीवन बिता पायेंगी। इन्होंने स्त्री और पुरुष दोनों के सहयोग से एक नये समाज का विकास कराने की दिशा प्रदान की।

1.3.2.5 उत्तर आधुनिक स्त्रीविमर्श

उत्तर आधुनिक मान्यता के मूल में केंद्रीय बहुलता है । इनका मानना है वर्ग, नस्ल और संस्कृतियों के अनुसार स्त्री का अनुभूति मण्डल भी बदलता रहता है । पुरुष कभी भी उनके अनुभूतियों को ठीक से व्यक्त नहीं कर सकता । इसलिए हमारा सारा साहित्य, वर्तमान सांस्कृतिक और अकादमिक जीवन पुरुष दृष्टिकोण से भरा पड़ा है । इसके क्षेत्र में डेल स्पेन्डर की पुस्तकें प्रसिद्ध हैं । जो वुमेन आफ आइडियाज़, फैमिनिस्ट थ्योरीज, थ्री सेंचुरीज़ ऑफ वुमेन्स इंटलेक्च्युअल ट्रडीशन, मैन मेड लैंग्वेज तथा फार द रेकोर्ड, द मेकिंग एण्ड मीनिंग आफ फैमिनिस्ट नॉलेज इन्हीं विषयों पर केन्द्रित हैं । इनके इस काम को आज के दौर के उत्तर आधुनिक दर्शन के साथ जोड़कर देखा जाता है ।

इसी सोच के चलते भाषा, संवाद तथा लेखन में नाना प्रकार के प्रयोग स्त्रीवादियों की गतिविधियों का एक केन्द्रीय कार्य हो गया । इसके साथ भाषा में पुरुषवर्चस्ववादी व्यवस्था द्विपद विलोमों की सृष्टि की । इन द्विपदों में एक उच्चाशय को सूचित करता है तो दूसरा निम्नाशय को । इसमें भी स्त्रियों को दोयम दर्जे का बना डाला । इसप्रकार पितृसत्तात्मक समाज की भाषा भी स्त्री के साथ न्याय नहीं करती । इसलिए आज स्त्रियों को नयी भाषात्मक प्रयोगों से भाषा की सरहदों को तोड़ने में उसकी मुक्ति दिखती है । वह इस भाषा के ज़रिए अपने भोगे हुए यथार्थ का चित्रण करना चाह रही है और करती भी है ।

1.3.2.6 पारिस्थितिक स्त्रीवाद

बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक के स्त्रीवादी आन्दोलन की नई धारा में इको-फेमिनिज़्म का प्रादुर्भाव हुआ । सबसे पहले फ्रेंच फेमिनिस्ट फ्रान्स्वा द यूबोन ने इसकी दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की । इनका मानना है पुरुषसत्तात्मक समाज में स्त्री और प्रकृति दोनों ही शोषण के शिकार हैं । अनादि काल से ही मिट्टी और स्त्री में बीज बोने का अधिकार पर पुरुषों ने अपना हक जमाया

हुआ है । इसके साथ पूँजीवाद और सामंतवाद भी पर्यावरण नाश का कारण बन गया है । इको-फेमिनिज़्म का लक्ष्य पुरुषसत्तात्मक समाज के अधिकार और उसकी संरचना को शिथिल कर देना है ।

प्रकृति को बचाने के लिए हमेशा स्त्री सामने आयी है । अपने आपको बचाने के साथ पृथ्वी को, पृथ्वी की अन्य शोषित वर्गों को जो अलग अलग वर्ण, नस्ल, जाति के क्यों न हो, जीव-जन्तुओं को बचाने का दायित्व स्त्री ने अपने ऊपर ले लिया है । "इस प्रकार पृथ्वी और स्त्री को तथा अन्य उपेक्षित वर्गों को पितृसत्तात्मक पूँजीवादी शोषण से बचाने के लिए प्रकृति के साथ मिलकर जीने की जो नवीन विचारधारा फेमिनिज़्म और परिस्थितिवाद दोनों के संयोग से रूपायित हुई उसे इको-फेमिनिज़्म कहा जाता है ।"[26] यह स्त्री और प्रकृति के विमोचन की तलाश में रूपायित है । जिससे समाज में जैव-व्यवस्था और मनुष्य जीवन के बीच संतुलन बरकरार रहेगा । इसको मानवतावाद के रूप में भी व्याख्यायित कर सकते हैं ।

आधुनिक फेमिनिस्टों में सिमोन द बाउआ ने ही सबसे पहले इसपर अपना विचार प्रकट किया था। अमेरिका में 'Institute of Social Ecology' नामक संस्था ने 1976 में इको-फेमिनिज़्म का पाठ्यक्रम चलाया । इसे चलाने का दायित्व पारिस्थितिक स्त्रीवाद की मुख्य दार्शनिक मेडम नेस्त्रा किंग का था। 1981 में उन्होंने 'फेमिनिज़्म और प्रकृति की कला' नामक रचना की । उसी समय मेरी डाली का 'गौन इकोलॉजी' और सूसन ग्रीफ की 'स्त्री और प्रकृति' शीर्षक रचनाएँ प्रकाशित हुई । इसके प्रचार में करोलिन मरचेंट का ग्रन्थ 'प्रकृति की मृत्यु' सहायक निकला । नोबल पुरस्कार प्राप्त बंगारे मथाई भी इस क्षेत्र में सक्रिय रही ।

पुरुषलिंगाधिपत्य की सृष्टि है आज का पारिस्थितिक संकट । स्त्रियों ने इस संकट को पहचान कर प्रकृति की रक्षा करना अपना कर्तव्य माना । मुख्य इको-फेमिनिस्ट विचारक हैं मेरी रोस

---

[26] के.वनजा- इको-फेमिनिज़म, पृ.11

राउफोर्ट रूथर, इवोन गिबारा, वंदना शिवा, सूसन ग्रिफिन, आलीस वाकर, स्टारहॉक, साली माकफॉग, लूइसाह टीश, सन अईली-पार्क, पोला गन अलन, मोनिका स्जू, ग्रेटा गार्ड, करन वारेन, आन्टी स्मिथ आदि। पूरे वैश्विक स्तर पर इनके विचारों का प्रभाव पड़ा। स्त्रीवादी चिंतन की विविध धाराओं के अध्ययन करने से हमें पता चलता है कि पश्चिमी देशों में महिला आन्दोलन ज़ोरों पर था। स्त्री को अपनी लडाई खुद लड़नी है क्योंकि दमनकर्ता कभी भी आगे बढ़कर उदारता नहीं दिखाएंगे। उन्हें अपनी माँगें खुद करनी है, तब नई परिस्थितियों का जन्म होने की संभावना है। विविध आन्दोलनों के ज़रिए नारी के विकास में बाधक, सारी परिस्थितियों में बदलाव लाने की कोशिश इन स्त्रीवादियों ने की। धीरे-धीरे भारत में भी इनका प्रभाव पड़ने लगा।

1.3.3 भारतीय परिदृश्य

भारतीय सभ्यता का गौरवशाली इतिहास लगभग 5000 वर्ष पुराना है। किसी भी सभ्यता की अन्तरात्मा को भली भाँति समझने के लिए, उसमें आधी आबादी स्त्री की स्थिति का आकलन करना बहुत ज़रूरी है। समाज के निर्माण में पुरुष की अपेक्षा स्त्री का योगदान अधिक महत्वपूर्ण है। अपनी करुणा, ममता, परिचर्या, कर्तव्यपालन आदि गुणों के द्वारा स्त्री परिवार, समाज और राष्ट्र को अपना समर्पण करती है। शास्त्रों और धर्मग्रन्थों ने स्त्री को शक्तिरूपा कहा है।

मनु ने 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' कहकर स्त्री को देवी पद पर आसीन किया। लेकिन वास्तविक जीवन में अशिक्षा, पुरुषवर्चस्व, रूढ़िवादिता और आर्थिक पराधीनता के कारण स्त्री का जीवन विवशता से भरा था। शिक्षा की कमी ही उसकी पराधीनता का सबसे बड़ा कारण

था । शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जिसके ज़रिए देश और समाज में होनेवाले परिवर्तनों को हम पहचान सकते हैं । भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति को पहचानने के लिए सबसे पहले यही जानना होगा कि यहाँ स्त्री को शिक्षा के समान अवसर मिले हैं या नहीं । स्त्री का शोषण जितना पुराना है उतना ही पुराना है उस शोषण से मुक्ति पाने का उनका संघर्ष ।

वैदिक काल को भारतीय स्त्री की स्थिति का 'स्वर्ण युग' माना जाता है । उस काल में नारी की स्थिति पर्याप्त सम्मानपूर्ण थी । पुरुषों के सदृश्य सामाजिक और आर्थिक कार्यों में स्त्री का भी योगदान होता रहा । विद्या का आदर्श 'सरस्वती' में धन का 'लक्ष्मी' में, शक्ति का 'दुर्गा' में, सौंदर्य का 'रति में, पवित्रता का 'गंगा' में माने जाते थे । इस प्रकार नारी समस्त देवताओं का सम्मिलित रुप थी । इस युग की सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि स्थितियों को जानने का एकमात्र साधन ऋग्वेद है । ऋग्वेद की ऋचाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस युग में स्त्रियों को पुरुष के समान ही शिक्षा के अवसर सुलभ थे । स्त्री शिक्षा के पर्याप्त प्रसार से उस युग में अनेक स्त्रियां मन्त्रदृष्टा तथा कवि के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की । इनमें प्रमुख थी लोपमुद्रा, विश्वरा, सिकता, निवावरी, गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा, घोषा, अपाला आदि । गार्गी-याज्ञवल्क्य एवं मैत्रेयी-याज्ञवल्क्य संवाद स्त्रियों के उच्चतम बौद्धिक क्षमता को स्पष्ट करते हैं । इन स्वतन्त्र चेता नारियों ने अनेक दार्शनिक समस्याओं पर भी गहन चिन्तन किया । 'महाभारत' की 'द्रौपदी' ने भीष्म पितामह और धर्मराज के सामने धृतराष्ट्र की सभा में जो भाषण दिया है वह नारी चेतना का ऐतिहासिक दस्तावेज है ।

1.3.3.1 थेरीगाथाएँ

थेरीगाथाएँ नारी स्वतंत्रता को प्रकट करने वाली हैं । बौद्धकाल में थेरीगाथाओं में विश्वरा, अपाला, उव्विरी जैसी महिलाएँ खुलकर स्त्री स्वतंत्रता की चर्चा करती थी । ये थेरियाँ पुरानी

मान्यताओं को ठुकराकर संघ में स्त्रियों के प्रवेश के लिए संघर्ष करती थी । उनके प्रयत्नों के तहत् स्त्रियों को स्वीकृति मिली । बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों और दर्शन का अनुगमन करने के लिए ये थेरियाँ आजीवन ब्रह्मचर्य धारण करती थी । प्राचीन भारतीय समाज में नारी की दमित स्थिति को चित्रित करने में थेरीगाथा सफल रही । एक थेरी सुमंगला माता ने भिक्षुणी बनने के पहले और बाद के अनुभवों को यों रेखांकित किया है-

"एक स्त्री मुक्त हुई
कितनी मुक्त हूँ मैं-
रसोईघर की ऊब से
भूख की गिरफ्त से
रसोईघर के खाली बर्तनों की चिन्ता से
छाता बनानेवाले बेईमान पति से ।
अब मैं शांत हूँ और सुखी भी
वासनाएँ और घृणाएँ मर गयी है
माँ बाग में जाती हूँ घने वृक्षों की छाँव में
अब अपने सुखों के बारे में सोचती हूँ ।"[27]

यह पुरुषसत्ता के उत्पीड़न और गरीबी से छुटकारा पायी एक स्त्री की स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति है । यह भारतीय साहित्य में स्त्री विमर्श का प्रामाणिक क्षेत्र है । देखा जाए तो सामाजिक और पारिवारिक शोषण से मुक्ति चाह रही स्त्रियों की चेतना की अभिव्यक्ति है 'थेरीगाथा' ।

1.3.3.2 भक्तिआन्दोलन में स्त्रियों की भूमिका

[27] मैनेजर पाण्डेय- भारतीय समाज में प्रतिरोध की परंपरा, पृ.25-26

भक्त आलवारों का समय सातवीं-आठवीं सदी के बीच था। इन आलवार भक्तों में महिला आण्डाल का स्थान इस तथ्य को प्रकट करता है कि भक्ति आन्दोलन का आरंभ वर्ण-व्यवस्था एवं नारी-पुरुष के भेद भाव को मिटाने के लिए था। यह भावना के धरातल पर सब को समान मानता था। सामाजिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में क्रान्ति मचाने वाली भारतीय नारी के रूप में आण्डाल प्रसिद्ध है। उस समय में घर-गृहस्थी से बाहर निकलकर भक्ति की राह पकड़ना एक स्त्री के लिए जोखिम से भरा काम था। उस समय उन्होंने यह कहा कि स्त्री केवल पुरुषों की वासनापूर्ती का साधन नहीं है। उसका अपना एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है। उन्होंने भक्ति के मार्ग पर चलते स्त्रियों को संगठित करने का कार्य किया।

वीर शैव भक्तों में अक्कममहादेवी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। धर्म का क्षेत्र जो स्त्री वर्ग के लिए निषिद्ध था वहाँ अपना एक स्थान बनाए रखना उनके लिए मामूली बात नहीं थी। समाज में स्त्री की परतन्त्रता के प्रति उन्होंने अपना आक्रोश प्रकट किया। बिज्जल देवी, सत्य अक्का, मुक्तायक्का, रेम्मवे निलम्मा, महादेवी आदि महिलाओं ने उनके साथ मिलकर अपनी स्वतंत्र चेतना का परिचय दिया। स्त्री चेतना की दृष्टि से देखने पर मुक्ताबाई, जनाबाई, बहनाबाई, वेनाबाई जैसी महाराष्ट्र के सन्त कवियों ने भी अपनी विद्रोही तेवर को वाणी दी थी। संत महिलाओं में विद्रोही कवयित्री मीरा का स्थान अद्वितीय है। मीरा के काव्य में समाज में व्याप्त सामंतवादी रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह है। वह गिरिधर भक्ति के संकल्प लिए राजघराने से बाहर निकली और स्त्रीत्व के सीमित दायरेवाली नैतिकता से हटने का जोखिम उठाया।

‘साज सिंगार बांध पर घूंघर लोकलाज तज नाची’

मीरा की कविता में लोकलाज, कुल की मर्यादा को लाँघने की बात बार-बार कही गयी है। मीरा का विषपान भी मध्यकालीन नारी की स्वाधीनता के लिए संघर्ष है। मीरा के युग में सती प्रथा ज़ोरों पर थी।

'भजन करस्यां सती न होस्यां मन मोह्यों घर नामी'

भोजराज के मृत्युपरान्त मीरा ने स्पष्ट रूप से सती होने से इनकार किया। वह कृष्ण की आराधना के लिए जिन्दा रही। मीरा अपने पदों में एक निडर नारी के रूप में उभर आयी। मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन की ये महिलाएँ साधारण जन को भक्ति का सन्देश देने के साथ ही साथ परम्पराओं रूढ़ियों और पुरुषवर्चस्व को तोड़ने का साहस किया। भक्ति आन्दोलन का प्रभाव जनसामान्य के मन-मस्तिष्क पर पड़ा। पूरे भारत के उस समय की कवयत्रियों और पंडिताओं का अनुशीलन करने पर यह तथ्य स्पष्टतः सामने आता है कि ये स्त्रियाँ उच्चवर्ग की या राजपुत्रियाँ थी। जिन्हें विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्राप्त थी। तेरहवीं और चौदहवीं ईस्वीं तक सामान्य स्त्री शिक्षा का अभाव रहा। नृत्य तथा संगीत जो कन्याओं को अनिवार्यतः सिखाया जाता था वह केवल गणिकाओं और देवदासियों तक सीमित कर दिया गया। अठारहवीं शती की लोकमाता अहल्याबाई ने पहलीबार राजनीतिक क्षेत्र में स्त्री को जगह दिलवाने के लिए संघर्ष किया। उन्होंने इसके लिए स्त्रियों को संगठित किया। उन्होंने प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करते हुए स्त्री शक्ति को जगाने की कोशिश की। स्त्रियों पर होनेवाला शोषण ब्रिटिश राज्य की स्थापना तक आबाध चलता रहा।

1.3.3.3 नवजागरण का स्त्री पक्ष

उन्नीसवीं सदी का दौर 'नवजागरण' का था। तत्कालीन भारत की परिस्थितियों पर गौर करें तो दिखेगा कि देश अंग्रेज़ी साम्राज्यवादी जंजीर से जकड़ा था। उस समय स्त्रियों का सवाल नवजागरण का केन्द्रीय विषय बन चुका था। क्योंकि पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त समाज सुधारकों को स्त्री की दुर्दशा ने अत्यन्त उद्वेलित किया। उन्होंने अपने उदारवादी विचारों और कार्यों के द्वारा स्त्री की स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया। उस समय सती प्रथा और बाल विवाह प्रचलन ज़ोरों पर था। नवोत्थान के उन्नायक स्त्री की इस दयनीय दशा की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट करके

उन समस्त बुराइयों के विरुद्ध कानून पारित कराने के लिए प्रयत्नशील थे। ये सुधारक स्त्री पुरुषों के समान अधिकारों के समर्थक थे।

सर्वप्रथम बंगाल में इस प्रकार की सुधारवादी लहर उठी और शीघ्र ही पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र आदि में अनेक सुधारक प्रयत्नशील दिखाई पड़ने लगे और स्त्री शिक्षा की माँग चारों तरफ से उठने लगी। नवजागरण के अगुआ राजा राममोहन राय के प्रयासों से ही 1821 में लोर्ड विलियम बैंटिक ने सती प्रथा के विरुद्ध कानून बनाया था। बंगाल के ही ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने स्त्री को शिक्षित करने के उद्देश्य से 'The utility of female education' नामक लेख लिखा। इन्हीं के प्रयत्नों से 1849 में कलकत्ता में स्त्रियों के लिए बेलून स्कूल खोला गया।

गुजरात में जन्मे स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 1875 में आर्य समाज की स्थापना की। जिसके मुख्य उद्देश्यों में एक थी स्त्री शिक्षा। दयानन्द ने स्त्री शिक्षा पर ज़ोर दिया ताकि वे शिक्षा प्राप्त कर घर तथा बाहर के सभी कर्तव्यों को बहुत अच्छी तरह से निभायें। उन्होंने शादी में स्त्री-पुरुष के हर तरह के मेल को आवश्यक माना और लड़कियों के विवाह की न्यूनतम उम्र सोलह वर्ष एवं पुरुषों के लिए पच्चीस वर्ष उचित बताया। उन्होंने गृहस्थी में दोनों के बराबर हैसियत पर बल दिया।

महाराष्ट्र के गोविन्द रानडे ने सुधारवादी आन्दोलन को तीव्र गति देने के लिए राष्ट्रीय सामाजिक परिषद की स्थापना की। उन्होंने अपनी पत्नी रमाबाई को पर्याप्त सुशिक्षित बनाया। सन् 1884 में उन्होंने एक कन्या विद्यालय की स्थापना की। स्त्रियों में शिक्षा के प्रसार के लिए स्वामि विवेकानन्द ने 'मठ' की कल्पना विकसित की। भारतीय स्त्री की दयनीय स्थिति को देखते-परखते उनका मत था महिलाओं को समुचित शिक्षा मिलने पर अपनी अनेक समस्याओं को स्वयं सुलझाने में वे समर्थ हो सकती है। भारत में थियोसफिकल सोसाइटी की संस्थापिका ऐनी बेसेण्ड भारतीय स्त्री की दुर्दशा का कारण अशिक्षा को ठहराया। उनके विचार में स्त्री को धर्म, नीतिशास्त्र,

कला, साहित्य तथा विज्ञान की शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे वे शिक्षिका, नर्स, डॉक्टर आदि बन सके ।

महात्मा ज्योतिबा फुले उनकी पत्नी सावित्री बाई फुले, झाँसी रानी लक्ष्मीबाई, पंडिता रमाबाई आदि के प्रयत्नों से उस समय समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ । ज्योति बा फुले ने अपनी पत्नी सावित्री बाई को शिक्षिका बनायी । दोनों ने मिलकर विधवाओं की दयनीय हालत में सुधार लाने का प्रयास किया । 1857 की क्रान्ति में भारत की स्वाधीनता के लिए उन्होंने अपने को न्योच्छावर कर दिया । उन्होंने मोहकता की उपेक्षा और दृढता स्त्रीत्व का लक्षण बताया। आगे देश की आज़ादी की लड़ाई में वे स्त्रियों के प्रेरणा स्रोत बनें । पण्डिता रमाबाई ने स्त्री स्वावलंबन और स्वतंत्रता पर बल दिया । उनके अनुसार शिक्षा ही स्त्री जाति की प्रगति के लिए पहली शर्त है । उन्होंने परिवार में स्त्री-पुरुष समानता की बात की । एक संघर्षशील महिला होने के नाते उन्होंने सामाजिक बुराइयों को नजरन्दाज़ न करते हुए परिवर्तन की माँग की । स्वतन्त्र चेता नारी स्वर्ण कुमारी देवी ने व्यक्तिगत स्तर पर अपनी विद्रोही चेतना का परिचय देते हुए सामाजिक चेतना को जगाने की कोशिश की ।

1.3.3.4 भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम और स्त्रियाँ

अंग्रेज़ों के साम्राज्यवादी शासन के खिलाफ महिला आन्दोलन शुरू हुआ । उस समय सरलादेवी, सरोजिनी नायडू, एनिबेसेंट, पंडिता रमाबाई, रमाबाई रानडे, स्वर्णकुमारी देवी, कादम्बिनी गांगुली, शेवन्ती बाई, त्रिम्बक, शांताबाई निकाम्बे, काशीबाई कामितकर आदि महिलाएँ राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय रहीं। पंडिता रमाबाई पूना में 'आर्य महिला समाज' चला रही थी । महिलाओं की शिक्षा के लिए इस संस्था ने महत्वपूर्ण योगदान दिया । मुंबई में 1904 में

प्रथम अखिलभारतीय महिला परिषद की स्थापना की गई । इस परिषद की अध्यक्षा श्रीमती रमाबाई रानाडे थी । "यह अपनी तरह का पहला अधिवेशन था, जिसमें सभी जाति, धर्म, वर्ग की स्त्रियाँ एक मंच पर आई और उन्होंने महसूस किया कि हम सभी औरतों की व्यथा-कथा एक ही है ।"[28] उन्होंने महिलाओं को एकत्रित करने का गंभीर कार्य किया ।

सन् 1910 में सरलादेवी ने भारत स्त्री मंडल की स्थापना की । इस संगठन ने स्त्री शिक्षा, पर्दा प्रथा, बाल विवाह जैसे मुद्दों को उठाया । वे जिज्ञासू महिलाएं घर-घर जाकर पढाने का कार्य भी करती रही । उपनिवेशवाद के खिलाफ हुए राष्ट्रीय आंदोलन में 1905 में महिलाओं ने हिस्सा लिया । कांग्रेस के मंच से सरलादेवी ने 'वंदे मातरम' गीत पहली बार गाया, जो बाद में आन्दोलनकारियों का राष्ट्रगीत बना । बीसवीं सदी के प्रारंभ में मातृत्व की शक्ति पर ज़ोर देकर मैडम कामा और सरोजिनी नायडू ने समाज को चेतावनी दी कि 'याद रखो जो हाथ पालना झुलाते हैं, वही दुनिया पर राज करते हैं ।' सन् 1917 में एनिबेसेंट की अध्यक्षता में चलाया गया कलकत्ता काँग्रेस में 'स्त्री एक्टिविज़्म' के विषय पर बात करते हुए सरोजिनी नायडु ने कहा "मैं मात्र एक महिला हूँ और मुझे आज सबसे कहना चाहिए कि जब आपका दिन शुरू हो, या कि अँधेरे में पथ प्रदर्शन के लिए प्रकाश पुंजों की आवश्यकता पड़े, और निष्ठा की राह में आपकी मृत्यु होने पर आपके मानक ध्वजवाहकों की आवश्यकता पड़े, उस समय भारत का स्त्रीत्व आपके ध्वजवाहकों एवं शक्ति संबल के रूप में आपके साथ होगा । और यदि आज मर भी जाती है तो याद रखिए चित्तौड़ की पद्मिनी की भावना के सदृश्य भारत के पुरुषों के दिलों में आपका सम्माननीय स्थान होगा ।"[29] राष्ट्रवादी आंदोलनों में स्त्रियों ने जो ताकत दी उसकी प्रशंसा उन्होंने की थी । यह उनके

---

[28] कुसुम त्रिपाठी- औरत इतिहास रचा है तुमने, पृ.44

[29] राधाकुमार- स्त्री संघर्ष का इतिहास, पृ.127

लिए जागरूकता का संदेश था। 1931 में सरोजिनी नायडू अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की अध्यक्षा बनी।

1917 में ऐनी बेसेंट, डोरोथी जिम राज दास, मालती पटवर्धन, अम्मुस्वामिनाथन, श्रीमती दादा बाई, श्रीमती अंबुजम्माल ने मिलकर 'विमेन्स इंडियन एसोसियेशन' की स्थापना की। इन्होंने पहली बार महिला श्रमिकों को प्रसूति छुट्टी तथा श्रम का लाभ दिये जाने की माँग उठायी। राष्ट्रवादी आन्दोलन में स्त्रियों की व्यापक सहभागिता सन् 1919 में रॉलट कानून बनाने के बाद ही शुरु हुई। गाँधी ने ही स्त्रियों को स्वतन्त्रता आन्दोलन में खड़ा किया था। उनके अनुसार स्वराज्य पाने में भारत की औरतों का हिस्सा आदमियों के बराबर ही है। सन् 1920 में विकसित गाँधीवादी नारीवाद 1930 के दशक तक एक बृहत आकार ग्रहण कर चुका था। "राष्ट्रीय आन्दोलन की गाँधीवादी धारा का वर्ग-चरित्र चाहे जो भी हो और उसने भारत में चाहे जैसे भी पूंजीवादी शासन को जन्म दिया हो, औरतों में नया आत्मविश्वास भरने, उनकी सामाजिक चेतना को जाग्रत करके उसका धरातल उन्नत करने और मुक्ति की आकांक्षा को व्यवहार में रूपांतरित करने में गाँधी की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण थी। बिना कोई नारी-आन्दोलन खड़ा किये ही गाँधी ने नारी-मुक्ति-आन्दोलन के संगठित होने की पूर्व शर्त को पूरा करने में अहम भूमिका निभायी।"[30] इस समय स्त्रियों के लिए देश में नई जगह बन रही थी।

इस समय सारे देश में महिला संगठनों के साथ-साथ स्वयंसेवी संगठनों की संख्या में व्यापक वृद्धि हुई। मरग्रेट, कुंजिस, कमलादेवी चट्टोपाध्याय के निरंतर माँग किए जाने से दंडियात्रा एवं नमक सत्याग्रह में महिलाओं को शामिल किया गया। आंदोलन में महिलाओं के अलग संगठन तैयार करके जुलूसों का आयोजन, धेराव, प्रभातफेरी, स्त्रियों को चरखा चलाने का प्रशिक्षण देने के साथ खादी बेचने का काम करती रहीं। 1940 के बाद स्त्री-आन्दोलन पूरी तरह से स्वाधीनता

---

[30] कात्यायनी- दुर्ग द्वार पर दस्तक, पृ.86

संग्राम में परिवर्तित हो गया। सन् 1947 के राजनैतिक आज़ादी हासिल करने के बावजूद साधारण जनता बद्हालत में ही रही। लेकिन स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान स्त्रियाँ समाज में अपने ऊपर होनेवाले शोषण के कारण को पहचानने लगीं और बाद में वे अपने हक की माँग करने लगीं।

1.3.3.5 साहित्य में स्त्री चेतना के चार हस्तक्षेप

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में स्त्री दिशा का सुधार पुरुषों के हाथों से होने लगा। नवजागरण के तहत् मिले इस स्त्री चेतना की बागडौर स्त्रियों ने अपने हाथ में ले ली। बीसवीं सदी के प्रारंभिक दशकों में स्त्री चेतना व्यक्तिगत एवं सामाजिक स्तर पर आन्दोलन का रूप लेने लगी। बंग महिला, एक अज्ञात हिन्दु औरत, तारबाई शिन्दे, सुभद्राकुमारी चौहान, महादेवी वर्मा आदि स्त्रियों ने व्यक्तिगत स्तर पर अपनी विद्रोही चेतना को साहित्य के माध्यम से प्रकट करते हुए सामाजिक चेतना को जगाया। 19वीं सदी ने स्त्री-चेतना के निर्माण की वह पृष्ठभूमि तैयार की जिसके दौरान आगे चलकर यह चेतना एक दृढ़ आकार ग्रहण कर सकी।

1.3.3.5.1 बंग महिला

राजेन्द्रबाला घोष का लेखकीय नाम था बंग महिला। जिस सामाजिक परिवेश में उनका जन्म हुआ वह भिखमंगों, गरीबों, अशिक्षित और रूढ़िवादी स्त्रियों से भरा पडा था। 19वीं शताब्दी के आखिरी और बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में नारी-समस्याओं तथा राष्ट्रीय जागरण को लेकर उस समय की पत्रिकाओं में अनेक लेख निरन्तर लिखती रही। उनके अधिकांश लेखन विवाह के बाद का था। वह भारतीय महिलाओं के भविष्य को लेकर चिंतित थी। स्त्रियों की शिक्षा से संबन्धित उनका मन बहुत ही प्रगतिशील था। उन्हें तत्कालीन मिशनरियों द्वारा दी जानेवाली शिक्षा पर एतराज़ था, क्योंकि उनकी शिक्षा-व्यवस्था का उद्देश्य केवल ईसाई धर्म के प्रति अभिरुचि बढ़ाना था। उन्होंने नारी-शिक्षा के प्रति तत्कालीन सामाजिक दृष्टिकोण की तीखी आलोचना की।

उनकी मौलिक रचनाओं में दो कहानियाँ – 'दुलाईवाली' और 'भाई बहन' एवं चार लेख – 'गृह-चर्चा', 'संगीत और सुई का काम', 'स्त्रियों की शिक्षा' और 'हमारे देश की स्त्रियों की दुर्दशा' आदि स्त्रियों से संबन्धित है । बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में नारी अधिकार को लेकर कलम को इतना साहित्यिक बनाने का ख्याल बहुत कम स्त्रियों के मन में जागा था । प्रेम-विवाह, पति-परिवर्तन और विवाह-विच्छेद आदि विषयों की कल्पना एक स्त्री द्वारा उस युग में की नहीं जा सकती थी लेकिन बंग महिला ने ऐसा कर दिखाया । वे पर्दा-प्रथा को नारी के जागरण में अवरोध मानती थी । अपने लेखों में उन्होंने नारी-अधिकार की आवाज़ को बुलन्द किया । जिस समय वे रचना क्षेत्र में उतरी उस समय देश की आज़ादी और सांस्कृतिक क्रान्ति का समय था । अपने लेखनों में उन्होंने देश में बडे पैमाने पर फैली हुई रूढ़ियों तथा अन्धमोहों से देश की मुक्ति पर ज़ोर दिया ।

1.3.3.5.2 ताराबाई शिन्दे

1882 में 19वीं सदी के सामाजिक माहौल में स्त्री की स्थिति पर प्रश्न चिह्न लगाया गया । उस समय 'स्त्री-पुरुष तुलना' नामक ग्रन्थ लिखकर ताराबाई शिन्दे ने स्त्री-पुरुष की समानता पर बल दिया । उस समय पुरुष द्वारा स्त्री पर किये जाने वाले शोषणों पर आक्रोश प्रकट करती हुई वे सवाल करती हैं - "तुमने अपने हाथों में सब धन दौलत रखकर नारी को कोठी में दासी बनाकर, घौंस जमाकर दुनिया से दूर रखा । उसपर अधिकार जमाया । नारी के सद्‌गुणों को दुर्लक्षित कर अपने ही सद्‌गुणों के दिये तुमने जलाये। नारी को विद्याप्राप्ति के अधिकार से वंचित कर दिया। उसके आने जाने पर रोक लगा दी । जहाँ भी वह जाती थी, वही उसे उसके समान अज्ञानी स्त्रियाँ ही मिलती थीं । फिर दुनियादारी की समझ कहाँ से सीखती वह ?"[31] इसप्रकार तत्कालीन स्त्री

---

[31] ताराबाई शिन्दे- स्त्री-पुरुष तुलना, पृ.25

की तनाव ग्रस्तता को वाणी दी गयी। विधवाओं पर किये जानेवाले अत्याचार, तत्कालीन धार्मिक कट्टरताओं और अनाचारों पर तीखा प्रहार भी उन्होंने किया। साथ ही साथ उन्होंने पुरुषसत्तात्मकता की अहंग्रस्तता पर वार करके एक जबरदस्त सामाजिक क्रान्ति का विस्फोट किया।

1.3.3.5.3 अज्ञात हिन्दू औरत

इनके द्वारा लिखित 'सीमंतनी उपदेश' नामक पुस्तक स्त्री विमर्श की आरंभिक पुस्तक के रूप में ऐतिहासिक महत्व रखती है। इसकी तार्किकता सीधे आधुनिक चिंतन से जुड़ती है। यह रचना उत्बोधनात्मक शैली में उपदेश देने के उद्देश्य से लिखा गया था। लेखिका भारतीय संदर्भ में स्त्री की दयनीय दशा का विस्तार से चर्चा करती है। लेखिका पूरी विवाह व्यवस्था, विधवाओं की समस्याएं आदि पर अपना प्रबल विचार प्रस्तुत करती है। उनके अनुसार अज्ञानतावश समाज में स्त्री की स्थिति बंदी की सी रही है। "बेशक, पहले हमारी हिन्दी बहनों को बुरा मालूम होगा मगर जरा गौर कर दिल में जगा देंगी तब खुद मालूम कर लेंगी कि हम पर किसकी मुसीबत है और हम पर कितना जुल्म किया जाता है। हम कैसे बेजान की माफिक सहती हैं। हम कब से इस जेलखाने में बन्द की गयी है। अब हमको खुद इस जेलखाने से निकालने की तद्बीर करनी चाहिए।"[32] इस तरह लेखिका स्त्री को गुलामी से मुक्त होने का आह्वान देती है। स्त्री-पुरुष समानता का प्रबल समर्थक बन कर वे उपस्थित होती है। गहनों को वे गुलामी का प्रतीक मानती है और विधवाओं की समस्याओं पर विस्तार से चर्चा भी करती है।

एक तटस्थ आलोचनात्मक दृष्टि का परिचय देती हुई व्यापक सामाजिक जागरण लेखिका का उद्देश्य था। इस पुस्तक के बारे में धर्मवीर का कहना है - "यह औरत के दर्द और विद्रोह का सुलगता हुआ दस्तावेज़ है। जब-जब पढ़-लिखकर उसकी समझ और संवेदना का विस्तार हुआ है

---

[32] सं. डॉ. धर्मवीर- सीमंतनी उपदेश, पृ.45

तब-तब सदियों से हो रहे अन्याय के खिलाफ उसके आँसू आग बनकर घर की चारदीवारी के बाहर बरसने लगते हैं। तब वह अपने विस्तार को तलाश करने लगती है और आसमान की ऊँचाइयां छूना चाहती है। जब वह पुत्री, बहन और पत्नी की इमेज के साथ-साथ अपने भीतर के व्यक्ति को भी खोजना चाहती है। यह किताब नारी के भीतर से उसी शाश्वत व्यक्ति की खोज का हिस्सा है।"[33] इसप्रकार यह किताब हमारे हिन्दुस्तान की आज की बेटियों के लिए घोषणा पत्र के समान है। इसमें समाज के कल्याण एवं मानवीयता के निर्माण का तीखा स्वर विद्यमान है।

1.3.3.5.4 सुभद्राकुमारी चौहान

सुभद्राकुमारी चौहान का जन्म सन् 1904 में प्रयाग में हुआ। उनके द्वारा कविता एवं कहानियां लिखी गई हैं। उन्हें 'मुकुल' काव्यसंग्रह और 'बिखरे मोती' कहानी संग्रह पर 'सेकसरिया पुरस्कार' प्राप्त हुआ है। उनको अपनी पढ़ाई अधूरा छोड़कर विवाह करना पडा। लेकिन विवाह के बाद भी वे अपने कार्यक्षेत्र में सक्रिय रही। 'राष्ट्रीय भावना' उनकी कविता की सबसे बड़ी विशेषता है। वे राष्ट्रीय काव्यधारा की कवियित्री हैं। उन्होंने अपनी कविता को सिर्फ कागज़ तक केन्द्रित न रखकर अपने कार्यक्षेत्र में उतारने का प्रयास किया है जिसमें वे सफल सिद्ध हुई है। बालगंगाधर तिलक, लाला लजपत राय और महात्मा गांधी जैसे महान लोग बहुत बार गिरफ्तार हुए देखकर वे अपनी कविता में कहती है-

'सदियों सोयी हुई वीरता जागी, मैं भी वीर बनी।

जाओ भैया, विदा तुम्हें करती हूँ, मैं गंभीर बनी।

याद भूल जाना मेरी उस आँसूवाली मुद्रा की।

कीजे यह स्वीकार बधाई चोटी बहिन 'सुभद्रा' की।'

---

[33] सं. डॉ.धर्मवीर- सीमंतनी उपदेश, पृ.26

इस प्रकार वह जीवन को कविता में उतारती है। सहजता एवं स्त्री चेतना उनकी कविता का और एक गुण रहा है। उनकी कवितायेँ स्त्री पक्ष में खडी हैं। नारी में वीरता जागृत करने के लिए उन्होंने अपनी कविता के लिए 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' को चुना, जो नारी, पत्नी, रानी, शासक, वीर, माँ एवं अमर बलिदानी है। उन्होंने अपनी कविता में स्त्री के जैसे बालिका, प्रेमिका, पत्नी, बहन और माँ सभी रूपों में उनकी संवेदनाओं को स्थान दिया। उन्होंने राष्ट्रीय काव्यधारा के प्रचलित रूपकों को न अपनाकर अपने रूपक स्वयं चुन लिया। स्वतन्त्रता के बाद सन् 1948 में एक मोटर दुर्घटना में उनकी मृत्यु हुई।

1.3.3.5.5 महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा अपने गद्य में सीधे सामाजिक सरोकारों से जुड़ती है। उनके समय में स्वतन्त्रता आन्दोलन में स्त्रियों की भूमिका संपूर्ण तेजस्विता से उभर आयी है। उनके गद्य 'श्रृंखला की कडियाँ' में उनके उग्र विद्रोही तेवर देखने को मिलती है। समाज में स्त्री की पराधीनता का कारण उनका अशिक्षित होना ही है। "आज हमारे हृदयों में शताब्दियों से सुप्त विद्रोह जाग उठा है। इस समय हमारा इष्ट स्वतंत्रता है जिसके द्वारा हम अपने संग लगे हुए बन्धन को एक ही प्रयास में काट सकती है। इसके लिए शिक्षा चाहिए। उसे चाहे किसी भी मूल्य पर क्रय करना पडे, परन्तु आज वह हमें महँगी न लगेगी, कारण वह हमारे शक्ति के, बल के कोष की कुंजी है। वही उस व्यूह से निकलने का द्वार है जिसमें दुर्भाग्य हमें न जाने कब से घेर रखा है।"[34] स्त्री को अपने अधिकारों के प्रति सजग रहने की चेतावनी इसमें दी गयी है।

उन्होंने स्त्री के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक अधिकारों की माँग की है। उनके विचारों में ध्यान देने योग्य बात यह थी कि उन्होंने पुरुष के धनोपार्जन के साथ स्त्री के पारिवारिक उत्तरदायित्व को भी महत्वपूर्ण ठहराया। उनका मानना है कि स्त्रियों को आधुनिक बनने के लिए

---

[34] महादेवी वर्मा- श्रृंखला की कड़ियाँ, पृ.98

कुछ परंपरागत मूल्यों को ठुकराना होगा । "भारतीय समाज में जिस अनुपात से स्त्री जाग्रत हो सकी उसी के अनुसार अपनी सनातन सामाजिक स्थिति के प्रति उसमें असन्तोष भी उत्पन्न होता जा रहा है । उस असन्तोष की मात्रा जानने के लिए हमारे पास अभी कोई मापदण्ड है ही नहीं, अतः यह कहना कठिन है कि उसकी जागृति ने उसकी चिर-अवनत दृष्टि को जिस क्षितिज की ओर फेर दिया है, वह उजले प्रभात का सन्देश दे रहा है या शक्ति संचित करती हुई आँधी का । "[35] वे अपनी लेखनी के जरिए भारतीय नारी के पक्ष में सहजता और तटस्थता के साथ लडती रहीं ।

1.3.3.6 स्वतंत्र भारत में नारी मुक्ति - आन्दोलन

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी ताकत, जोश और साहस के साथ उन्होंने सशस्त्र संघर्ष को जारी रखा । तंभागा, तेलंगाना, वारली इत्यादि आन्दोलनों में मेहनतकश औरतों की इस विशेषता को देखा जा सकता है । वे संघर्षों के नेतृत्व को भी संभालने लगीं । औरतों ने यह लड़ाई सिर्फ आर्थिक शोषण के खिलाफ ही नहीं, पुरुषवर्चस्व के खिलाफ भी जारी रखीं । इन्हीं आन्दोलनों से जुड़ी औरतों ने यह अनुभव करने लगी थी कि उनके ऊपर होनेवाले शोषण पुरुषों से भिन्न हैं । इसके तहत वामपंथी, समाजवादी, नक्सलवादी, ट्रटस्की जैसे विचारों वाले महिलाओं ने 'स्वायत्त महिला आन्दोलन' शुरू किया ।

सन् 1958 में सरकार ने एक राष्ट्रीय समिति की स्थापना की । उस समिति की मुख्या थी 'दुर्गाबाई देशमुख', जो स्त्री शिक्षा के सुधार के लिए प्रयत्नरत थीं । सन् 1961 में सरकार के मातृत्व लाभ का कानून बनाया । सन् 1972 में इला भट्ट में 'सल्फ एम्पलाइड विमेन्स एसोसियेशन' (सेवा) की स्थापना की । 1973 में उत्तराखंड के गढ़वाल में हुए 'चिपको आन्दोलन' की शुरुआत पर्यावरण

---

[35] वही, पृ.91

विद् सुन्दरलाल बहुगुणा एवं चण्डी प्रसाद ने किया। गौरादेवी के 'चिपको आन्दोलन' ने स्त्रियों को प्रकृति के अधिक निकट खड़ा कर दिया।

विश्वव्यापी स्त्रीवादी आन्दोलनों को मद्देनज़र रखकर संयुक्त राष्ट्रसंघ ने 8 मार्च 1975 को महिला दशक स्वीकार किया। 1975-80 तक महिला चेतना का काल था। उस समय भारतीय स्त्री में अपनी-अस्मिता का अहसास जागा। बलात्कार, दहेज, दहेज हत्या और पुलिस के अत्याचार आदि इस दौर के महिला आन्दोलन के मुख्य मुद्दे थे। कानूनों में जो कमियां है उसे दिखाकर उसमें परिवर्तन की माँग की गयी। 1980 में स्त्री-भ्रूण हत्या की समस्या सामने आयी। आर्थिक स्वावलंबन की ज़रूरत वे महसूस करने लगी। 1985 में मेधा पाटकर ने 'नर्मदा बचाओ' आन्दोलन चलाया, जो सीधा स्त्री को प्रकृति से जोडता था। 1975-90 तक स्वायत्त महिला आन्दोलन ने जो भी कार्य किए, उससे भारत में नारीवादी संस्कृति का जन्म हुआ। 90-94 में वेश्यावृत्ति का संस्थागत पैमाने पर व्यावसायीकरण हो रहा था। सौंदर्य प्रतियोगिता एवं विज्ञापन के नाम पर स्त्री अपने देह को खुलेआम प्रदर्शित करने लगी। स्त्रियों से जुड़ी सभी समस्याओं पर कानून बनाया गया। 21वीं सदी की शुरुआत में सन् 2001 वर्ष को स्त्री-सशक्तीकरण का वर्ष घोषित किया गया। इस समय तक अनेक ऐसे संगठनों का निर्माण हो चुका था जो स्त्रियों के सुधार के लिए कार्यरत थे।

महिला संगठनों के कार्यकलापों और आंदोलनों ने देश के बुद्धिजीवियों को महिलाओं पर साहित्य लिखने के लिए प्रेरित किया। पत्र-पत्रिकाओं में महिला विशेषांक निकलने लगे। नारी जागरण की आवाज से सरस्वती, प्रभा प्रताप, अभ्युदय, मर्यादा, सुधा और माधुरी जैसी पत्रिकाएँ मुखरित हो उठी। महिलाओं से संबन्धित विषयों पर सेमिनार कांफ्रेंस होने लगे। दहेज बलात्कार, पारिवारिक हिंसा जैसी घटनाओं को समाचार पत्रों में छापा जाने लगा। महिला को केन्द्र में रखकर डाक्यूमेंटरी फिल्में बनायी गयीं। स्वायत्त महिला संगठनों ने नुक्कड़ गीतों, नुक्कड़ नाटकों

द्वारा नारी को जागृत किया। स्वातंत्र्य-पूर्व महिला कथाकारों में प्रमुख है उषादेवी मित्रा, कमला चौधरी, कमला त्रिवेणी शंकर, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, चन्द्रवती ऋषभसेन जैन, तारा पाण्डे, तेजरानी पाठक, महादेवी वर्मा, राजेन्द्रबाला घोष, रामेश्वरी देवी चकोरी, शिवरानी देवी, सत्यवती मल्लिक, सुभद्राकुमारी चौहान, सुमित्रा कुमारी सिंहा, हेमवती देवी आदि। उन्होंने युग समाज की समस्याओं से जुड़कर साहित्य लिखा। स्वतंत्रता प्राप्ति के आसपास एक और पीढ़ी इन रचनाकारों के साथ खड़ी हो गयी, जो है दिनेशनन्दिनी, रजनी पनिकर, कंचनलता सब्बरवाल, छठे दशक के शिवानी, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियंवदा, शशिप्रभा शास्त्री आदि। समकालीन समय तक आते-आते अनेक लेखिकाएं गद्य के क्षेत्र में आयी जिन्होंने स्त्री को उसकी अस्मिता की पहचान दिलाने के लिए संघर्ष किया। उसका जिक्र बाद में विस्तार से करेंगे।

1.3.4 केरलीय परिदृश्य

केरल के इतिहास निर्माता स्त्रियों में आॉट्टगल, तिरुवितांकूर, अरक्कल आदि स्थानों की रानियाँ एवं बीवियां गिनी जाती हैं। यहाँ के लोकगीत एवं लोककथाओं में स्त्रियों का सान्निध्य उज्ज्वल रहा। 'यक्षिकथा', 'तेय्यकथा' आदि में शक्तिस्वरूपा नारियाँ उपस्थित दिखाई पड़ती हैं। 'वडक्कन पाट्टु' में वीर वनिताओं की कहानियाँ हैं। 'तेक्कन पाट्टु' के अन्तर्गत आनेवाली नीलिकथा, नागकन्निकथा, पोन्नरित्तालकथा, चेम्पकवल्लिकथा आदि लोककथाएँ स्त्री केन्द्रित हैं। जाति व्यवस्था और पुरुषवर्चस्व के खिलाफ प्रतिरोध जतानेवाली अयिलाण्डी कुंजरली, ओमनत्तम्पुरान, कालिप्पुलयी, मुंज्यालनपाडत्ते कुंजलेच्चि, चेम्पुलयी आदि लोकगीतों में स्त्रियों की संघर्षगाथा प्रस्तुत है। 'अडियात्ति' स्त्रियों को पुरुषों के जैसा समान अधिकार प्राप्त था यह भी इन लोकगीतों में स्पष्ट व्यंजित है।

अंग्रेज़ों की कूटनीति के खिलाफ चलाये गये 'पष्रशी कलापों' में परंपरागत युद्ध तंत्रों में सिद्धहस्त कुरिच्य, कुरुम स्त्रियों ने सशक्त संघर्ष किया। जातिप्रथा एवं सवर्ण पुरुषवर्चस्व के विरुद्ध केरल में चलाये गये 'नाडार संघर्षों', 'मेल्मुण्डु विप्लव', तोलशीला संघर्ष आदि नामों से जाने जाते हैं। उनका मुख्य लक्ष्य स्त्रियों को मेलमुण्डु (उपरिवस्त्र) धारण करने का अधिकार दिलवाना था। उस समय कट्टर जातिव्यवस्था के खिलाफ कुरियेडत्त तात्री का वैयक्तिक संघर्ष ध्यान देने योग्य रहा। रात में जेठ ने उसके साथ जबरदस्ती की। इस अन्याय के खिलाफ प्रतिशोध जाहिर करते हुए उसने 65 पुरुषों के साथ संबन्ध स्थापित किया। बाद में नम्पूतिरी समुदाय में हुए सुधारों के पीछे तात्री के प्रतिरोध की ऊर्जा रही है।

19वीं सदी के उत्तराद्र्ध में ईषव, पुलय, नायर आदि समुदायों में कुछ सुधार हुआ। 'वैक्कम सत्याग्रह' में वीर मृत्यु प्राप्त चिट्टेडत्तु शंकुप्पिल्ला की माँ पार्वतियम्मा, जिसने बहुजन्मीत्व प्रचलित समाज में अपने पति एक पत्नीव्रत न होने से वैवाहिक जीवन को ठुकराकर स्वगृह वापस जाने की हिम्मत की। उसने अपने बेटे को समाज सुधारक बनाया। 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में नायर समुदाय की के. चिन्नम्मा ने स्त्रियों के उद्धार के लिए आवाज़ उठायी। उन्होंने अनाथ स्त्रियों और बच्चों के लिए 'हिन्दू महिला मन्दिर' की स्थापना की। 1910 में गुलामों के मुक्ति के लिए आयोजित एक नायर सम्मेलन में चिन्नम्मा ने एक सवाल उठाया - "अपने ही घर की महिलाएँ रसोई में अस्वतंत्र जीवन बिताने पर आप लोग समाज सुधार की नारा लगाते हुए कहाँ जा रहे हो? यदि घरकी इस स्थिति में बदलाव लाकर सामाजिक बदलाव के लिए अगर आह्वान करेंगे तो ज्यादा सार्थक सिद्ध होगा।"[36] इस प्रकार पहली बार एक स्त्री ने एक सार्वजनिक सम्मेलन में स्त्रियों के पक्ष में अपनी आवाज़ बुलन्द की। 20वीं सदी के प्रारंभ में अय्यनकाली के नेतृत्व में भी स्त्रियों के उन्नमन के लिए संघर्ष चला।

---

[36] एम.पी. विनुकुमार- चरित्र वषिकलिले स्त्रीकल, पृ.18

'प्रत्यक्ष रक्षा दैव सभा' की संस्थापक कुमारगुरुदेव के देहान्त के बाद उनकी पत्नी जानम्मा ने दलितों के उद्धार के लिए अपना जीवन समर्पित किया। इस समय नम्पूतिरी के मनुष्य बनाने के उद्देश्य से 'योगक्षेम सभा' की स्थापना हुई। 'योगक्षेम' मासिक पत्रिका में स्त्री शिक्षा से संबन्धित रचनाएँ प्रकाशित हुई। नम्पूतिरी पुरुषों को अन्य जाति से तात्कालिक विवाह जायज है तो स्त्रियों को भी इसकी छूट मिलनी चाहिए, यह प्रमेय पारित किया गया। घोषा बहिष्कृत कर अनेक अंतरजनों ने सम्मेलन में भाग लिया। परिणामस्वरूप 1941 में गुरुवायूर योगक्षेम सभा में स्त्रियों पर होनेवाले अन्याय पर चर्चा हुई। इसमें स्त्रियों के आर्थिक स्वावलंबन की आवश्यकता महसूस हुई। इसके तहत् लक्किड़ी में स्त्रियों के लिए कामगर क्षेत्र बनाए गए। यहाँ से नम्पूतिरी स्त्री दूसरी जाति के स्त्री के साथ मिलजुलकर काम करने लगीं और उन्होंने मिश्रविवाह करने और अपने अधिकारों के लिए लड़ने की शक्ति हासिल की।

ललितांबिका अन्तर्जनम, देवकी वार्यर, देवकी नरिक्काट्टिरी, पार्वती नेन्मिमंगलम आदि ने अंतर्जातीय विवाह, विधवा विवाह, क्षेत्र प्रवेशन आदि को प्रोत्साहित किया। 'योगक्षेम सभा' के प्रवर्तक 'आर्यपल्लम' ने नम्पूतिरी समुदाय में व्याप्त 'संबन्धम्' नामक कुप्रथा का विमर्शन किया। 'घोषा' बहिष्कृत करने से देवकी नरिक्काट्टिरी को अपने पिता की मृतशरीर तक देखने की अनुमति नहीं मिली। उमादेवी अन्तर्जनम का विचार था कि अगर समाज में उन्हें स्वीकृति मिलनी है तो ज्ञान को अपना आयुध बनाना होगा। कांजूर गौरी अन्तर्जनम और काली अन्तर्जनम की लड़ाई ऐतिहासिक महत्व रखती है। प्रियादत्ता, जिसके समय स्त्री के लिए शिक्षा निषिद्ध रही थी तब वह अपने समुदाय की पहली स्त्री बनी जिसने S.S.L.C पास की और बाद में पहली अध्यापिका बनी। देवसेना ने 1931 में 'अन्तर्जनम सभा' की स्थापना की। नौकरी करके अपने पाँव तले खडे रहने के लिए स्त्रियों को प्रोत्साहित किया।

केरल के 'नमक सत्याग्रह' का केन्द्र पय्यन्नूर था। यशोदा, ग्रेसी आरोण, कौमुदी, सी.आर. देवकियम्मा आदि सत्याग्रह में बागलेनेवाली महिलाओं में प्रमुख थी। स्थानीय प्रदेशों पर नमक बनाकर स्त्रियों ने नियम का उल्लंखन किया। अन्य स्त्रियों ने उसके साथ दिया। 1942 के 'क्विट इन्डिया संघर्ष' में भी बहुत सी महिलाओं ने भाग लिया। 'देशीय महिला संघ' की अध्यक्षा सी.आर. देवकियम्मा पय्यन्नूर 'नमक सत्याग्रह' के सजीव सान्निध्य थी। ए.वी. कुट्टिमालु अम्मा विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार एवं खादी के प्रचारण में भाग लिया।

1926 में रूपीकृत 'अखिल भारतीय वनिता कॉनफरेन्स' के केरल की आयोजक थी स्वर्णकुमारी, पारुकुट्टियम्मा और शान्ता बालकृष्णन आदि। बियाट्रीस ने स्त्री-पुरुष समानता के लिए संघर्ष किया। कुंजिकुट्टियम्मा 'पालियम संघर्ष' में हिस्सा लेकर स्वसमुदाय और समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज़ उठायी। उन्होंने 'अकम्पड़ी प्रथा' को धिक्कारने का आह्वान दिया। उस समय लक्ष्मिकुट्टि टीचर ने स्त्रियों को जाग्रत करने के लिए हरिजन कॉलनी में जाकर पत्र-पत्रिकाएँ सुनाया करती थी। 'पुन्नप्र वयलार संघर्ष' में भी स्त्रियों की उपस्थिति थी। केरल के संदर्भ में एक विशिष्ट व्यक्तित्व है के.आर. गौरियम्मा। सबसे ज़्यादा केरल की विधानसभा के सदस्य होने की ख्याति उन्हें प्राप्त है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रशस्ति हासिल करनेवाली केरल की दो स्त्रियाँ हैं कैप्टेन लक्ष्मी और लक्ष्मी एन. मेनन कैप्टेन लक्ष्मी संयुक्त राष्ट्र संघ के शिशुक्षेम विभाग की अध्यक्षा और इण्डियन पारलमेण्ड की सदस्या आदि पदों पर कर्यरत थी। उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लिया था। 1998 में पद्मभूषण देकर उनका आदर किया गया। 'चेरी-चेरा प्रस्थान' को रूपीकृत करने में लक्ष्मी एन. मेनन का हाथ है। भारत में स्त्रीत्व का उद्धार उनका लक्ष्य था। 'The position of women' उनकी रचना है।

1760 से 1947 के बीच मलयालम साहित्य की लेखिकाएँ थीं मनोरमा तम्पुराट्टी, किलिमानूर उमादेवी तम्पुराट्टी, रुग्मिणीबाई तम्पुराट्टी, मकयिरमनाल अम्बादेवी तम्पुराट्टी, कुट्टी

कुंजु तंकच्ची, रानी लक्ष्मीबाई, कडत्तनाट्टु लक्ष्मीत्तम्पुराट्टी, कोच्चि वलियइक्कु अम्मत्तम्पुरान, कल्याणिक्कुट्टित्तंकच्ची, तोट्टय्क्काट्टू इक्कावम्मा, चेम्परोल कोट्टारत्तिल अम्बादेवी तम्पुराट्टी, कुंजिलक्ष्मी केट्टिलम्मा आदि । इक्कावम्मा को छोड़कर बाकी सभी अपनी परंपरा से मिलकर ही रचनाएँ करती थीं । कुल की महिमा ही इन्हें साहित्यिक क्षेत्र में लायी थी । इनकी रचनाएँ सामाजिक उन्नति के लिए प्रेरक न बनी तो भी साहित्यिक क्षेत्र में स्त्रियों को थोड़ी जगह मिली यह बहुत बडी बात थी ।

19वीं सदी के अंतिम दशकों में केरल में महिला पत्रिकाओं का प्रचार हुआ । 1887 में तिरुवनन्तपुरम से प्रकाशित 'केरलीय सुगुणबोधिनी' मलयालम की पहली पत्रिका थी । बाद में शारदा, लक्ष्मीबाई, महिला आदि प्रकाशित हुईं । इन पत्रिकाओं में पहलेपहल स्त्रीधर्म, पकवान, संगीत, पतिशुश्रुष, शिशुसंरक्षण आदि विषयों पर लिखा गया । धीरे-धीरे स्त्री शिक्षा, स्त्री स्वतंत्र्य, समाज, विवाह आदि गंभीर बातों पर विचार-विमर्श होने लगा । इन पत्रिकाओं में लिखने वाली पहली लेखिकाएँ थी कावम्मा, कारत्यायनी अम्मा, पत्मावतियम्मा, रुग्मिणियम्मा आदि । 20वीं सदी के मध्य मलयालम साहित्य को अपनी लेखनियों से संपन्न बनानेवाली लेखिकाएँ थीं तरवत्त अम्मालुअम्मा, ललितांबिका अंतरजनम, बी. कल्याणियम्मा, कटत्तनाट्टु माधवियम्मा, मुतुकुलम पार्वतियम्मा, बालामणियम्मा, के. सरस्वतियम्मा, राजलक्ष्मी आदि । इनके लेख सामाजिक, राजनीतिक उद्धार के लिए प्रेरक बन गए।

1.4 अन्य हाशियेकृतों का प्रतिरोध

हाशिए के लोग एक समाजशास्त्रीय अवधारणा है । वे सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक अथवा भौगोलिक कारणों से मुख्यधारा से कट गये हैं और दोहरी जिन्दगी जीने के लिए

अभिशप्त हैं । समाज में अपने को व्यवस्थित न रख पाने से वह बेचैनी, अजनबीपन, व्यग्रता, अशान्ति से गुज़रने के लिए मजबूर है।

भारत के विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक परिवेश तथा सामाजिक व्यवस्था की संरचना में स्त्री, आदिवासी, प्रकृति तथा दलित आदि को द्वितीय श्रेणी में धकेल दिया गया है । इस कारण वे मुख्यधारा से हट कर हाशिये पर चले गये हैं । यह प्रक्रिया इतनी सूक्ष्म रही कि वे

खुद भी यह पहचान नहीं पाये कि वे हाशिए पर चले गये हैं । भारतीय समाज की संकुचित रूढ़िवादी व्यवस्था इनके विकास में बाधा डालती है । जिससे वे प्रताड़ित होकर विकास की प्रक्रिया और लाभ से वंचित रह गये हैं । रूढ़िवादी प्रथा ने तो जन्म से ही व्यक्ति का सामाजिक स्थान निर्धारित कर दिया था । स्त्री अपने लिंग के कारण, दलित अछूत और निकृष्ट होने से, आदिवासी अपनी प्रजातीय विशेषताओं के कारण हाशिए पर हैं।

ये लोग अब समझ चुके हैं कि असंगठित होना ही इनकी सबसे बड़ी असफलता है । इनमें से कुछ लोग तो आज संगठित हो गये हैं और कुछ संगठित होने का प्रयास कर रहे हैं । अब इस भ्रष्ट, रूढ़िवादी व्यवस्था के खिलाफ उनकी आवाज़ बुलंद है । "भारतीय प्रसंग में यह संघर्ष उन ध्रुवों के बीच दिखाई पड़ता है जो एक सामाजिक जीवन की मुख्यधारा में है तो दूसरा हाशिए पर । हमने केन्द्रीय धारा को बनाए रखा, पर इस धारा में सबको शामिल नहीं किया; खासकर उन समाजों और समुदायों को जिन्हें हम हाशिए के समाज अथवा समूह या समुदाय के रूप में जानते रहे हैं, चाहे वह दलित समाज हो या स्त्री अथवा आदिवासी । ये समाज अथवा सामाजिक समूह लगातार मुख्यधारा में रहते हुए भी केन्द्रीय धारा का हिस्सा नहीं बन पाए ।"[37] स्त्री अपनी

---

[37] देवेन्द्र चौबे- नए संघर्ष का चरित्र, हंस, अगस्त 2007

अस्मिता की तलाश में, दलित जाति-व्यवस्था के खिलाफ एवं आदिवासी अपनी ज़मीन से विस्थापित होने के विरुद्ध भ्रष्ट सामाजिक व्यवस्था से संवाद करने लगे हैं ।

यह संघर्ष की भावना अपनी अधम स्थिति की पहचान से उपजी हैं । इस तरह अगर यह समुदाय समाज में अपने ताकतवर हक जताने का प्रयास करता है तो निस्संदेह उन्हें विरोधी ताकतों का सामना करना ही पडेगा । आज वे अपने को व्यवस्थित करने की कोशिश में लगे हुए हैं । हमारी संस्कृति की आधी आबादी से अधिक ये लोग जो हाशिए पर है जब सशक्त होगा, तभी देश गौरवान्वित होगा, बलवान होगा । ये लोग कमजोर रहेंगे तो धीरे-धीरे समाज दम तोड़ने लगेगा।

मानवता के शत्रु आज भी स्त्री, दलित, प्रकृति, आदिवासी और समाज के अन्य पिछडे वर्गों पर हमला बोल रहे हैं । आज इनको संघर्ष और साहित्य के ज़रिए अपने लड़ाई को जारी रखने की ज़रूरत है । वास्तव में हाशिए पर होने का अर्थ उनकी पहचान से जुड़े हुए हैं। इसलिए सबको मिलकर उनकी सामाजिक और मानसिक स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न करना पडेगा।

1.4.1 दलितों की संवेदना एवं प्रतिरोध

'वसुधैव कुटुम्बकम' का नारा लगाकर मानव हित की बात करने वाले हमारे देश में आधी आबादी से अधिक जनता पशुओं की तरह जीने के लिए विवश है । वैदिक काल से लेकर चातुर्वण्य के नाम पर एक ऐसा अमानवीय व्यवहार समाज में व्याप्त था जिससे एक आदमी, दूसरे आदमी के दर्शन एवं स्पर्श से भ्रष्ट समझा जाता था । धर्म ने दलितों को प्रताडित करने के लिए चातुर्वण्य व्यवस्था का उपयोग किया ।

मनु के काल में यह व्यवस्था अत्यधिक कठोर थी । उच्चजातियों की शौच के दुर्गंध से जो भूभाग अनुपयोगी था वहाँ रहने के लिए तथा वहाँ के गन्दनालियों से प्राप्त पानी पीने के लिए

दलित अभिशप्त था। संस्कृत बोलने पर जिह्वा काटने एवं ज्ञान सुनने पर कानों में सीसे का तप्त रस उँडेलने का क्रूर नियम देश के कट्टर पंथियों ने अपनाया था। उनको ज्ञान, शिक्षा, सत्ता और सम्पत्ति से जानबूझकर दूर रखा गया था। "अभिजनों सवर्णों की मनुवादी-संस्कृति दरअसल आज-संस्कृति है, जिसने मानवता का अर्थ और मानव-संवेदना का दायरा केवल कुछ जातियों तक सीमित रखा, अधिकार प्राप्त किए और बाकी जनसमूह को अधिकार-विहीन बनाकर दासता से बदतर पशुतुल्य जीवन जीने को बाध्य नहीं लिया, उनकी संवेदना को जड़ बनाकर, उन्हें उसी में संतुष्ट रहना सिखाया।"[38] इस प्रकार व्यवस्था ने उन्हें सभी क्षेत्रों में दोयम दर्जे का हकदार बनाये रखा।

उस समय शोषित समाज में चैतन्य उत्पन्न करना दूर की बात थी। तब प्रज्ञा के बल पर करुणा एवं साहचर्य के मार्ग से जीने का रास्ता बुद्ध ने दिखाया। स्वतंत्रता, समता भाईचारा एवं न्याय जैसे मानवीय मूल्यों का द्वार इस धर्म ने उनके लिए खोल दिया। मानवीय अधिकारों को प्राप्त करने के लिए शिक्षा ग्रहण कर संगठित होने का महामन्त्र इस धर्म के माध्यम से मिला एवं संघर्ष करने की प्रेरणा भी। यहाँ से वर्तमान साहित्य का जन्म होता है।

अंग्रेज़ी शासन के प्रारंभ में महात्मा ज्योतिबा फुले, बालाशास्त्री जाम्भेकर, कर्मवीर विट्ठल रामजी शिन्दे, गोपाल गणेश आगरकर जैसे विचारक इस अमानवीय व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष करने के लिए तैयार हो गये। बीसवीं सदी में दलितों को अम्बेडकर के विचारों से और उनके द्वारा मुक्ति हेतु छेडी गयी जंग से प्रेरणा मिली। आम्बेडकर ने अपने विचारों से उन्हें प्रबुद्ध बनाने की कोशिश की। "आपको मजूरी नहीं मिलने देते आपके जानवरों को खेत से गुज़रने की पाबन्दी

---

[38] रमणिका गुप्ता- दलित चेतना : साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार, पृ.50

लगाई जाती है, आपको गाँव में प्रवेश नहीं दिया जाता था। इस तरह आपकी नाकेबन्दी कर स्पृश्य हिन्दू लोगों द्वारा आपको परेशान करने का स्मरण आज में से काफी लोगों को होगा। लेकिन ऐसा क्यों होता है? इसकी जड़ में क्या है? मेरे मतानुसार वह जानना अत्यन्त आवश्यक है।"[39] क्योंकि सामाजिक समानता के साथ आर्थिक समानता और शिक्षा उनकी उन्नति के लिए अपेक्षित है। इसकी समझ उनको थी। लेकिन उसके लिए उन्होंने अहिंसा एवं लोकतंत्र का रास्ता चुना।

तब तक दलितों की मुक्ति के लिए अनेक संगठन बन गये थे जैसे दलित पैंथर, मास मूवमेण्ड, दलित मुक्ति सेना आदि। पैंथर आन्दोलन स्वातन्त्र्योत्तर काल के दलित युवकों के मानसिक बदलाव का प्रतीक है। इस काल में दलित युवा वर्ग शिक्षित हुआ और उन्हें संघटना एवं संघर्ष का महत्व रास आने लगा। ज्ञान-विज्ञान और कानून से एक ओर उनमें जबरदस्त जागृति आयी तो दूसरी ओर दारिद्र्य और जातिव्यवस्था ने उन्हें जर्जर बना दिया। इस दबाव ने उन्हें अपने संताप और क्रोध को कलम से अभिव्यक्त करने की प्रेरणा दी। तब उनकी वेदना को वाणी मिली।

दलित साहित्य ने दलितों के साथ होनेवाले अत्याचार के खिलाफ स्वयं संघर्ष करना सिखाया। उसमें मानवता की कुंठित आवाज़ सुनाई देती है। हज़ारों सालों से सुप्त पडे उनकी संवेदना से उनके वैचारिक प्रतिक्रिया एवं संघर्ष उभर नहीं पा रहा था पर आज उनका रुख बदल गया है। आज अपने गरीबी, पीडा, दुःख, दैत्य और पतन के मूल कारण को समझनेवाला दलित अपने सामाजिक ह्रास के जिम्मेदार समाज व्यवस्था के खिलाफ आवाज़ उठा रहे हैं। इसके लिए उपयुक्त औजार साहित्य के ज़रिए अपनी अधम स्थिति की आलोचना भी करने लगा है।

---

[39] सं. संजय नवले, डॉ. गिरिश काशिद- दलित साहित्य : प्रकृति और संदर्भ (मुक्ति कौन पथे : डॉ. बाबासाहब आंबेड़कर - पृ. 34)

परंपरावादी विचारों को नकारते हुए समता, स्वतंत्रता, बन्धुता एवं न्याय को यदि सामाजिक व्यवस्था का आधार बनाना है तो यह सिर्फ साहित्य के जरिए ही संभव हो सकेगा । "इसलिए मैंने यह तय किया कि स्वयं ही दलितों की व्यथा उनकी विविध समस्याएँ, उनके जीवनानुभव आदि को दलित साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करें । खुद का भोगा हुआ यथार्थ, जीवन दाहकता, स्पृश्य-अस्पृश्य का भेद-भाव आदि का वास्तविक रूप पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करना । इसी आन्तरिक छटपटाहट ने मुझे लिखने के लिए विवश किया और मैं लिखता गया ।"[40] आज दलित साहित्य दलितों के जीवन का अविभाज्य अंग बन गया है । इससे दलितों की मानसिकता में परिवर्तन आया और उनको नई आत्मदृष्टि मिली ।दलित साहित्य का लक्ष्य जनतांत्रिक एवं कानूनी मार्ग से संघर्ष करते हुए सामाजिक न्यायएवं विकास केसमान अवसर पाना है । "उस पीड़ा का वर्णन एक दलित ही कर सकता है जो सदियों सेसर पर मैला ढोता रहा है, गाँव के हाशिये खाने को इस हद तक मजबूर जाता रहा है कि उसे खाना उसकी आदत बन जाय। वह एक ही पेशे में रहने को अभिशप्त बना दिया गया, अछूत बना दिया गया । वह खुद ही बच-बच कर चलता रहा सवर्णों से दूर कि कही कोई उससे छुआ न जाय ।"[41] इस तरह अनुभूति द्वारा ही तार्किक क्षमता उत्पन्न होती है और उससे विचार भी । बाद में शब्दों के माध्यम से ही आंतरिक अनुभूतियों और विचारों का प्रस्फुटन होता है ।

जब तक अस्पृश्यता एवं दासता इस देश में बनी रहेंगी तब तक वंश, वर्ण और जाति की कठोरता का विरोध करनेवाला, उनको मनुष्य के रूप में जीने का अवसर प्रदान करने वाला एवं मनुष्य की मुक्ति का आह्वान करनेवाला, दलित साहित्य निश्चय ही बना रहेगा । यह वातावरण

---

[40] सं. शरणकुमार लिंबाले, शंकरराव खरात- दलित साहित्य : वेदना और विद्रोह, पृ.208

[41] रमणिका गुप्ता- दलित चेतना : साहित्य एवं सामाजिक सरोकार, पृ.26

आशावादी रहेगा। उसकी वेदना वैयक्तिक न होकर हजारों सालों से बहिष्कृत समाज की वेदना है। इसी कारण यह वेदना सामाजिक रूप धारण कर लेती हैं। उनके नकार और विद्रोह अमानवीय व्यवस्था के विरुद्ध है। दलित लेखक का दायित्व सामाजिक सरोकार हैं। इस समाज में दलितों का जो अधिकार है, उन्हें अपने सामथ्र्य के बल पर प्राप्त करने की हिम्मत जुटाने के लिए जिस अस्मिता का निर्माण होना चाहिए था वही साहस दलित साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त हो रहा है। यह भूतकालीन जीवन का तिरस्कार करते हुए उज्ज्वल भविष्य के इन्तज़ार में है। अन्याय पर प्रहार करके, दुनिया को बदलने का भाव साहित्य में अन्तर्निहित है। यह अपने विचार मानवता की शुद्धता के लिए प्रयोग करता है। इन दलित साहित्यकारों की प्रतिरोधी मानसिकता से मतलब है अपने ऐतिहासिक शोषण की जानकारी रखते हुए सिर्फ दुःख का चित्रण न खींच कर नये उत्साह एवं उम्मीद के साथ नव-मानव समाज का निर्माण करना।

1.4.1.1 दोहरी मार को झेलती दलित स्त्री का प्रतिरोध

भारतीय संदर्भ में दलित स्त्री गुलामों की गुलाम है। सवर्ण समाज में हमेशा से नारी और शूद्र की स्थिति एक जैसी रही है और उसका उत्पीड़न वह दलित और गरीब होने के नाते झेलती है। सवर्ण पुरुष द्वारा उन पर बलात्कार करने की प्रवृत्ति सदियों से चली आ रही है। दलितों को दबाये रखने के हथकंडे के रूप में इसका प्रयोग वे करते हैं। "सवर्ण पुरुष के सामने उनकी अधीनस्थता का विस्तार कर्म केन्द्रीय स्तर से लेकर अन्य सामाजिक, आर्थिक स्तरों तक देखा जा रहा है। दलित शोषण और अपमान की कष्ट-कथा में दलित नारी के बलात्कार की कहानी हर पृष्ठ पर दर्ज है।"[42] उनकी स्त्रियों को अपमानित करके उन्हें सार्वजनिक स्तर पर पददलित करना सवर्णों का उद्देश्य है। सवर्ण स्त्री भी दलित स्त्री से जातीय मानसिकता बनाये रखती है। सवर्णों

[42] रमणिका गुप्ता- दलित चेतना : साहित्य एवं सामाजिक सरोकार, पृ.13

का शोषण एक ओर है तो दूसरी एक स्त्री होने के नाते उन्हें अपनी ही समाज के दलित पुरुष की हिंसा और बलात्कार की शिकार भी होना

पड़ता है । सवर्ण स्त्री से दलित स्त्री का शोषण इसलिए अलग है कि उनकी समस्याएँ जातीय

हैं ।कल की दलित स्त्री मौन थी, सदियों से वेदना, उत्पीड़न, अन्याय, अत्याचार सह रही थी । आज वह फूले आम्बेडकरवादी विचारों से प्रभावित हुई है । स्त्रियों के संबन्ध में आम्बेडकर का विचार था कि सामाजिक और सांस्कृतिक ऊँचाई उस समाज में स्त्रियों की स्थिति पर निर्भर है । उनके साहित्य आन्दोलन में अनेक स्त्रियों ने अपना कर्तव्य संभाला । अपने शोषण के पहलुओं को समझनेवाली स्त्रियों की भागीदारी स्वातंत्र्योत्तर काल की दलित संगठनाओं में बढ़ी । हज़ारों वर्ष की परंपरा से सहती आयी अपनी व्यथा को दलित साहित्य, दलित पैंथर आन्दोलन को माध्यम बनाकर समाज के सामने रखा ।

आज दलित स्त्री पुरानी रूढ़िगत परंपराओं, वर्ण, वर्ग एवं अत्याचार को नकारती है, प्रतिरोध जाहिर करती है और एक नवीन मानसिकता को आजमाती हुई नवतेज, नवजीवन को प्राप्त करना चाहती है । महाराष्ट्र की शान्ताबाई, कृष्णजी काम्बले, मुक्ता सर्वगौड, नाजुबाई गावीत, शान्ताबाई दाणी, बेबी काम्बले, कुमुद पावडे आदि के द्वारा लिखी गयी अत्मवृत्त भारत में दलित, शोषित, उत्पीडित स्त्रियाँ द्वारा लिखे गए आत्मवृत्त का पहला चरण है । सुगन्धा झेण्डे, ज्योति लांजेवर उर्मिला पवार, मीनाक्षी मून, सुरेखा भगत, प्रतिभा गोड़ाम, प्रज्ञा लोखण्डे एवं रूपा कुलकर्णी आदि का लेखन कार्य दलित स्त्री के आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में उनकी आत्मचेतना को बढ़ाने में महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ ।

आज की लेखिकाएँ क्रान्ति की मुद्रा धारण कर संघर्ष की तैयारी में जुड़ी हुई हैं ।

उनकी असहनीय पीडा युक्त भोगे हुए यथार्थ के एक एक पल को वे स्पष्ट करती आ रही है । "चाहे सुशीला टाकभौरे की एकल पर तीक्षण आवाज़ हो, चाहे हेमलता महेश्वर के सूक्ष्म और कंटीले व्यंग्य, ग्रेस कपूर के बौने पर नुकीले 'तीर' या कौशल्या बैसन्त्री के 70 वर्षों के स्वानुभव की गंभीर चुनौती, अब वे दलित नारी की ओर से साहित्य के दरवाज़े पर दस्तक देने लगी हैं । रजनी तिलक की पत्रकारिता और रजत रानी "मीनू" के शोध से दलित नारी के बंद दरवाज़ों को खोलने का प्रयास शुरू हो चुका है हिन्दी पट्टी में, हिन्दी साहित्य के फलक पर भी । कुसुम मेघवाल तो लेखन के साथ-साथ ज़मीनी आन्दोलन से जुड़कर राजस्थान जैसे पिछडे समाज को झकझोर रही हैं ।"[43] इसप्रकार दलित साहित्य ने पूरे विश्व को यह दिखला दिया है कि अन्याय से पीडित दलित स्त्री को अपनी समानता, स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने में स्वयं को तैयार करना है । सवर्ण स्त्री को भी जातीयता को ठुकराकर इनकी मुक्ति की मुहिम को सफल बनाने में उनकी सहायता करनी है । उनमें जो आत्मविश्वास जागा है उसे बनाये रखने की प्रेरणा देनी है ।

1.4.2 आदिवासी की संवेदना एवं प्रतिरोध

विश्व समुदाय में आदिवासी एक ऐसा मानव समाज है, जो विकास की प्रक्रिया से दूर आज भी अपनी पुरानी 'जनजातीय' विशेषताओं के कारण सिमटा हुआ है । शेष समाज से अलग रहने से आदिवासी समाज, मुख्यधारा के लोगों के व्यवहार में आ रहे दुर्गुणों से मुक्त रहा । इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि वह विकास की प्रक्रिया से दूर हो गया ।

आदिवासी संस्कृति की सबसे बडी विशेषता उसकी 'सामूहिकता' है । समूह में रहकर समूह के लिए सोचना, जीना व मरना आदिवासियों की विशेषता हैं । इससे उन्हें घने जंगलों में मिल-

---

[43] रमणिका गुप्ता- दलित चेतना : साहित्य एवं सामाजिक सरोकार, पृ.36

जुलकर जीने की प्रेरणा मिलती है । सामाजिक संबन्धों में पनपे तनाव एवं व्यभिचार आदि समस्याओं को पंचो द्वारा सुलझाने की पारंपरिक प्रवृत्ति आज भी मौजूद है । ताकि वह विचार-विमर्श करके गलत फहमियों को दूर कर सके। वे अपने तरीके से एक उन्मुक्त जिन्दगी जी सकते हैं इसमें बडों का हस्तक्षेप कभी नहीं होता । 'घोटुल' नामक एक ऐसी प्रथा भी है जिससे विवाह से पहले सारे स्त्री-पुरुष मिलजुलकर बातें करने का मौका प्रदान करता है । मुख्यधारा समाज इस प्रथा को खुले-सेक्स का सार्वजनिक केन्द्र मानता हैं । उनका सामाजिक जीवन तथा सांस्कृतिक जीवन, सभ्य समाज से कई मायनों में श्रेष्ठ हैं । अपना जीवन वे स्वच्छंद ढंग से जीते हैं । लेकिन उनका जीवन अन्धविश्वास के सहारे संचालित होता है । यह एक रूढ़ि नहीं बल्कि जीवन शैली बन गयी है ।

भारत का आदिवासी मूलतः किसान है । जल-जंगल ज़मीन से उनका नाड़-नस्ल का रिश्ता है । प्रकृति के साथ सहयोगी भूमिका निभाते हुए जंगल में उत्पादन कर वह गुज़र बसर करता है, साथ ही जंगल की रक्षा भी करता है । वह उपभोक्ता होने के साथ-साथ पोषक की भूमिका भी अदा करता है । उनकी यही अरण्यमुखी संस्कृति उन्हें सभ्यता के विकास से जुड़ने नहीं देती । यह समाज अज्ञान, अन्धविश्वास, निरक्षरता, दरिद्रता, बेकारी, अस्वच्छता, ऋणग्रस्तता और शोषण के चक्की में सालों से पिसता रहा है । इससे उनमें जो असन्तोष पनपा उनका नतीजा हुआ विद्रोह । ब्रिटिशों के कुशासन के खिलाफ हुए चुआर विद्रोह, बस्तर विद्रोह, ज़मीन्दारों, महाजनियों (सूदखोरों) और व्यापारियों के खिलाफ हुआ संथाल विद्रोह, बिरसामुंडा विद्रोह, जंगलों में पारंपरिक अधिकारों को कायम रखने के लिए चलाया गया मनयान विद्रोह आदि उनकी जागृति का परिणाम है ।

सन् 1922 में गुजरात के ठक्कर बप्पाने 'भिल्ल सेवा संघ' की स्थापना कर आदिवासियों में सुधार लाने का आन्दोलन चलाया । 'झारखंड आन्दोलन' जैसे जन आन्दोलनों ने उनकी स्थिति

और हैसियत को मुख्यधारा में व्यवस्थित करने का प्रयास किया। सन् 1988 में काकासाहब नवें और शंकरराव ठकार ने खानदोश में ‘भिल्ल सेवा मण्डल’ की स्थापना कर उनमें जागृति लाने का प्रयास किया । गोदू ताई पारूलेकर और श्यामराव पारूलेकर ने उनके बीच रहकर उन्नति के लिए कार्य किया । गोदूताई पारूलेकर में अपनी ‘जेहवा माणूस जागा होतो’ किताब में काम पर जानेवाले आदिवासियों पर होनेवाले कठोर अनुभवों का प्रस्तुतीकरण किया । जन आन्दोलनों एवं संगठनों के जरिए आदिवासियों में चेतना ही नहीं अधिकार चेतना भी आई है । "कहा जाता है कि आदिवासी के बोल गान है तो गति नृत्य, लेकिन यह पूर्ण सत्य नहीं, उसके हाथ चलते हैं, जिनमें धनुष और तीर होता है ।"[44] इसके लिए इतिहास साक्षी है कि वह खुद अपने हक को समझने लगा है ।

भारत सरकार द्वारा विकास के नाम पर ‘आदिवासी उपायोजना’ जैसी योजनाएं चल रही हैं । जिसके तहत जंगलों को काटकर सड़कें और बाँधों का निर्माण किया जा रहा है। यह रणनीति उन्हें बेरोज़गार और भूमिहीन बनाती है । "जंगल जमीन को अपना सबकुछ मानने वाले समुदाय को शहर के पढ़े-लिखे वर्ग द्वारा कैसे ठगा जा रहा है । शोषण का सिलसिला निरन्तर जारी है । घोर गरीबी के कारण आदिवासियों का पलायन जारी है । इसे रोके जाने की आवश्यकता है । उनके बीच जागरूकता अभियान चलाकर वैकल्पिक रोज़गार की व्यवस्था करके ही पलायन को कुछ कम किया जा सकता है ।"[45] इनको साथ लेकर ही विकास की योजनाएँ बनानी है नहीं तो उनका हित कम, राष्ट्र अथवा व्यवस्था का हित अधिक होगा । इनके यह फटेहाल मुख्यधारा के निर्माताओं को परेशान नहीं करता । जब उनमें चेतना जागी तब केन्द्र सरकार द्वारा अधिकतम ज़मीन धारणा कानून, साहूकारी नियन्त्रण कानून जैसी योजनाएँ बनने लगी हैं ।

---

[44] रमणिका गुप्ता- आदिवासी अस्मिता संकट,पृ.50

[45] गीताश्री- सपनों की मंडी, पृ.14

साहित्य के ज़रिए आदिवासी अपनी समस्याओं को मुख्यधारा के सामने लाने की कोशिश में है। वाहरु सोनवणे का कहना है "आज तक हम कहते आए हैं कि हमें इतिहास में राक्षस कहकर रौंदा, एकलव्य का अँगूठा तोड़ा, स्वतंत्रता की लड़ाई में आदिवासी वीरों को स्थापित इतिहासकारों ने नजरन्दाज़ किया, इसलिए हमारी आगे यह जिम्मेदारी बनती है कि हम ऐसा साहित्य रचें कि हमारे इतिहास को न्याय मिले। आदिवासी स्वतंत्रता वीर खाज्या नाईक, तंट्या भील, भगोजी नाईक, बिरसा मुंडा, राणी दुर्गावती, रामदास महाराज, अंबर सिंग महाराज आदि पर नाटक, कथा, पोवाड़े, रोडालियाँ गीत लिखे जाने चाहिए। इस प्रकार का साहित्य निर्माण कर हमें आदिवासियों के इतिहास को प्रकाश में लाना चाहिए।"[46] इससे एक लंबे अरसे से हो रहे शोषण में कमी आने की संभावना है। विकास के नाम

पर हो रही प्रताड़ना पर साहित्यकार तीखा व्यंग्य कर रहे हैं। साथ ही शोषकों से डटकर विरोध कर रहे हैं। ताकि वे मुख्यधारा में शामिल हो सकें।

आदिवासियों को लेकर आज कई चर्चायें हो रही हैं। जब 'अखिल भारतीय आदिवासी साहित्य मंच' बना तब से आदिवासी साहित्य की अलग से चर्चा होने लगी। सन् 2002 में रमणिका फाउंडेशन ने साहित्य अकादमी के सहयोग से भारत का पहला आदिवासी सम्मेलन दिल्ली में चलाया जिसमें नौ राज्यों से आए आदिवासी लेखकों ने कई मुद्दे उठाये। आज आदिवासी लेखक अपनी जड़ों और इतिहास की खोज करने लगे हैं। वह शोषण, शोषक और शोषित को पहचानने लगा है। "भारतीय पैमाने पर आदिवासी लेखक अपनी राजनीति, अपने समाज, संस्कृति, भाषा-बोली, लिपी, कला, इतिहास तथा पहचान और अधिकारों के सवाल पर लिखे और बताएँ कि वे कैसा बदलाव या व्यवस्था चाहते हैं। इसके लिए वे मिल-बैठकर कार्यनीति तय करे, नीतियां

---

[46] सं.रमणिका गुप्ता- आदिवासी कौन, पृ.24

बनाएं और पूरे आदिवासी समाज को एकजुट करके ही उनकी सशक्तीकरण की प्रक्रिया में साझीदारी बने।"[47] व्यवस्था द्वारा किए जा रहे जुल्म के प्रति उन्हें सचेत रहना है।

बाहरु सोनवणे, हरिराम मीणा, रूपचंद हांसदा, राजेन्द्र ठकारे, एल.एन लियाना खिलाड़ते, विजोया सावियान, थेसे क्रॉजी और पृथ्वी माझीजी जैसे अनेक आदिवासी लेखक आदिवासी समस्याओं को लेकर आए हैं। ये लेखन अपने समाज के दुःख अंतर्विरोध और दूसरे समुदाय द्वारा किए जा रहे भेदभाव को अपनी रचनाओं में चित्रित कर उनके विरुद्ध गुस्साते हुए आवाज़ बुलंद कर रहे हैं। आदिवासी समाज में पैदा हो रही यह अभिव्यक्ति की क्षमता उनकी जागृति का प्रतीक है।

विश्व का सबसे बडा जनतांत्रिक समूह है आदिवासी आज उनका अस्तित्व खतरे में हैं। यदि आदिवासियों को बाहर की खूँखार कट्टरपंथी दुनिया में शिक्षा, अधिकार और सुरक्षा के बिना छोड़ दिया जाय तो निश्चय ही वह आदिवासी नहीं रह जाएँगे। जंगल एवं जमीन न रहे तो उसका अस्तित्व ही मिट जाएगा। इन सबके बावजूद भी उन्होंने अपनी संस्कृति भाषा, जीने की सामूहिक शैली, परंपराओं और रीति-रिवाज़ों की विरासत को जिंदा रखा। इनके विकास के लिए यह बहुत ज़रूरी है कि सरकार और तथाकथित मुख्यधारा के लोग इनकी पीडा असंतोष तथा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक उपेक्षाओं को समझें साथ ही मुख्यधारा में शामिल करने के लिए राजनैतिक एवं प्रशासनिक अधिकार दिलवायें।

1.4.2.1आदिवासी समाज की स्त्रियाँ

---

[47] रमणिका गुप्ता- आदिवासी अस्मिता संकट, पृ.130

आदिवासी स्त्रियाँ सभ्य और विकसित समाज द्वारा स्त्री होने के नाम पर शोषित है। लेकिन अन्य समाजों की स्त्रियों से अधिक कुछ सुविधाएँ उन्हें प्राप्त है। 'घोटुल' नामक एक प्रथा है, जिसमें युवा लड़के-लड़कियों को एक साथ रखकर सब प्रकार का ज्ञान दिया जाता है। उसका नतीजा यह हुआ कि वह पुरुषों से खबराती नहीं उससे बतियाती है, परखती है, अगर किसी के साथ जीवन निभाने लायक हो तो ब्याह कर लेती है। पति से न पटने पर उसे छोड़ने का अधिकार भी प्राप्त है। ऐसी स्त्री को हेय दृष्टि से नहीं देखते एवं बोझ समझकर ठुकराते नहीं, बाकी जिन्दगी अपने घर में बिताने के लिए वह पूरी तरह से स्वतंत्र है ।

ये सुविधाएँ प्राप्त होने पर भी आदिवासी समाज में भी स्त्रियाँ शोषित एवं प्रताड़ित है। बहुत बड़ी विडम्बना यह है कि स्त्रियों को पिता की संपत्ति के अधिकार से दूर रखा जाता है। अपने ही समाज द्वारा कभी 'डायन' कहकर दबाया जाता है। बिन बुद्धि की स्त्री कहकर गाँव पंचायत में उसकी भागीदारी को नकारा जाता है। समाज में उनके शोषित भागीदारी को नकारा जाता है। समाज में उनके शोषित होने का सबसे बड़ा कारण है एक से अधिक पत्नियां रखने की रिवाज़ और शराब पीकर पुरुष द्वारा मार-पीट। यह एक ऐसी स्थिति है, जिससे आदिवासी स्त्रियाँ आज भी जूझ रही हैं। "ऐसे तो आदिवासी स्त्रियों की स्वतंत्रता और स्वच्छंदता के मिथक और भ्रम का प्रचार खूब किया जाता रहा है, लेकिन उनके समाज के भीतर भी कुछ ऐसे कड़े नियम और बंटवारे है जो स्त्री को पुरुष से कमतर करने के लिए गढे गए हैं।"[48] मतलब कि आदिवासी समाज की स्त्री को भी ऐसी अनेक प्रताड़नाओं का सामना करना पड़ता है जिससे एक स्वच्छंद जिन्दगी बिताने में वह असमर्थ होती है।

---

[48] रमणिका गुप्ता- स्त्री-मुक्ति संघर्ष और इतिहास, पृ.155

भोली-भाली आदिवासी युवतियाँ मुख्यधारा पुरुष के मोहजाल में पड़कर अपना सब कुछ गंवा बैठती है। इससे अपने समय द्वारा व्यभिचारिणी करार कर जनजातीय जिन्दगी से बाहर निकाल दिया जाता है । फलस्वरूप दोनों ओर से उपेक्षित होकर वे हाशियेकृत जिन्दगी जीने के लिए विवश होती हैं । संजीव ने 'दुनिया की सबसे हसीन औरत' नामक पुस्तक में एक आदिवासी स्त्री की रुदन इस प्रकार है "रो रहा है हम अपन नसीब पे । आज हमारा साथ कोई मरद होता, पैसा होता, रोब होता तो पांच-दस थमा के हमहु इज्जतदार बनत्त

रहता । ऐसे का इज्जत है हमारा? हम बाजारू हैं ।"[49] शहरी लोग इन स्त्रियों के साथ वेश्या जैसे व्यवहार करते हैं । क्योंकि उनकी दृष्टि में वह आर्थिक और सामाजिक रूप से कमज़ोर हैं । ओरांव जाति की इस महिला का कथन मुख्यधारा समाज की इस मानसिकता की ओर संकेत करता है । वह उनको वस्तु मानकर एक 'पब्लिक प्रोपरटी' समझता है जिसके साथ कोई भी मनमानी कर सकता है ।

उनके साथ हो रहे जुर्म पर औरत ने केवल प्रतिरोध ही नहीं, बल्कि अपनी बात पूरे तर्क के साथ रखी । आदिवासी वीरांगनाओं ने समय आने पर अपने समाज और देश को बचाने के लिए तीर एवं तलवार को संभाला था। झारखंड में मिकी, झानो, माकी, थिगी, नागी, स्नगीदई, कत्तीदई, बिरसामुंडा की पत्नियां संथाल हूल, बिरसा उलगुलान, पना आदि आन्दोलन और रोहतासगढ़ के संघर्ष में शत्रुओं को मारकर ही मरी। सालों पहले अंग्रेज़ों के शोषण के खिलाफ भी उन्होंने अपना प्रतिरोध जातायी थीं । एक मिजो रानी रूपालियानी ने तो अंग्रेज़ों के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष का नेतृत्व संभाला था । काफी हद तक स्वतन्त्र होने के बावजूद भी स्त्रीत्व के गुण और मर्यादाओं के नाम पर उनके साथ शोषण होता ही रहा था । मिज़ो स्त्रियों ने इस व्यवस्था के

---

[49] संजीव- दुनिया की सबसे हसीन औरत, पृ.147

खिलाफ अपने लोकगीतों के जरिए कडा प्रतिरोध भी जताया था। परिवार के अन्याय के खिलाफ ललथेरी जैसी मिज़ों स्त्रियाँ पुरातनकाल से लेकर प्रबल विरोध करती आ रही हैं।

आदिवासी औरतें आज अपनी समस्याओं को पंचायत के सामने रखकर अन्याय का खुलासा करने तथा विरोध जताने भी लगी हैं। स्वतंत्रता और बंदिशों में झूलती स्त्रियाँ आज सामाजिक अन्याय के विरुद्ध राजनैतिक स्तर पर भी संघर्षरत हैं। अब वे साहित्य रचना में भी आगे आ रही हैं। आज तक उनकी व्यथा कथा जो अनकही थी उसको अब वे स्वयं सुनाने लगी हैं। आदिवासी कवयित्री निर्मला पुतुल अपने समाज की स्त्रियों के सुख-दुःख और अधिकार के प्रति अत्यधिक सचेत है। वह अपनी कविताओं के ज़रिए आदिवासियों के सामाजिक जीवन की बारीकियों को सहज ढंग से प्रस्तुत कर रही हैं। इससे यही ज्ञात होता है कि अपने पर होने वाले अन्याय के खिलाफ वे हमेशा से लड़ी हैं और आज भी लड़ रही हैं।

1.4.3 पर्यावरण और स्त्री प्रतिरोध

मनुष्य एक विशाल इकोतंत्र का अंग है। जिसमें जीव, वनस्पति, जल, वायु तथा भू-गर्भीय साधन सब सह-संबन्ध स्थापित करते हुए कार्यरत है। मनुष्य का जीवन प्रकृति के एक-एक कण से जुड़ा हुआ है। 'आत्मवद् सर्व भूतेषु' अर्थात् सभी जीवन जगत् में एक ही चेतना विद्यमान है। आदिम काल से लेकर मानव प्राकृतिक वातावरण के अनुरूप अपने जीवन को घटता आया है तथा उसके अनुरूप ही उन्होंने संस्कृति का निर्माण भी किया है। तब उसने प्रकृति पर प्रहार किया था लेकिन नियंत्रण और सुरक्षा बोध को सामने रखकर। इस बोध के रहते प्रकृति ने उसके विकास के लिए स्वयं अत्मदान कर उसकी सहायता की। इसप्रकार एकता समता, साझेदारी, पारस्परिक निर्भरता की भावना प्रकृति और मानव के बीच विद्यमान थी।

आज मानव और प्रकृति के बीच का आत्मीय संबंध खत्म होता जा रहा है। जिस पृथ्वी ने मनुष्य के लिए जीने की एक पृष्ठभूमि तैयार की, विकास के नाम पर सबसे पहले प्रहार इसी पर

मनुष्य ने किया। हम आज एक ऐसे गतिशील युग में जी रहे हैं जो खतरों और अवसरों से भरा पड़ा है। मानव विकास का सीधा संबन्ध अब नगरीकरण, औद्योगीकरण, विद्युत परियोजनाओं, खनन, परिवहन, ऊर्जा संसाधन आदि क्रियाकलापों से जुड़ा हुआ है। वन-विनाश, भू-गर्भ के दोहन, जंगलों का काटना, अपशिष्टों, रासायनिक द्रव्यों, दूषित गैसों इन मानवीय कुप्रवृत्तियों से भूमण्डल का चेहरा बदलता जा रहा है। प्रकृति जैसे एक, परिपूर्ण, विविधता से भरी सत्ता पर ही मानव आज हमला कर रहा है। विज्ञान और टेक्नोलॉजी ने मानव जीवन की ऊष्मा को नष्ट कर दिया है। पर्यावरण का नाश उपभोग संस्कृति की खतरनाक परिणति है।

आज बढ़ती हुई आबादी भी पर्यावरण को प्रदूषित कर रही है। हम वन, जल, कोयला, पेट्रोल आदि का अंधाधुंध उपयोग करेंगे तो प्रकृति का अभाव बढेगा। इस प्रकार मनुष्य की बदलती सोच, जीवन शैली और व्यवहार ही प्रदूषण के वास्तविक कारण है। इससे स्थलमंडल, वायुमंडल और जलमंडल के प्राकृति ढाँचा चरमराने लगते हैं। प्रदूषण की बढ़ती मात्रा का अहसास हमें तब होती है जब कोई बडी सी दुर्घटना घटती है। जैसे सूखा, अकाल, भूकम्प, अति-वृष्टि, तूफान, भूताप, भूमि-स्खलन आदि। झारखंड और कश्मीर में हुए बाढ़ नेपाल और पश्चिम बंगाल में हुए भूकंप आदि त्रासदी जो आज हमारे सामने ही घटी है। इन घटनाओं से हमें समझना चाहिए कि आज इंकोसिस्टम में ऐसा असंतुलन आ गया है कि पृथ्वि की जीवनदायायी शक्ति समाप्त होती जा रही है। पर्यावरण को विकृत बनाने का जो क्रूर अभियान मानव ने छोडा, उसके प्रति प्रकृति का प्रतिरोध ही इस त्रासदी का कारण है। इससे कई जीव, संसार से नष्ट होते जा रहे हैं।

मनुष्य के विवेक और संवेदना नष्ट होने के साथ-साथ पर्यावरण निष्प्राण होते जा रहे

है। नर्मदा योजना में लाखों की विस्थापितों में सारे के सारे दरिद्र आदिवासी लोग थे। सिंगूर एवं नन्दिग्राम में भी यही हुआ। केरल की प्लाच्चिमड़ा में मल्टीनेशनल कोकाकोला कम्पनी के लिए भूगर्भ पानी का अनुचित शोषण गरीब आदिवासी लोगों को जीने से एवं पानी से वंचित किया जा रहा है। हरितक्रान्ति की व्यापकता के साथ कीटनाशकों की बहुतायत प्रयोग हो रहा है। कासरगोड़ जिले में एंडोसल्फान के अधिक प्रयोग से जीवजन्तुओं के साथ मानव को भी भिन्न विभीषिकाओं का सामना करना पड़ रहा है। अगर ऐसे ही प्रदूषण होते रहेंगे तो इक्कीसवीं सदी के मध्य तक आते हिमालय के पर्वत शिखरों से बर्फ क्रमित रूप से गायब हो जाएगा। धीरे-धीरे ओज़ोन भी नष्ट होता जायेगा। बाँधों के निर्माण से पीछे के इलाकों में नदी प्रवाह अवरुद्ध होता जा रहा है। व्यक्ति, समाज और शासक कोई भी हो सिर्फ आर्थिक विकास पर ही बल दे रहे हैं।

अब पर्यावरण पर संजीदगी से विचार करने का समय आ गया है। "हमारा दाय हम से अलग हो रहा है। हम न तो उसे समझने का प्रयत्न कर रहे हैं और न उसका सम्मान ही हमारे मन में बच रहा है। विज्ञान के नवोन्मेष से प्रभावित होने का यह अर्थ नहीं होना चाहिए था कि हम अपना वंश वृक्ष ही काट डालें।"[50] उसकी रक्षा तभी संभव है जब हमारी प्रारंभिक शिक्षा का मूल उद्देश्य प्रकृति प्रेम और साहचर्य हों। आज मनुष्य अपने पर्यावरण को बचाने के लिए बाध्य हुआ है। इस संदर्भ में पर्यावरण शिक्षा जन साधारण की समस्याओं और उसके संरक्षण और सुधार के लिए अपेक्षित मानवीय व्यवहार करा सकती है। बच्चों और स्त्रियों पर पर्यावरण शिक्षा का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। 1970 के सैलेंटवाली संरक्षण कानून और उत्तर भारत में चिपको आन्दोलन भारत में पारिस्थितिक चर्चा का कारण बन गया है। भोपाल गैस त्रासदी को जो लोग देख और भोग चुके हैं वह यह ज़रूर समझ गये होंगे कि पर्यावरण और प्रदूषण की सही समझ हम सब के लिए कितना आवश्यक है। 'पर्यावरण रक्षा परमो धर्मः' अर्थात् पर्यावरण की रक्षा करना हमारा परम धर्म होना चाहिए। स्कूलों और कॉलेजों में भी उसके लिए कदम उठाया जा रहा है। प्रौढ़ लोगों

---

[50] सच्चिदानंद वात्स्यायन- साहित्य का परिवेश, पृ.17

को जागरूक करने के लिए प्रचार माध्यमों, गोष्ठियों, मेलों और वनोत्सवों के जरिए लोग प्रयत्नरत है। पर्यावरण रक्षा आज हमारे लिए आज सबसे बडे दायित्व बन गया है हर एक को चाहे गन्दगी न फैलाकर हो या वृक्ष लगाकार इस कार्य में हिस्सा देना है।

आज साहित्य के माध्यम से भी मनुष्य को प्रकृति और पर्यावरण को सही परिप्रेक्ष्य में समझने की आवश्यकता है। मनुष्य मन की पुनर्सृष्टि करने के लिए साहित्य से भी बढिया माध्यम और कोई भी नहीं है। 1962 में रेचल कारसन द्वारा रचित 'मौन वसन्त' के पश्चात् पाश्चात्य जगत में पारिस्थितिक संकट पर चर्चा शुरू हुई। 1970 के बाद इको फिलॉसफी की शुरुआत हुई। आज पारिस्थितिक दर्शन गहन पारिस्थितिवाद, सामाजिक पारिस्थितिवाद, पारिस्थितिक माक्र्सवाद, पारिस्थितिक स्त्रीवाद इन चार शाखाओं के ज़रिए विकास प्राप्त कर रहा है। सन् 1981 में अलदो लियोपोलद के 'Rights of Nature' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। इसमें उन्होंने 'भौम सदाचार' की संकल्पना को हमारे सामने रखा जो पारिस्थितिक चिंतन की आधार शिला है। 1990 के साथ ही पारिस्थितिक दर्शन एक नई समीक्षा शाखा के रूप में 'इको-क्रिटिसिस्म' संसार भर में उभर कर आने लगा।

उपर्युक्त पारिस्थितिक चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में आज हिन्दी साहित्य का विचार-विमर्श अनिवार्य है। मानव के खतरे से भरे हुए भविष्य को बचाने के लिए साहित्य में पारिस्थितिक चिंतन, एक उपयोगी विचार प्रदान करने के लिए समर्थ है। भूमि और उसके जीवजालों पर जब-जब अत्याचार होता रहा तब-तब आदिकाल से लेकर प्रतिरोध भी होता रहा है। एक रचनात्मक प्रतिरोध – 'मानिषाद' में अनुगूँजित है। जो रचनाकार भारतीय परम्परा को आत्मसात करता है वह साहित्य के मूल में प्रकृति और मनुष्य के बीच के भावनात्मक संबन्ध बनाये रखता है। आधुनिकता ने इस आत्मीय संबन्ध को नष्ट कर दिया।

साहित्यकार अपनी पैनी दृष्टि से शुरू में समस्याओं को देख और समझ लेता है । "जज्ब करने की बात यह है कि, पर्यावरण प्रगति से सीमित नहीं, प्रगति, पर्यावरण से सीमित है । जब तक हम मूल प्रश्न को 'प्रगति बनाम पर्यावरण' के नजरिए से देखते रहेंगे, प्रगति के नाम पर पर्यावरण नष्ट होता रहेगा । और नष्ट होने के माध्यम से अपना प्रतिशोध भी लेता रहेगा। तब तक, जब तक देश की मौजूदा तंगहाली को और खस्तहाल बनाकर, प्रगति के स्वप्न को पूरी तरह लील न जाए ।"[51] इसप्रकार अपनी सृजनात्मकता के जरिए साहित्यकार प्रतिरोध ज़ाहिर करने लगता है । प्रकृति और मनुष्य को लेकर की गयी जागरूकता ही समकालीन हिन्दी साहित्य में पारिस्थितिक चिंतन का मतलब है । सृजनात्मक साहित्य ने विध्वंस को रोकने की जिम्मा अपने ऊपर ले ली है । इस अमानवीय वृत्ति के खिलाफ प्रतिरोध दर्ज करना उनका अपना दायित्व है । हिन्दी साहित्य, भूमि को इस विध्वंस से बचाने के लिए सतर्क है । वे शुद्ध पर्यावरण की आवश्यकता पर ज़ोर देकर मानवजीवन के भविष्य की विपत्तियों के प्रति मानव को सतर्क रहना सिखाता है । संतुलित जीवन को बिगाड़नेवाले शोषण और उत्पीडन के विरोध खुले आम समकालीन साहित्य प्रकट करता आ रहा है ।

1.4.4 वेश्या, वृद्ध आदि की संवेदना एवं उभार

1.4.4.1 वेश्या जीवन

वेश्यावृत्ति पुरुष वर्चस्व का दुष्परिणाम है । यह वृत्ति समाज में स्त्री की अधोगति का सूचक है साथ ही उसके आत्म सम्मान के हनन का कारण भी। निर्धनता, अशिक्षा और पेट की भूख स्त्रियों को इस वृत्ति की राह चलाने के लिए मजबूर बना लेते हैं । पुरुषों के द्वारा किए जानेवाले अत्याचार,

---

[51] मृदुला गर्ग- चुकते नहीं सवाल, पृ.141

बेमेल विवाह, दहेज, बाल-विधवा, अपहरण, बलात्कार आदि इस वृत्ति के जाने माने कारण है। आज पर्यटन के बढ़ावे के साथ खास तौर पर बालवेश्यावृत्ति बढ़ी है। "वेश्या ऐसा शब्द है, जिससे स्त्री के कलंकित जीवन की ध्वनि निकलती रहती है कि इस वर्गगत नाम को धारण करनेवाली स्त्री रतिक्रिया का मोल मांगती है।"[52] यह व्यवसाय मूल रूप में पुरुषों के हित को पोषित करता है। कुछ लोग आज सेक्स-वर्क को कानूनी जामा पहनाने की ज़ोरदार कोशिश में लगे हुए है। कांग्रेस सदस्या प्रियादत्ता ने कहा था कि यौनकर्मी भी समाज का हिस्सा है और उनके अधिकारों को कतई अनदेखा नहीं किया जा सकता है। उन्होंने जनवरी 2011 में जिस्मफरोशी को वैधानिक दर्जा दिलवाने की कोशिश की। उनके इस विचार के पीछे समाज, पुलिस और मीडिया द्वारा किये जानेवाले शोषण से मुक्ति की कोशिश ही रही। कुछ लोगों के अनुसार इन्हें इस धन्धे की भयानकता से अवगत कराकर जागरूक किया जाना चाहिए।

जो स्त्रियाँ मजबूरी के चलते जिस्म बेचती है, उन स्त्रियों के लिए ऐसे वातावरण तैयार करना चाहिए जो उसकी आवश्यकताओं को पूरा कर सके। "वेश्यावृत्ति को उखाड़ने का अभियान, सदियों से चला आ रहा है, लेकिन वह कैंसर की तरह, नई-नई जगह नए-नए रूपों में प्रकट हो जाता है। ऐसे, जैसे इस सामाजिक रोग को किसी अदृश्य ताकत ने खाद पानी मुहैया कराया हो....किसने?.... कौन नहीं जानता कि अर्थशास्त्र का एक सिद्धांत कहता है कि बिना मांग के पूर्ति के रास्ता रुक जाते हैं, बाज़ार की पहली शर्त होती है मांग.... बेशक पुरुषवर्ग यह मांग करता है।"[53] पुरुषों ने ही इन्हें अभिशाप की राह पर ढकेला है।

---

[52] मैत्रेयी पुष्पा-खुली खिड़कियाँ, पृ.44

[53] मैत्रेयी पुष्पा- सुनो मालिक सुनो, पृ.49

आज लेखिकाएँ इस वृत्ति को जड़ से मिटाने का भरसक प्रयास कर रही है । इसके लिए कुछ उपाय वे हमारे सामने रखती हैं । इस वृत्ति को मिटाने के लिए पहले उन स्त्रियों को स्वावलंबी बनाना होगा । भयंकर बीमारियों से पीड़ित महिलाओं का उचित इलाज़ करना होगा। छोटी बच्चियों को इस माहौल से दूर करके शिक्षा दी जाय, जिससे वे मुख्यधारा में शामिल हो जाए । केन्द्र सरकार द्वारा अनेक योजनाएँ इनके उद्धार के लिए बनायी जा रही हैं । लेकिन यह प्रयत्न पूरी तरह से तब तक संभव नहीं होगा जब तक इनके प्रति समाज की सोच न बदलें । समाज को वेश्याओं के प्रति जो हीन भावना है उसे त्यागना पड़ेगा तभी उनकी प्रगति संभव हो सकेंगी ।

1.4.4.2 वृद्ध जीवन

संसार में वृद्धों की समस्या आज ज़ोरों पर है । शारीरिक अशक्तता और अकेलापन वृद्धावस्था की दो मुख्य समस्याएँ हैं । उनके सोचने-विचारने का तरीका अलग है। उनकी उम्र की अपनी कुछ अपेक्षाएं होती हैं । जो युवालोग कम समझते हैं। तब वे एक दूसरे को निभाने में असमर्थ होते हैं । उनके बीच की खाई को साहित्यकार समझने लगे हैं । लोगों को यह समझना चाहिए कि परिवार में परस्पर सम्मान, प्यार, देखभाल, एक दूसरे को समझने की ज़रूरत दोनों ओर से हैं । संयुक्त परिवार के टूटने से परिवार के लिए वृद्ध एक बोझ बन गया है । युवकों को यह समझना चाहिए कि वृद्धावस्था निकम्मा नहीं है वह अनुभवों का खज़ाना है । उनको घर की इज्जत समझना है बोझ नहीं । उनके साथ अपनत्वपूर्ण सम्मानजनक व्यवहार करेंगे तो उनकी समस्याओं का निवारण संभव है । नहीं तो दोनों पीढ़ियों के बीच कटुता ही उत्पन्न होती रहेंगी ।

निष्कर्ष

साहित्य स्वयमेव एक प्रतिरोध है जो हमेशा सामाजिक कुतंत्र के प्रतिपक्ष में खड़ा होता है। वह जीवन के तमाम क्षेत्रों में व्याप्त शोषण पर वार करता है जिसकी परिणति संधि एवं संवाद होता है। यह सांस्कृतिक बहुलतावाद के पक्ष में है जिसमें स्त्री हो या अल्पसंख्यक समाहित है। इन उपेक्षितों के प्रति करुणा जगाना साहित्य का परम धर्म है। साहित्य में स्त्री प्रतिरोध सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक क्षेत्रों में स्त्री की मुक्ति चाहती है। वह लिंगभेद को दूर करके सामाजिक न्याय एवं उसमें समानता की साझेदारी चाहती है। प्रतिरोधी चेतना केवल स्त्री के मौन को ही नहीं बल्कि जिनके पास शब्द नहीं उन्हें शब्द प्रदान करती है। जहाँ भी उत्पीडित लोग है उनकी दुनिया को बदलने की जिम्मेदारी स्त्रियों ने अपने कंधे पर ले ली है। उनकी अस्मिता में मौजूद है हर निर्बल शोषितों की अस्मिता। स्त्री का प्रतिरोध आदिवासी, दलित, प्रकृति, वृद्ध, वेश्या जैसे पिछडे वर्गों को समझने की नई दृष्टि एवं नए आदर्श प्रदान करता है। इन सब के दलन का कारण पुरुष की सत्ता एवं उसके मन की जातीय श्रेष्ठता का बोध है। सहभागिता, ममता, प्रेम, ईमानदारी आदि सिर्फ स्त्रियों का नहीं बल्कि पुरुषों का भी गुण होना ज़रूरी है । यह मानने में पुरुष समर्थ हुआ तो नई स्त्री को स्वीकारने में उन्हें कोई कष्ट न होगा। स्त्री का यह प्रतिरोध एक स्त्री द्वारा अपने और दुनिया के बारे में अलग से सोचने का तरीका है । यह पुरुषों के लिए सोचने और रचने की नयी राहें खोलता है।

दूसरा अध्याय

स्त्री-प्रतिरोध और समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला कहानीकार

रचनात्मकता साहित्यकार का प्रतिरोध है । साहित्यकार इसके ज़रिए समाज का दिशा निर्देश करता रहता है । आज समाज में बहुत सारी विसंगतियां जैसे शोषण, लूट, भ्रष्टाचार एवं हत्यायें होती रहती हैं। यह हालात बहुत ही चिंताजनक है। ऐसी हालत में लेखक को यदि प्रतिरोध की बात कहनी है तो उन्हें एक 'स्टैंड' लेना होगा । लिखते समय रचनाकार के भीतर एक न्यायबोध होता है साथ ही 'जस्टिस' की आकांक्षा भी रहती है । उनको समाज एवं व्यवस्था से न्याय नहीं मिला तो वह एक प्रति संसार रचता है और अपनी इच्छा ज़ाहिर करता है । वह सीधे समाज में जो गैर बराबरी, शोषण, अन्याय है उसके खिलाफ खड़ा होता है। अपने इस न्यायबोध की माँग को सुरक्षित रखनेवाला साहित्य ही प्रासंगिक होता है। यही आज महिला रचनाकार भी कर रही है ।

सदियों से समाज के साथ-साथ साहित्य में भी स्त्री उपेक्षित रही है। बाद में समाज परिवर्तित समाज ने परम्परागत रूढ़ियों को ज़बरदस्त चुनौती दी । इसके तहत स्त्री भी अपने हिस्से के दर्द को अभिव्यक्ति देने के लिए प्रयत्नरत रही। वैसे भारतीय संदर्भ में स्त्री विमर्श का फलक बहुत ही व्यापक है। महिला रचनाकारों की रचनात्मकता में प्रतिरोध की खोज करें तो वह मनुष्य की गरिमा के समर्थन में खड़ी होती है । सिर्फ सवाल खड़ा करने से कोई व्यापक प्रतिरोध न होगा। व्यवस्था के तंत्र को पहचानकर समाज में हाशियेकृत जैसे दलित, आदिवासी, स्त्री, वृद्ध के पक्ष में खडी रचना में प्रतिरोध स्वयमेव निकलकर पाठक के हृदय में स्थान ग्रहण करता है। तब लेखक अपने उद्देश्य में सफल होता है ।

हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श का सूत्रपात उन्नीसवीं सदी के उत्तराद्र्ध एवं बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में हुआ। बंगमहिला की 'कुम्भ में छोटी बहू' और 'दुलाईवाली' कहानी में इसकी पहली अनुगूँज सुनाई देती है। उनका लक्ष्य सिर्फ स्त्री के नैसर्गिक गुण और आदर्शात्मक स्वरूप को उकेरना था। स्वातंत्र्योत्तर काल में प्रेमचन्द के कथा साहित्य में स्त्री चेतना का विकसित रूप स्पष्ट दिखाई देता है। उनकी स्त्री पात्र प्रतिरोध, बेहतर जिन्दगी की इच्छा और अपने हक के प्रति

जागरूकता से ओतप्रोत रही। स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी कथा साहित्य संक्रमण के दौर से गुज़रने लगा। मूल्यच्युति के उस युग में सम्बन्धों में दरारें पड़ने लगीं।

भारतीय साहित्य के अंतर्गत मलयालम साहित्य का अपना पृथक अस्तित्व है । इसमें भी स्त्री-लेखन की सशक्त उपस्थिति है । ललितांबिका अंतर्जनम (1909-1987) ने शोषित स्त्री वर्ग के उद्धार को लक्ष्य करके कहानियाँ लिखी और स्वसमुदाय की बहनों की यातनाओं को वाणी दी। के. सरस्वती अम्मा (1919-1975) ने स्त्री के अबला संकल्प को ठुकरा कर उसे एक व्यक्ति की हैसियत से जीने की प्रेरणा दी। उनकी कहानियों में स्त्री की अधीनता को नष्ट करके समानता को हासिल करने की ललक दिखाई देती है ।

प्रतिबंधों से जूझते जनसाधारण की भावनाओं को स्त्री-रचनाकारों ने अपनी लेखनी का आधार बनाया । स्वातंत्र्योत्तर काल के महिला लेखन में मध्यवर्गीय परिवार में घुट-घुटकर जीवन व्यतीत करती भारतीय नारी की संवेदनाओं का गहरा अंकन मौजूद है । आठवें दशक में लेखिकाओं ने आधुनिक नारी की पीड़ा, उनका विद्रोह, तत्जनित प्रतिरोध को अपनी लेखनी का विषय बनाया । समकालीन लेखिकाएँ आज के जीवन की परिवर्तनशीलता और नारी जीवन के परिवर्तित मूल्यों को अत्यन्त मार्मिकता के साथ व्यक्त कर रही है । वे अपनी रचनाओं के ज़रिए स्त्री के भौतिक और आत्मिक अस्मिता के लिए संघर्षरत है । समकालीन महिला लेखन पर विचार करने से पहले समकालीनता पर दृष्टि डालना अनिवार्य है ।

2.1 समकालीनता

'समकालीन' शब्द 'सम' उपसर्ग और 'कालीन' विशेषण के योग से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है एक ही समय में होने वाला या रहनेवाला । हिन्दी में 'समकालीन' और 'समसामयिक' शब्द अंग्रेज़ी के 'काण्टेंपोरेरी' तथा कोइवल (coval) शब्द के पर्याय के रूप में प्रयुक्त है ।

‘समकालीन’ शब्द एक ओर समय विशेष को सूचित करता है तो दूसरी ओर अपने समय के साथ के सरोकार को। समकालीन परिदृश्य से मतलब साठोत्तर भारतीय परिवेश की ओर है ।

‘समकालीन’ की भाववाचक संज्ञा है ‘समकालीनता’ । किसी भी व्यक्ति के लिए समकालीनता को प्राप्त करना सरल बात नहीं है । युगीन सच्चाईयों की असली जानकारी इसके लिए आवश्यक है । "समकालीनता अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों का मुकाबला करता है । समस्याओं की समझ से समकालीनता उत्पन्न होती है ।"[54] अतः अपने समय की महत्वपूर्ण समस्याओं के बारे में चिन्तन-मनन कर अपने समय के सच को तटस्थता के साथ परखने की क्षमता समकालीनता है । "समकालीनता वर्तमान जीवन प्रणाली की जटिलता को उसकी पूरी समग्रता में सूक्ष्मता के साथ व्याख्यायित, परिमार्जित एवं प्रतिक्रियान्वित करनेवाली गहरी समझ का नाम है ।"[55] तत्कालीन समय में छायी हुई जनविरोधी नीतियाँ एवं विसंगतियों के प्रति प्रतिरोध जताना समकालीनता का मुख्य उद्देश्य है । इसमें प्रगतिशील चेतना और मानवीय हित सम्मिलित है ।

समकालीनता में वर्तमान बोध के साथ अतीत और भविष्य का विवेक-बोध भी निहित है । "समकालीनता मात्र वर्तमान का बोध नहीं बल्कि अतीत के तहत् वर्तमान को गहराई में समझने और वर्तमान को बदलकर एक नये भविष्य को गढ़ना है ।"[56] इसप्रकार समकालीनता एक उज्ज्वल भविष्य की कामना रखती है। समकालीन साहित्य में समय के यथार्थ को दिखाया गया है। आज का समय नवउपनिवेशवाद, भूमण्डलीकरण व बाज़ारीकरण, सांप्रदायिकता, भ्रष्ट राजनीति, कई प्रकार के शोषण, सांस्कृतिक विघटन आदि समस्याओं से भरपूर है । इन समस्याओं को साहित्यकार सबसे पहले भाँप लेते हैं । समाज की इन समस्याओं की ओर जनता की दृष्टि लाना

---

[54] विश्वंभरनाथ उपाध्याय- समकालीन सिद्धांत और साहित्य

[55] डॉ. एन. मोहनन- समकालीन हिन्दी उपन्यास, पृ.20

[56] जानवती अरोरा- समकालीन हिन्दी कहानी यथार्थ के विविध आयाम, पृ.1

उनका कर्तव्य है। वे समाज में व्याप्त विसंगतियों को एक चुनौती के रूप में लेकर उससे लड़ने के लिए वैचारिक आधार पर प्रतिरोध का सहारा लेती है। वे यह समझ रखती है कि प्रतिरोध की परिणति संधि अथवा संवाद में होती है । इस दृष्टि से देखे तो साहित्य समस्याओं के प्रति या व्यवस्था के प्रति लेखक की असहमति अथवा प्रतिरोध है । अतः समकालीन होने के लिए अनिवार्य है अपने समय की सही पहचान एवं सार्थक प्रतिरोध ।

समकालीन साहित्य सांस्कृतिक बहुलतावाद के पक्ष में है । यह परंपरागत विविधता को बनाए रखकर पूँजीवादी समग्रता को विखंडित करता है। अपनी रचनाओं के ज़रिए समकालीन साहित्यकार स्त्री दलित या पिछडों को आगे लाने की कोशिश में हैं । उनके यह प्रतिरोध स्वर साहित्य में स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, पारिस्थितिक विमर्श आदि के रूप में हमारे सामने आते हैं। जिससे समाज के इन शोषित, पीड़ित, हाशियेकृत तबकों को अपनी यातनाओं के विरुद्ध आवाज़ उठाने का हौसला मिलता है। वर्तमान उपभोक्तावादी समाज में इनके समान तिरस्कृत एवं उपेक्षित वर्ग है वृद्धजन। ऐसे में समकालीनता सांस्कृतिक विमर्श का रूप लेने में सक्षम बन जाता है । अपने समय के साथ गहरा सम्पर्क रचना को जीवन्त बनाता है । यह जीवन्तता लेखक की सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचायक है । इस दृष्टि से समकालीन साहित्य अन्य युगीन साहित्य की तुलना में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है ।

2.2 स्त्री का प्रतिरोध और समकालीन महिला लेखन

स्त्री-मुक्ति आंदोलन, स्त्री विमर्श एवं महिला लेखन के प्रभाववश स्त्रियों में नई चेतना का विकास हुआ है । स्त्री-विमर्श स्त्री चेतना का विचारात्मक पक्ष है, स्त्री-मुक्ति संघर्ष क्रियात्मक एवं महिला लेखन सर्जनात्मक है । "महिला लेखन यदि एक विशेषण है तो तय है कि अस्तित्व में आने से पहले वह विचार में बँधा - होगा और विचार चेतना से अनुस्यूत हुआ होगा । चेतना मूल्यपरक इकाई है जो स्वभावतः परिवेशगत दबावों से उत्पन्न होती है और अनिवार्यतः परिवेश

का विखंडन करती है ।"[57] महिलाओं में शिक्षा के प्रचार से ही चेतना जागी है । फलस्वरूप आज वह लेखन के क्षेत्र में सक्रिय है । वह मनुष्य, नागरिक और सामाजिक प्राणी की हैसियत से स्त्री के मानवीय अधिकारों की माँग करता है ।

स्त्री और पुरुष लेखन में भावबोध, जीवन-दृष्टि और चेतना के स्तर पर फर्क होता है । वही उनकी रचनाशीलता में व्यक्त होता है । इस फर्क की पहचान साहित्य की आलोचना में स्त्री--दृष्टि की पहली शर्त है । जो दलित है, शोषित है वही शोषण की त्रासदी को समझ सकता है । कुछ अनुभव ज़रूर ऐसे हैं जिन्हें केवल एक भुक्त भोगी ही अभिव्यक्त कर सकता है । किसी भी समाज में हो स्त्री कब, कहाँ और कैसे वंचना का शिकार होती है, यह कोई स्त्री ही अपने लेखन में व्यक्त कर सकती हैं, क्योंकि अनुभव की प्रामाणिकता के लिए स्त्री होना ज़रूरी है ।

साहित्य में स्त्री-विमर्श का अर्थ है स्त्री को केन्द्र में रखकर समाज, संस्कृति, परम्पराओं एवं इतिहास का पुनरीक्षण करते हुए स्त्री की स्थिति पर मानवीय दृष्टि से विचार करने की प्रक्रिया । अपने स्वत्व के प्रति जागरूक स्त्रियाँ इस विमर्श को प्रखर बना रही है । "स्वयं चेती हुई स्त्री के स्वाधिकार स्त्री विमर्श के सरोकार है ।"[58] स्त्री विमर्श ने पितृसत्तात्मक मूल्यों, दोहरे मापदंडों, अंतर्विरोधों को पहचानने की अंतर्दृष्टि प्रदान करके स्त्री को उसकी स्वतंत्र जीवन्त अस्मिता से परिचित कराया । पुरुष के बराबर अधिकार की माँग स्त्री के चयन वरण और नकारने की स्वतन्त्रता स्त्री अस्मिता की मुख्य शर्तें हैं ।

---

[57] रोहिणी अग्रवाल- आकाश चाहने वाली लडकी के सवाल, पृ.131

[58] कात्यायनी- दुर्गद्वार पर दस्तक

जब कोई स्त्री स्थापित विचारों, यथास्थिति वाद, वर्चस्ववाद को तोड़ती है, उनके अंतर्विरोधों, विरोधाभासों को सामने लाने की हिम्मत करती है तो उसे सत्ता के जबर्दस्त विरोध का सामना करना ही पड़ता है । लिंग भेद में जकडा हुआ स्त्री विरोधी समाज की वास्तविकता यही है । स्त्री आज अपने लेखन के माध्यम से प्रतिवाद कर रही है। वह अपनी प्रभावी उपस्थिति को दर्ज करने के साथ जीवन के हर क्षेत्र में उपस्थित लिंग भेदी दृष्टिकोण पर प्रश्नचिह्न उठा रही है। स्त्री का प्रतिरोध इसके भीतर की राजनीति के खिलाफ है । जहाँ वे अपने स्वत्व सम्बन्धी मूल प्रश्नों से टकराती है वहाँ से शुरू होता है इस प्रतिवाद एवं प्रतिरोध की प्रक्रिया । साहित्य में नारी के प्रतिरोध का विश्लेषण, समकालीन परिवेश में स्त्री समाज की त्रासद स्थितियों एवं रूढ़िग्रस्त नैतिक मान्यताओं से जुड़े प्रश्नों के संदर्भ में करना होगा । आधुनिक स्त्री का प्रतिरोध सिर्फ देह न बने रहकर अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व, अस्मिता व अस्तित्व विकसित करने की आकांक्षा है । स्त्रीत्ववादी विमर्श ने ही इस प्रतिरोध को ताकत प्रदान की है ।

आज नारी चेतना ने महिला लेखन में व्यापक अर्थ खोजे हैं । मातृत्व का ही संदर्भ लें तो, उसका अर्थ खुद अपने बच्चे को जन्म देना और पालना मात्र न रहकर, ऐसा पोषक तत्व हो गया है, जो संस्था, संगठन, पर्यावरण, समाज सब का पोषण करता है । स्त्री जब अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष कर रही होती है तो उसका संघर्ष सीधे समग्रता के लिए हो जाता है । स्त्री की लड़ाई समूचे समाज की लड़ाई है। उसकी अस्मिता में समाहित है दुनिया के हर निर्बल शोषित की अस्मिता। वह समाज में उपेक्षित, आनदृत जैसे दलित, आदिवासी, अन्य हाशिएकृतों के साथ आजीवन खडे रहने का संकल्प लेकर कलम उठाती है ।अर्थात् स्त्रियाँ समाज की एक ऐसी इकाई होती है जिनका अपना निजी स्वार्थ नहीं होता। इसे जैविक या सामाजिक संरचना कहिए, वास्तव में स्त्रियाँ अपने साथ पूरे समाज को लेकर चलती है । उसके व्यक्तित्व में उदारता का

तत्व प्रबल होने से ही वह ये सब कुछ करती हैं । वस्तुतः उनका प्रतिरोध आधुनिक युग की उदारवादी सकारात्मक दृष्टि का प्रतिफलन है ।

स्त्री के नैसर्गिक व्यक्तित्व का हनन हर सभ्यता का सबसे बड़ा नैतिक खोखलापन है । अपने स्त्रीत्व के प्रति जागरूक स्त्री की स्वीकृति ही स्वाभाविक स्थिति है, नैसर्गिक न्याय है । जो जहाँ भी उत्पीड़ित और साधन विपन्न है दुनिया बदलने की जिम्मेदारी उन्हीं के कंधे में है । महिला लेखन संवेदनशील नागरिकों में पहले शोषित एवं प्रवंचित स्त्रियों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण विकसित करके उसके ज़रिए समाज के शोषित तबकों को समझने की क्षमता देता है । साथ ही उनके प्रति कर्मठ दायित्वबोध भी जगाता है । इस दृष्टि से साहित्य में स्त्री विमर्श बहु आयामी भी है साथ ही साथ क्रांतिकारी थी ।

सदैव असुरक्षा की भावना के साथ पलनेवाले लोगों के बीच ही प्रतिरोधक क्षमता पैदा हो जाती है । किसी भी पूर्व व्यवस्था के बदलाव के लिए प्रतिरोध ज़रूरी है, वही आज औरत कर रही है । वह अपने अनुभव लिखकर समाज को उसकी विकृतियाँ दिखा रही है और उसे बदलने व सुधरने के लिए प्रेरित कर रही है। आज वे जिस बौद्धिक प्रखरता और आलोचनात्मक चेतना द्वारा सोचने लिखने लगी है, उससे पितृसत्तात्मक समाज की चिंताएँ बढ़ गई है । औरत ने अपने जकड़न भरी जिन्दगी के अस्वीकार में कलम एवं आवाज़ उठाई है । आवाज़ ही उनकी सबसे बड़ी पूँजी है । उनकी आवाज़ में पहले से कहीं अधिक पैनापन और प्रश्नाकुलता है। इन प्रश्नों को अनदेखा नहीं किया जा सकता। उनकी इस प्रतिरोधी स्वर में सकारात्मक सामूहिक संवाद साफ दिखाई देता है । समकालीन स्त्री लेखन का सबसे बड़ा ध्येय यही प्रतिरोध है ।

2.2.1 समकालीन हिन्दी महिला कहानीकार

आज नारी का संपूर्ण शोषण हो रहा है, वह यह पहचान चुकी है । यह पहचान ही स्त्री लेखन का मर्म है। स्त्री के उद्धार के लिए पुरुषों ने भी काफी प्रयत्न किया है। लेकिन स्त्री लेखन

ने स्त्रियों को आत्मविश्वास दिलवाया। प्रेमचन्द युग में उषादेवी मित्रा, कमला चौधरी, सत्यवती मलिक, सुभद्राकुमारी चौहान, श्रीमती चन्द्रकिरण सौनरिक्सा, श्रीमती होमवती देवी आदि महिला कहानी लेखिकाएँ तत्कालीन सामाजिक संदर्भों को केन्द्र में रखकर कहानी लेखन के क्षेत्र में सक्रिय थी और इनके बाद रजनी पनिक्कर, कंचनलता सब्बरवाल, शान्ति मेहरोत्रा, सोमावीरा, श्रीमती राजेश्वरीदेवी चकोरी, श्रीमती स्वर्णलता देवी आदि लेखिकाओं ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया था । किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महिला लेखिकाओं का एक वर्ग ही उठ खड़ा हुआ । लेखन के प्रारंभिक दौर में इन महिला रचनाकारों ने परिवार एवं समाज के संदर्भ में अपने जीवित होने और जीवन की सार्थकता के सवाल को उठाया है । इसी क्रम में परम्परा के नाम पर चली आ रही सामाजिक कुरीतियाँ धर्म के नाम पर चली आ रही कूटनीतिक साजिशों को उसने बेनकाब करना शुरू किया है ।

समकालीन समय में महिला कहानीकारों की दो पीढ़ियाँ एक साथ सक्रिय है । महिला लेखन में वरिष्ठ और प्रसिद्ध कथाकारों में शशिप्रकाश शास्त्री, शिवानी, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियंवदा, ममता कालिया आदि उल्लेखनीय है । दूसरी पीढ़ी में दीप्ति खण्डेलवाल, मृणाल पाण्डेय, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, राजी सेठ, मंजुल भगत, मणिका मोहिनी, प्रतिमा वर्मा, सुधा अरोडा, निरुपमा सोबती, सूर्यबाला, मेहरुन्निसा परवेज, इन्दुबाली, मालती जोशी आदि प्रतिष्ठित महिला कहानीकार आते हैं । बाद में उनकी एक ओर पीढ़ी उभर कर सामने आई हैं, इसमें कृष्णा अग्निहोत्री (1935ई.), चन्द्रकान्ता (1938ई.), कुसुम चतुर्वेदी, मैत्रेयी पुष्पा (1944ई.), नमिता सिंह (1944ई.), उषा किरन खान (1945ई.), कमलकुमार (1946ई.), नासिरा शर्मा (1948ई.), ऋता शुक्ल (1950ई.), सारा राय (1956ई.), गीतांजलि श्री (1957ई.), लवलीन (1959रई.), मुक्ता, अलका सरावगी (1960ई.) आदि उल्लेखनीय है ।

2.2.1.1 कृष्णा सोबती

इनकी लम्बी कहानी 'मित्रो मरजानी' में मित्रों के रूप में हिन्दी कहानी में पहली बार एक ऐसे नारी पात्र की सृष्टि हुई है, जो पहली बार पुरुष सत्तात्मक समाज में पुरुषों द्वारा दी गई अपनी सामाजिक छवि को निडर हो उतार फेंकती है । आगे मूल्य-मर्यादाओं की पुरानी नीवों को हिलाती है । बादलों के घेरे (1980ई.) उनका एक और कहानी-संग्रह है । उनकी कहानियों में मानवीय मूल्यों के टूटने का दर्द दिखाई पड़ता है । परिवेश का यथार्थ, पंजाब की धरती की गंध और पात्रों की खुली साहसिक मानसिकता उनकी कहानियों की प्रमुख विशेषताएँ हैं ।

2.2.1.2 मन्नू भण्डारी

नयी कहानी को समृद्ध बनाने में जिन कथा-लेखिकाओं ने महत्वपूर्ण कार्य किया है, मन्नू भण्डारी का नाम उनमें सर्वोपरी है । इस दौर में 'यही सच है' कहानी के प्रकाशन के साथ विशेष ख्याति मिली थी । उन्होंने बदलते हुए परिवेश में संस्कार और आधुनिकता के बीच उलझे हुए नारी-मन के द्वन्द्व को बड़ी ईमानदारी से चित्रित किया है । 'मैं हार गई' (1957ई.), यही सच है (1966ई.), एक प्लेट सैलाब (1968ई.), तीन निगाहों की एक तस्वीर (1968ई.), त्रिशंकु (1978ई.), आँखों देखा झूठ, बिना दीवारों के घर आदि उनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह है ।

उन्होंने अपनी कुछ कहानियों में मजदूर वर्ग की असहाय नारियों की दरिद्रता, संघर्ष और मानसिकता का बड़ा ही मार्मिक चित्र खींचा है । 'रानी माँ का चबूतरा' ऐसी ही मार्मिक कहानी है । मन्नू भण्डारी की कहानियाँ आधुनिक भारतीय नारी को एक नई छवि प्रदान करती है । वह नारी के आँचल को दूध और आँखों को व्यथा के पानी से भरा दिखाने में विश्वास नहीं रखती । वे नारी के जीवन यथार्थ को उसकी दृष्टि से यथार्थ धरातल पर रचती है । आधुनिक नारी की

अस्मिता, पहचान और सामाजिक जड़ताओं से लड़ने का साहस उनकी रचना का मुख्य विषय है । यह एक चुनौती भरा कार्य था । इनकी कहानियाँ सामाजिक सरोकारों को, आज के अर्ध-पूँजीवादी-सामंती समाज में नारी के उभरते व्यक्तित्व, सम्बन्धों के बदलते स्वरूप और उसके संघर्षों को रेखांकित करती है । साहस और बेबाकबयानी के कारण मन्नू भण्डारी ने हिन्दी-कथा जगत् में अपनी एक अलग पहचान बनाई । ये कहानियाँ उनकी सतत, जागरूक, सक्रिय विकासशीलता को रेखांकित करती है ।

2.2.1.3 उषा प्रियंवदा

उषा प्रियंवदा नयी कहानी के दौर की बहुचर्चित कहानीकार है । उनके कथा-साहित्य में शहरी परिवारों के बड़े ही अनुभूति प्रवण चित्र हैं । आधुनिक जीवन की उदासी, अकेलेपन, ऊब आदि का अंकन करने में वे अत्यंत गहरे यथार्थ बोध का परिचय देते हैं । उनके कई कहानी-संग्रह 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' (1961ई.), 'फिर बसन्त आया' (1961ई.), 'एक कोई दूसरा' (1966ई.), 'कितना बड़ा झूठ' (1992ई.) आदि प्रकाशित हैं । उनकी अधिकांश कहानियाँ ऐसी शिक्षित युवतियों की कहानियाँ हैं, जो स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करने के सपनों को लेकर विदेशों में जाती है, किन्तु वहाँ की उपभोगवादी संस्कृति से टकराकर उनके सपने चूर-चूर हो जाते हैं ।

कितना बड़ा झूठ के सम्बन्ध में मधुरेश ने कहा है - "कहानियों का मूल स्वर आवेग के स्वीकार का स्वर है । इसीलिए सेक्स और दूसरी संस्कारगत वर्जनाओं को वे बड़ी निर्ममता से तोड़ती भी दिखाई देती हैं, और चूँकि वे अपने ढंग से जीने के आग्रह को रेखांकित करती है, कुल मिलाकर उनमें 'स्व' की खोज और प्रतिष्ठा की कहानियाँ ही अधिक है ।"[59] इनकी कहानियाँ

[59] मधुरेश- सिलसिला, पृ.631

नारी-मन की अछूती, अनपहचानी गहराइयों में प्रवेश कर उसके अंतर्मन की सूक्ष्म संवेदनाओं को खोलती है। संयुक्त परिवारों के बीच वृद्धों के फालतू होते जाने की समस्या पर उनकी नज़र जाती है । 'वापसी' इसी थीम पर लिखी गई कहानी है ।

2.2.1.4 शशिप्रभा शास्त्री

शशिप्रभा शास्त्री ने अपनी कहानी में बदलते जीवन-संदर्भ में स्त्री-पुरुष संबन्धों का विश्लेषण किया है । उनके कहानी-संग्रह - धुली हुई शाम (1969ई.), अनुत्तरित (1975ई.), दो कहानियों के बीच (1978ई.), जोड़-बाकी (1981ई.), एक टुकड़ा शांतिपथ (1991ई.), पतझड़ (1994ई.), उस दिन भी (1996ई.) प्रकाशित है । उन्होंने अपनी कहानियों में शिक्षित मध्यवर्गीय परिवारों के दाम्पत्य जीवन की विसंगतियों का चित्रण किया है । उन्होंने अपनी परवर्ती कहानियों में सामाजिक विसंगतियों एवं प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार का भी पर्दाफाश किया है । वे प्रत्येक घटना का विवेचन मानवीय दृष्टि से करती हैं ।

2.2.1.5 ममता कालिया

ममता कालिया हिन्दी के उन कलाकारों में उल्लेखनीय है, जिन्होने मध्यवर्गीय

भाव-बोध को अपनी कहानियों का विषय बनाते हुए भी उसकी सीमाओं का अतिक्रमण किया है । उनकी कहानियों में यह बात विशेष रूप से उभर कर सामने आती है कि आज भी नारी उत्पीड़न से मुक्त नहीं है । छुटकारा (1969ई.), सीट नं 6 (1978ई.), एक अदद औरत (1979ई.), प्रतिदिन (1984ई.), उसका यौवन (1985ई.), बोलनेवाली औरत (2000ई.), मुखौटा (2002ई.) आदि उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह है ।

वे नारी के प्रति परम्परागत दृष्टिकोण को नकारती हुई पतनशील जीवन-मूल्यों को स्वीकार नहीं करती । समाज के स्वस्थ जीवन-मूल्यों को आत्मसात करके, उन्हें नई सामाजिक अर्थवत्ता प्रदान करती है । अखिलेश का कहना है "ममता कालिया ने इन कहानियों को महिलावादी क्रोधी-भंगिमा से नहीं रचा है, न ही इनमें औरतों के प्रति अबोध आकुलता है । ये गुस्से और भावुकता से पृथक निर्भल और निस्संग तरीके से यथार्थ को हाजिर करती है । वस्तुतः उनकी कहानियाँ नारीवादी न होकर नारी के यथार्थ की रचनाएँ हैं ।"[60] अपनी वैचारिकता और अलग नज़रिए से वे पूर्णतया निषेध-मुक्त और आधुनिक है । घर की चारदीवारी में कैद नारी की मुक्ति-आकांक्षा और उसका संघर्ष ममता कालिया की अधिकांश कहानियों का प्रस्थान बिन्दु हैं ।

2.2.1.6 दीप्ति खण्डेलवाल

हिन्दी के नवोदित लेखिकाओं में दीप्ति खण्डेलवाल को विशिष्ट स्थान प्राप्त है । उनकी कहानियाँ नारी-जीवन की समस्याओं को आधुनिक दृष्टि से प्रस्तुत करती हैं जिनमें उनके मन की व्यथा बड़ी मार्मिकता से व्यक्त होती है । 'कड़वे सच' (1975ई.), धूप के अहसास (1976ई.), वह तीसरा (1976ई.), सलीब पर (1979ई.), दो पल की छाँव (1978ई.), नारी मन (1979ई.), औरत और बाते (1980ई.) आदि उनके प्रकाशित कहानी संग्रह हैं । वे नारी के प्रति अत्यन्त संवेदनशील है । कहानियों के ज़रिए सदियों से प्रताड़ित, उपेक्षित नारी जीवन को सशक्त अभिव्यक्ति दी है । वह भिन्न-भिन्न चरित्रों के माध्यम से नारी-मन की अव्यक्त और दबी-घुटी पिपासा को वाणी देने का प्रयास करती है ।

2.2.1.7 मृणाल पाण्डेय

---

[60] ममता कालिया- बोलनेवाली औरत, फ्लैप से

मृणाल पाण्डेय आठवें दशक की सशक्त कहानी लेखिका के रूप में उभर कर सामने आती हैं । उनकी कहानियाँ नारी-जीवन को केन्द्र में रखकर लिखी गयी हैं । 'दरम्यान' (1974ई.), शब्द वेधी (1980ई.), एक नीच ट्रैजेडी (1981ई.), एक स्त्री का विदागीत (1983ई.), यानी कि एक बात थी, बचुली चौकीदारिन की कढ़ी, चार दिन की जवानी तेरी आदि उनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह है ।

अनादि काल से प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था के दौर में परतंत्र नारी के बन्दी जीवन को ही उनकी कहानियों में अनेक प्रकार से बार-बार महिमामण्डित किया गया है । उनका कहना है "नारीवाद पुरुषों का नहीं उनकी मानवीयता घटाने वाले उस छदम मुखौटे का प्रतिकार करता रहा है । जो मर्दानगी के नाम पर गढ़ा गया है, और जिसके पीछे झूठी अहम्मन्यता और उत्पीड़न प्रवृत्ति के अलावा कुछ नहीं ।"[61] यानि वे नारी के प्रति बढ़ते अत्याचारों का दोषी पुरुष को ठहराती नहीं । वे पुरुष सत्तात्मक समाज का विरोध करती

हैं ।

2.2.1.8 मृदुला गर्ग

इनकी कहानियों में जिजीविषा का अत्यन्त मुखर स्वरूप होता है । कितनी कैदें (1975ई.), टुकड़ा टुकड़ा आदमी (1977ई.), डेफोडिल जल रहे हैं (1978ई.), ग्लेशियर से (1980ई.), उर्फ सैम (1986ई.), समागम (1996ई.), मेरे देश की मिट्टी अहा (2001ई.) आदि इनके प्रकाशित कहानी-संग्रह हैं । आधुनिक जीवन के बदले माहौल में परम्परागत नैतिक मूल्यों का विघटन, सामाजिक रिश्तों का खोखलापन, प्रेम और विवाह से सम्बद्ध समस्याएँ, सेक्स जीवन

---

[61] मृणाल पाण्डेय- परिधि पर स्त्री, पृ.9

की विसंगतियाँ, पुरुष-निरपेक्ष नारी का व्यक्तित्व और उसकी मानसिकता, बलात्कार का मनोवैज्ञानिक प्रभाव और उससे मुक्ति, उच्चवर्गीय अत्याधुनिक जीवन की विसंगतियाँ आदि अनेक जीवन संदर्भों को केन्द्र में रखकर इन्होंने कहानी की एक नई ज़मीन तैयार की है । तात्कालिक प्रश्नों से सार्वकालिक प्रश्नों की ओर यात्रा उनके साहित्य के अर्थों को विस्तार और गहराई देती है । उन्होंने सामाजिक विसंगतियों पर खुलकर व्यंग्य किया है । इनकी कहानी 'हरी बिंदी' लेखिका की पर्याय बन चुकी है । संवेदना की सूक्ष्म अभिव्यक्ति से मुग्ध कर लेनेवाली यह कहानी युवतियों में उत्साह एवं जीवन के प्रति मृदु ललकार का संचार करती है ।

उनकी कहानियों में आत्मनिर्भर, प्रतिभावान, महत्वाकांक्षी और आज़ाद ख्याल स्त्रियों का चित्रण हुआ है । उनका कहना है "किसी कानूनी, राजनीतिक और आर्थिक अधिकार का मिलना तभी सार्थक हो सकता है, जब उसे सामाजिक स्वीकृति भी मिले । ....स्थिति यह है कि नारी के पास अधिकार तो है पर निर्णय लेने का सामथ्र्य नहीं है । ....सामाजिक स्वीकृति के साथ इस बात का भी काफी महत्व है कि नारी के मन में उसकी अपनी क्या छवि है ।"[62] अर्थात् नारी अपने को निर्णायक शक्ति नहीं मान पाती है तो अधिकार स्वयं शोषण का माध्यम बन जाएगा ।

2.2.1.9 चित्रा मुद्गल

आठवें दशक की बहुचर्चित कथाकार चित्रा जी अपने लेखन से जहाँ एक ओर निरंतर रीतती जा रही मानवीय संवेदना को रेखांकित करते हुए लगभग निम्नवर्ग के पात्रों को, उनकी जिन्दगी के समूचे दायरे में घुसकर अध्ययन करती नज़र आती है, वही दूसरी ओर नये ज़माने की रफ्तार

---

[62] मृदुला गर्ग- समागम, पृ.130

में फँसी ज़िन्दगी की मजबूरियों के तहत् अपसंस्कृति की गर्त में धँसते जा रहे आधुनिक मानवीय मूल्यों के स्तब्ध कर देनेवाली तस्वीर भी गहरी संवेदना से उकेरती है । जहर ठहरा हुआ (1980ई.), लाक्ष्यगृह (1982ई.), अपनी वापसी (1983ई.), इस हमाम में, एवं ग्यारह लम्बी कहानियाँ (1987ई.), जगदम्बाबाबू गाँव आ रहे हैं (1992ई.), जिनावर (1996ई.), भूख (2001ई.), लपटें (2992ई.), मामला आगे बढ़ेगा उभी (1994ई.), बयान (2004ई.) आदि इनके प्रकाशित कहानी-संग्रह हैं ।

प्रखर चेतना की संवाहिका चित्रा जी के पास अनुभवों का विपुल भण्डार है । उन्होंने समाज के विभिन्न समुदायों विशेषकर दलित-शोषितों के बीच पैठ कर काम किया है। उनकी कहानियों का प्रमुख स्वर 'नारी मुक्ति' है । जिसमें मध्यवर्गीय नारी अपने अस्तित्व और स्वाभिमान की रक्षा के लिए पुरुष प्रधान समाज द्वारा किए अवमूल्यन से टकराती रही है, वहीं चारों और फैले अन्याय, शोषण, अत्याचार, अमानवीयता आदि का खुला प्रतिवाद कर रही है । "मुझे लगता है मूल रूप से अन्तर मात्र पिंजडे का है। पिंजड़ा लोहे, पीतल का हो या हीरा-मोती जड़ा सोने का । उसके भीतर पाँव टिकाने भर की अलगनी स्त्री की ज़मीन है और उसकी तीलियों के बाहर का आसमान उसका आसमान है ।"[63] यातना चाहे नारी की सर्वहारा की, वृद्ध की हो या बच्चे की, लेखिका उसके तह तक जाने की कोशिश करती है और व्यवस्था के सभी पहलुओं के साथ मनुष्य के पारस्परिक संबन्धों में उनके अन्तर्जगत में झाँकती है। यही वजह है कि उनकी कहानियों में व्यवस्था का क्रूर, अमानवीय, जनविरोधी चरित्र बार-बार उभरता है। समकालीन

[63] चित्रा मुद्‌गल- औरत की कहानी, सुधा अरोड़ा (अंतर मात्र पिछडे का है), पृ.118

यथार्थ को वह जिस अद्‌भुत भाषिक संवेदना के साथ अपनी कथा-रचनाओं में परत-दर-परत अन्वेषित करती है वह चकित कर देने वाला है ।

2.2.1.10 राजी सेठ

अन्धे मोड से आगे (1979ई.), तीसरी हथेली (1981ई.), यात्रामुक्त (1987ई.),

दूसरे देश काल में (1992ई.), यह कहानी नहीं (1998ई.), आदि उनके प्रख्यात कहानी –

है । पीढ़ियों के अन्तराल के कारण टूटते-बिखरते मूल्य और उसकी पीड़ा, वृद्ध जीवन का अकेलापन और उसकी त्रासदी, प्रेम-विवाह की असफलता, नारी की स्वातंत्र्य-भावना और जिजीविषा, पति का अहंकार और पत्नी के प्रति अमानवीय व्यवहार, पति-पत्नी के बीच मानसिक दूरी और आत्मीय स्पर्श के लिए तड़पती नारी, पति से परित्यक्त और अपने बॉझ से जुड़ी नौकरी पेशा नारी की स्थिति और नियति, होटलों और क्लबों की संस्कृति और उससे जुडी नारियों के जीवन में उठने वाले नये प्रश्न, यांत्रिकता का बढ़ता दबाव और मानवीय सम्बन्धों का विरूपीकरण ये सारे संदर्भ इनकी कहानियों में चित्रित है ।

वह नारी मुक्ति की मुहिम लेकर चलती है । "जैसे अँधेरे का निराकरण अंधेरे से लड़ना नहीं रोशनी की तलाश करना है । यह रोशनी शिक्षा और आत्मज्ञान है । यही एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से हर इनसान अपनी लड़ाई खुद लड़ने और अपना अंधेरा खुद दूर करने की ताकत जाता है । यह ज़रूरी है कि अपनी समस्या को पहले खुद समझने की कोशिश की जाए, फिर आत्मबल संकल्प और शिक्षा का सहारा लिया जाए । एक पुरुष के बिगड़ने या सुधारने में

केवल एक ही व्यक्ति का सुधार या बिगाड़ होता है, जबकि एक स्त्री के साथ पूरे परिवार का भविष्य जुडा होता है ।"[64] इस प्रकार स्त्री-शिक्षा की अनिवार्यता पर वह ज़ोर देती है ।

2.2.1.11 मंजुल भगत

मंजुल भगत की कहानियों में समाज के सभी वर्गों की त्रासदी ने अपने समग्र रूप में अभिव्यक्ति पायी है । गुलमोहर के गुच्छे (1974ई.), टूटा हुआ इन्द्रधनुष (1976ई.), क्या छूट गया (1976ई.), आत्महत्या के पहले (1979ई.), कितना छोटा सफर (1979ई.), बावन पत्ते एक जोकर (1982ई.), सफेद कौआ (1986ई.), दूत (1992ई.), बूँद (1998ई.), अंतिम बयान (2001ई.) आदि उनके प्रकाशित कहानी-संग्रह है । विशेषकर इन्होंने नारी-मन की पीड़ा को अत्यन्त सूक्ष्मता से चित्रित किया है ।

'गुल मोहनर के गुच्छो' में मुख्यतः नारी के विभिन्न रूपों और स्थितियों का ही चित्रण किया है । 'दूत' की 'तनु' हो या 'तसरी' औरत की ताशा, 'चिनार अपने-अपने' की रेशम हो या चांद, या फिर 'गुल दफरिया' की गुलदुपहरिया या 'कील पे अटकी' कागज़ की चिंदी की फुलवा ले सब विभिन्न वर्गों में मौजूद नारी की भिन्न-भिन्न व्यथाओं की जीती जागती तस्वीरें ही हैं । निर्माल जैन ने मंजुल भगत के बारे में कहा है "मंजुल भगत ने गत-अनागत के कालगत अदृश्य कुहासों में भटकने के बजाय अपने सामने जीती-जागती, तीव्रता और उत्कटता से जिन्दगी को जीती, भोगती, लहू-लुहान होती दुनिया को अपनी कहानियों का विषय बनाया । वे काल में ही नहीं स्पेस में सन्तरण करते पात्रों की बहुआयामी कथा कहती है - पूरे मानवीय लगाव, सरोकार,

---

[64] राजी सेठ- औरत की कहानी, सुधा अरोड़ा, लचक और समन्वय की ताक, पृ.97

विश्वसनीयता के साथ, इन पात्रों में भी स्वभावतः उनकी नजर नारी-जीवन से सम्बद्ध पक्षों और प्रश्नों पर ज़्यादा टिकती है ।"[65] इनकी कहानियाँ पाठक के मर्मस्थल को छूती हुई, उसकी चेतना को झकझोरती है ।

2.2.1.12 मणिका मोहिनी

आज के बदलते हुए समाज में स्त्रियों का कार्यक्षेत्र विस्तृत हो गया है साथ ही उनके शोषण की नयी-नयी स्थितियाँ उत्पन्न होती जा रही हैं । इसलिए उन्हें अधिक बोल्ड़ होने की आवश्यकता है । मणिका मोहिनी की कहानियाँ इसी 'बोल्डनेस' की कहानियाँ हैं । 'खत्म होने के बाद' (1972ई.), अभी तलाश जारी है (1976ई.), स्वप्नदंश (1978ई.), पारु ने कहा था (1979ई.), अपना-अपना सच (1982ई.), ढाई आखर प्रेम का (1983ई.), अन्वेषी (1986ई) उनकी कहानियों में 'बोल्डनेस' के बारे में धनंजय वर्मा ने लिखा है - "कुछ कथा-लेखिकाओं की तरह बोल्डनेस मणिका में भी है, लेकिन फर्क सिर्फ इतना है कि जहाँ औसतन बोल्डनेस का मतलब सिर्फ भाषा और अन्दाज़ तक सीमित होकर रह गया है, वहाँ मणिका ने अपने एप्रोच और एटीट्यूड, में भी बोल्डनेस दिखाई है । उनमें एक हद तक मानसिक प्रौढ़ता भी है और उनकी बोल्डनेस भावुकता का विलोम ही है । उनमें एक किस्म का सीधापन और सन्तुलन है - उसके साथ ही बेबाकी और बेलाग अभिव्यक्ति ।"[66] इनकी नारी पात्रों की 'बोल्डनेस' पति के साथ अविश्वास, ऊब, झँझलाहट और एकरसता की जिन्दगी बिताने की नियति को नकारने, परपुरुषों की प्राप्ति के लिए भटकने; पत्नी नहीं दोस्त बनकर जीने; शारीरिक संबन्धों से विरक्त होने, नयी-नयी दोस्तियाँ करने, अनेक

---

[65] मंजुल भगत- अंतिम बयान, भूमिका से

[66] मणिका मोहिनी- स्वप्न दंश, फ्लैप से

प्रकार से पति को झुठलाने, पति के साथ समान धरातल पर प्रतिष्ठित होने का अहं पालने तथा सभी प्रकार की भावनाओं से मुक्त होकर ठोस धरातल पर व्यावहारिक निर्णय लेने में व्यक्त हुई है । आवश्यकता मात्र बोल्ड होने की नहीं वह पूरी पूँजीवादी व्यवस्था एवं उपभोगवादी दृष्टि को बदलने के लिए प्रयत्नरत है ।

2.2.1.13 प्रतिमा वर्मा

प्रतिमा वर्मा ने अपनी कहानियों में आज की उलझी हुई स्थितियों और उनसे उत्पन्न मानसिक उलझनों को पूरी सच्चाई के साथ व्यक्त किया है । उनके दो कहानी संग्रह है – ‘एक सुबह और (1978ई.), बँधे पावों का सफर (1984ई.) प्रकाशित है । पहले कहानी-संग्रह के आरंभ में कहा है : "पति-पत्नी के बीच आधुनिक जीवन की जटिलताओं से उत्पन्न विक्षोभ, नारी की बेबसी से उत्पन्न समझौतावादी मनोवृत्ति, व्यावसायिकता के कारण संवेदनाओं से रिक्त हुए व्यक्ति का मानसिक दारिद्र्य तथा पूरे समाज में धुन की तरह लग जानेवाली स्वार्थपरता आदि को मैंने पर्त-दर-पर्त उधेड़ कर रखने की कोशिश की है ।"[67] यह बात ज़ाहिर है कि उनका रचना संसार व्यापक सामाजिक संदर्भों से जुडा है। विसंगतियों से उभरने के लिए तड़प, बेचैनी और संघर्ष का संकेत इन कहानियों की सार्थक परिणति है ।

2.2.1.14 सुधा अरोडा

इनकी कहानियाँ स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के सीमित अनुभव के दायरे का अतिक्रमण करती है । बगैर तराशे हुए (1968ई.), युद्ध विराम (1977ई.), महानगर की मैथिली (1987ई.)

---

[67] प्रतिमा वर्मा- एक सुबह और, भूमिका से

आदि इनके चर्चित कहानी संग्रह है । कहानियों में ऐसे नारी पात्रों को अंकित किया है, जो प्राचीन मान्यताओं और रूढ़ियों को तोड़कर अपने लिए नया समाज बनाने को बेचैन है । 'दमनचक्र' कहानी में नौकरी करती हुई लड़की के जीवन-संघर्ष का अंकन है । लेखिका ने आज की युवा पीढ़ी की सोच और मनोविज्ञान को तलाशा है । वृद्धों के अकेलेपन की पीड़ा का भी उन्होंने बहुत ही मार्मिक चित्र खींचा है । भ्रष्टाचार के प्रश्न को पूरी गम्भीरता से उठाकर व्यवस्था के बदलाव की दिशा में सोचने के लिए पाठक मजबूर हो जाता है ।

2.2.1.15 सूर्यबाला

समकालीन कथा साहित्य में सूर्यबाला का लेखन अपनी विशिष्ट भूमिका और महत्व रखता है । एक इन्द्रधनुष जुबेदा के नाम (1977ई.), दिशाहीन मैं, थाली भर चाँद (1988ई.), मुंडेर पर (1990ई.), साँझबाती (1995ई.), कात्यायनी संवाद (1996ई.) आदि उनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं । लेखिका आज के जीवन की सच्चाई का पूरा-पूरा साक्षात्कार करना चाहती है । समाज, जीवन, परंपरा, आधुनिकता एवं उनसे जुड़ी समस्याओं को लेखिका एक खुली, मुक्त और नितांत अपनी दृष्टि से देखने की कोशिश करती हैं, उसमें न अंधश्रद्धा है, न एकांकी विद्रोह ।

इनकी कहानियों में सभी वर्गों के स्त्रियों की पीड़ा और उनके घुटते जीवन का चित्रण है । कहानी चाहे वर्गभेद की हो (लाल पलाश), चाहे आज की अंधी दौड़ (रेस) और चाहे रीतते मानवीय संबन्धों (निर्वासित) की या प्रेम के गहरे अहसासों की हर रचना समय की समग्रता में प्रवेश करने की कोशिश करती है । 'निर्वासित' में माता-पिता को नई पीढ़ी ने नहीं, उसके आर्थिक तनावों की मजबूरियों ने निरीह बनाया है । 'व्यभिचार' की नारी अपनी ही द्वंद्वात्मक मानसिकता की शिकार हो गई है और मांसलता के तिलिस्म को तोड़ने की असफल कोशिश कर रही हैं ।

उनकी कहानियाँ सच्चाई से मुँह नहीं मोड़ती, उसे 'फेस' करती हैं । वे वक्त की चिंतन धारा से कटी नहीं हैं, यही इनकी जीवनगत प्रामाणिकता है ।

2.2.1.16 मेहरुन्निसा परवेज़

स्वतंत्र लेखन के साथ-साथ सामाजिक कार्यों में गहरी रुचि रखने वाली चर्चित एवं प्रतिष्ठित लेखिका । आदम और हव्वा (1972ई.), टहनियों पर धूप (1977ई.), फालगुनी (1978ई.), गलत पुरुष (1978ई.), अन्तिम चढ़ाई (1982ई.), अम्मा (1997ई.), समर (1999ई.), आदि इनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह है। महानगरों में खोलियों में रहने वाली स्त्रियों का दुःख-दर्द, बेमेल विवाह की त्रासदी, महानगरीय मध्यवर्गीय नारियों की घुटन, तलाकशुदा औरतों की त्रासदी, वर्तमान सामाजिक ढाँचे से मुक्ति चाहनेवाली नारी की छटपटाहट आदि अनेक मनःस्थितियाँ देखी जा सकती है।

आम नारी-जीवन की त्रासदियों को सहज ही कहानी का रूप देने में कुशल है मेहरुन्निसा परवेज़। 'सोने का बेसर' संग्रह की कहानियाँ नारी की अस्मिता की सहज पहचान है, जो हर वर्ग के पाठकों को झकझोरने के साथ-साथ वैचारिक दिशा भी देती है । वे हिन्दी की उन विरल कथा लेखिकाओं में हैं जिन्होंने अपनी संवेदनशीलता के बल पर अपनी रचनाओं में मानवीय पीड़ा को गहराई से उकेरा है। उनकी कहानियों में पीड़ित व शोषित नारी वर्ग की जीवन यथार्थ की तस्वीर देखने को मिलती है। वे अपनी पैनी दृष्टि से समाज के प्रत्येक वर्ग की समस्याओं, विसंगतियों तथा आधुनिक जीवन की विद्रूपताओं का मार्मिक चित्रण भी करती है । उनकी कहानियाँ आदिवासियों के अभावग्रस्त जीवन, उनके अनवरत शोषण तथा उनके पिछड़ेपन के दस्तावेज़ के रूप में हमारे समक्ष आती है।

2.2.1.17 इन्दु बाली

नारी के स्वतंत्र अस्तित्व का अहसास कराने वाली लेखिका है। टूटती जुड़ती (1981ई.), बिना छत का मकान (1983ई.), अंधेरे की लहर (1985ई.), बिखरती आकृतियाँ (1985ई.), मेरी तीन मौतें (1991ई.), धरातल (1992ई.), चुभन (1993ई.), मैं खरगोश होना चाहती हूँ (1995ई.), पाँचवाँ युग (1997ई.) आदि इनके कई संग्रह प्रकाशित हैं। इनकी कहानियों में नौकरीपेशा नारियों के स्वतंत्र अस्तित्व की प्रतिष्ठा के मार्ग में आने वाली समस्याओं को यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया है।

2.2.1.18 मालती जोशी

प्रख्यात लेखिका मालती जोशी के प्रकाशित कहानी संग्रह है - मध्यान्तर (1977ई.), पटाक्षेप (1978ई.), पराजय (1979), एक घर सपनों का (1985ई.), विश्वास गाथा, शाषिथ शैशव तथा अन्य कहानियाँ (1996ई.), पिया पीर न जानी (1999ई.), औरत एक रात है (2001ई.) आदि। इनकी विशेषता आधुनिकता के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण है कहानीकार ने नये परिवर्तनों को युग-धर्म के रूप में स्वीकार करते हुए प्राचीन मूल्यों से उनकी संगति बिठाने का प्रयत्न किया है। इनको समकालीन समाज में नारी की परतंत्रता और विवशता का गहरा अहसास है।

इनकी कहानियों में परिवार की आवश्यकताओं के लिए अपने निजी सुख की बलि देने वाली बेटियाँ है और सामाजिक बन्धनों को तोड़कर अपने स्वाभिमान की रक्षा करनेवाली नई पीढ़ी की लड़कियाँ है। वह समकालीन नारी की नियति से संतुष्ट नहीं है। वह अनुभव करती है कि आर्थिक स्वतंत्रता से नारी की पीड़ा का अन्त नहीं हुआ है। इनको लगता है कि आज की नारी पहले से भी ज़्यादा असहाय हो गई है। वर्तमान नारी-मुक्ति आन्दोलन की दिशा से लेखिका कतई

सन्तुष्ट नहीं है, क्योंकि वह सोलहवीं सदी की नारी से भी ज़्यादा शोषित है। उनकी कहानियों में ऐसी नारियों का निरूपण है ,जो सचमुच हमारे परिवार, समाज और देश की स्त्री का प्रतिबिंब है। 'उसने नहीं कहा' कहानी में बुढ़ापे की त्रासदी को दर्शाया गया है ।

2.2.1.19 कृष्णा अग्निहोत्री

इनकी कहानियों में वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के भीतर सभी स्तरों पर पिसती और प्रवंचित होती नारी की पीडा के विरुद्ध गहरे क्षोभ और विद्रोह का स्वर मुखरित हैं। टीन के घेरे (1970ई.), यानी बनारसी रंग बा (1983ई.), जिन्दा आदमी (1968ई.), जै सियाराम (1993ई.), सर्पदंश (1997ई.), अपने-अपने कुरुक्षेत्र (2001ई.), यह क्या जगह है दोस्तों (2007ई.) आदि इनके प्रकाशित कहानी संग्रह है। लेखन के बारे में उनका कहना है "जो स्थिति, नीति, मूल्य, विचार, आचार-व्यवहार, मनुष्यता का विघटन कर सामाजिकता और राष्ट्रीयता के लिए अवरुद्धता उत्पन्न करती है, उसे मेरी संवेदनशीलता पकड़ लेती है।" इनकी कहानियाँ मूलतः अनुभव-प्रसूत है।

2.2.1.20 चन्द्रकान्ता

लेखिका लेखन को इनसानी जीवन की शर्त मानती है। अपने अनुभव वृत्त में आये समय-सत्य का लेखन में प्रस्तुत करके पाठकों से संवाद करती हैं। सलाखों के पीछे (1975ई.), गलत लोगों के बीच (1984ई.), पोशनूल की वापसी (1988ई.), दहलीज पर न्याय (1989ई.) ओ सोन किसरी (1991ई.), कोठे पर कागा (1993ई.), सूरज उगने तक (1994ई.), काली बर्फ (1996ई.), बदलने हालात में (2002ई.), तैंती बाई (2006ई.), रात में सागर (2007ई.), अलकटराज देका? (2013ई.) आदि इनके प्रकाशित कहानी संग्रह है।

चन्द्रकान्ता प्रगतिशील चेतना की लेखिका है। मनुष्यता विरोधी तत्वों का प्रखर प्रतिरोध इनकी कहानियों का मूल स्वर है। उन्होंने आज के जीवन की बहुविध विडंबनाओं को सामने लाकर मनुष्य के निरन्तर बौने, संकीर्ण एवं स्वार्थी होते जाने की सच्ची तस्वीर पेश की है। इनकी कहानियों में पुरुष वर्चस्व के दबाव में घुटती-पिसती स्त्री की मजबूरियाँ हैं। न्याय के लिए संघर्षरत आम आदमी की बेचैनी है। वृद्धों के जीवन का सूनापन है और मशीनी जिन्दगी के नीचे दबे मनुष्य भी है। वे अपने बारे में कहती हैं "बेहतर जीवन की कामना और उसके लिए रास्ते तलाशना ही मेरा सरोकार है। मैं मानती हूँ कि लेखक बनना हमारे हाथ में नहीं है, पर लेखकीय दायित्व निभाना हमारी जिम्मेदारी है।"[68] इसी दायित्व को निभाने के लिए वह रचना के ज़रिए प्रयत्नरत है। अधिकांश कहानियाँ आमानवीयकरण, आतंक और मूल्यखिन्नता के उभार से जन्मी है। लेखिका स्त्री अस्मिता के प्रश्नों को पारिवारिक, सामाजिक परिप्रेक्ष्य में शिद्दत से उठाती है और स्वतन्त्र चेता स्त्री के पक्ष में खड़ी दिखाई देती है।

'अलकटराज देखा?' कहानी में, आज की चेतना संपन्न स्त्री, पुरुष वर्चस्व का दम्भ और रूढ़ नैतिकता की कैद को अपनी नियति मानने से इनकार करती है। नायिका उम्रकैद की यातना से छुटकारा पाने के लिए वह न केवल आवाज़ उठाती है, बल्कि उससे मुक्त होने के लिए छोटे-बड़े संघर्षों से गुज़रती अपनी आकांक्षा और स्वप्नों को पूरा करने की कोशिश करती है। 'पिंजरे में हवा', 'पीर पर्वत', 'गुम चोट', 'गुच्छा भर काले केश' आदि कहानियाँ इसी मुद्दे को ली हुई हैं। युगीन यथार्थ के विद्रूपों को चित्रित करके मनुष्य के संवेदन शून्य होने से पहले, उसमें थोड़ी मनुष्यता बची रहे, इसी उम्मीद का रचनात्मक प्रयास है, उनकी कहानियाँ।

---

[68] चन्द्रकान्ता- सूरज उगने तक, भूमिका से

2.2.1.21 कुसुम चतुर्वेदी

'तीसरा यात्री' (1997ई.), आँगन में उगी पौध (2000ई.) इनके कहानी-संग्रह हैं। इन कहानियों में संक्रमणशील जीवन की विषम स्थितियों के बीच नारी का दुःख-दर्द साकार हो उठता है। कहानी में उसकी जो छवि उभरती है, वह मन की जो पर्तें खोलती है वह पाठक को गहरे जाकर स्पर्श करती है। इनकी नारी न तो खुलकर विद्रोह करती है, न चुपचाप सब कुछ स्वीकार कर लेती है। वह भीतर ही भीतर अनबुझी चिंगारी की तरह सुलगती रहती है। इस दायरे से बाहर आधुनिक जीवन की अन्य विसंगतियों को भी लेखिका ने अपनी कहानियों में उजागर किया है।

2.2.1.22 मैत्रेयी पुष्पा

स्त्री-विचार को प्रमुखता से रेखांकित करने वाली यह कथा शिल्पी, अपने पहले ही कहानी संग्रह से चर्चा में आ गई थी। 'चिन्हार' (1991ई.), ललमनियाँ (1996ई.), गोमा हँसती है (1998ई.) ये तीन कहानी-संग्रह प्रकाशित हैं। मैत्रेयी की कहानियों में समकालीन जीवन-यथार्थ के विविध परिदृश्य उभरते हैं। शहरी मध्य-वर्ग के सीमित कथा संसार में लेखिका की कहानियाँ उन लोगों को लेकर आई हैं जिन्हें आज समाजशास्त्री 'हाशिए के लोग' कहते हैं। वे वे औरत को लेकर बनाई गई शील और नैतिकता पर पुनर्विचार करती है। इसमें नारी की नई नैतिकता को रेखांकित किया गया है। 'चिन्हार की सरजू', 'फैसला की वसुमती', 'सिस्टर' की डोरोथी, 'सेंघ' की कलावती, 'अब फूल नहीं खिलते' की झरना, 'ललमनियाँ' की मोहरो, 'गोमा हँसती है' की गोमा सभी हमें अपनी तेजस्विता से, कोई अपनी अन्तरात्मा की निर्मलता और पवित्रता से, कोई पीड़ा को भीतर ही भीतर पी जाने वाली सहनशीलता से, सहजता और ममता से, कोई अपने

अदम्य साहस, जिजीविषा और विवेक से पाठकों को प्रभावित करती है। 'आवारा न बन' की बॉक्सर लड़की का फूट पड़ा गुस्सा हो या, 'संबन्ध' की गौरी हो या 'गुनाहगार' की बहू, 'आरक्षित' की साधना हो या 'मैंने महाभारत देखा था' की ब्रजेश, मैत्रेयी समाज के हर हिस्से की स्त्री के सच का खुलासा कहानी में करते हुए एक जागरण अभियान ही चला रही है।

स्त्री -विमर्श की मूल सैद्धांतिक अवधारणा के बारे में उनका अपना विचारहै "मेरी अवधारणा सबसे पहले पुरुषवादी दृष्टिकोण का निषेध करती है । स्त्री, पुरुष के लिए एक सजावट है,देह है, वस्तु है। उसके अहं को संतुष्ट करने का साधन है। उसके ज्वार को समेटने का ज़रिया है । ....इस सबके बीच एक स्त्री क्या सोचती है, यह किसी ने नहीं पूछा....चाहे जितनी बड़ी हो जाए, उसमें बुद्धि होती है, यह मानने को समाज तैयार ही नहीं। मेरे लिए स्त्री-विमर्श का अर्थ स्त्री की स्वतंत्रता इच्छा और अस्मिता है । "[69] इस प्रकार स्त्री-स्वतंत्रता से जुड़े मुद्दों को अपनी रचनाओं में इतनी रचनात्मक शक्ति के साथ प्रस्तुत किया गया है कि वह स्त्री-विमर्श से कतराकर निकल नहीं सकती।

2.2.1.23 नमिता सिंह

नमिता सिंह संक्रमणशील समाज से जुड़े प्रश्नों और चुनौतियों को देखने-परखनेवाली कहानी लेखिका है। नमिता सिंह के खुले आकाश के नीचे (1978ई.), राजा का चौक (1982ई.), नील गाय की आँखें (1990ई), जंगल गाथा (1992ई.), निकम्मा लड़का, मिशान जंगल और गिनीपिग (2007ई.) आदि कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी कहानियों में समकालीन

---

[69] मैत्रेयी पुष्पा- मेरे साक्षात्कार, पृ.13

समाज का पूरा परिदृश्य प्रतिबिम्बित है। उपभोक्तावाद के दबाव से मानवीय संवेदनाओं का छीनना, बदलते आर्थिक समीकरण, साम्प्रदायिकता की नई शक्ल, जातिगत संकीर्णता, निम्न और शोषित वर्ग में आई नई जागृति और उनके विद्रोह, नारी उत्पीडन ये सभी स्थितियाँ इनकी कहानियों में देख सकते हैं।

एक दृढ़ विवेकनिष्ठ रचनात्मक प्रतिरोध का स्वर इनकी कहानियों में सर्वत्र विद्यमान है।

2.2.1.24 उषाकिरन खान

इनकी कहानियाँ मानवीयता की तलाश की कहानियाँ हैं। विवश विक्रमादित्य, दूबधान, गीली पाँक (1995ई.), कास-वन (1998ई.), जलधार (2002ई.) आदि इनके प्रकाशित कहानी-संग्रह हैं। इनकी कहानियों के नारी-पात्र विशेष आकर्षणीय हैं। हर वर्ग और हर स्तर की नारियाँ इसमें मौजूद है। इनमें आत्मविश्वास, मानवीयता, और विपरीत स्थितियों में संघर्ष की दृढ़ता और क्षमता है। ये आधुनिकता के दबाव से हताश नहीं होते बल्कि पुरुष वर्चस्व वाले क्रूर समाज से जूझने का साहस रखते हैं। इनके शब्दों में नारियाँ जलकुंभियाँ हैं। जब इन्द्र वर्षा नहीं देता, सूर्य प्रचण्ड हो उठता है, वरुण निष्प्रभावी हो जाता है, और धरती सारे बीज निगल जाती है तब भी जलकुंभियाँ मरती नहीं, अपने अन्दर जल का स्त्रोत छुपाये रहती हैं। घोर अमानवीयता और मूल्यहीनता के इस दौर में इनकी कहानियाँ मनुष्यता के प्रति अटूट आस्था रखनेवाली हैं।

2.2.1.25 कमलकुमार

इनकी कहानियाँ मध्यवर्गीय जीवन की कुरूपताओं और विसंगतियों का अहसास कराने वाली हैं। 'पहचान' (1984ई.), क्रमशः (1996ई.), फिर वही से शुरू (1998ई.), वैलेन्टाइन डे (2002ई.) आदि कहानी संग्रह हैं। इनकी कहानियों में भौतिक सुख-सुविधा की दौड़ में जड़ और

स्वार्थी होता समाज है। इनमें सजग बहु-आयामी जीवन-दृष्टि तथा अपने परिवेश को रचनात्मक अभिव्यक्ति देने के प्रति प्रतिबद्धता है। वे अपने समय की संवेदना को संपूर्णता में समझते हुई अपने विस्तृत होते अनुभवों के अनेक नए स्तरों को वैचारिक सामथ्र्य के साथ खोलती हैं ।

2.2.1.26 नासिरा शर्मा

नासिरा शर्मा, देश-काल, धर्म, जाति, सम्प्रदाय के भेदों से ऊपर उठकर एक दिल और एक दिमाग वाले इन्सान के दुःख-दर्द को आकार देनेवाली कहानीकार है। शामी कागज़ पत्थर गली (1986ई.), संगसार (1993ई.), इब्ने मरियम (1994ई.), सबीना के चालीस चोर (1997ई.), खुदा की वापसी (1998ई.) इन्सानी नस्ल (2001ई.), दूसरा ताजमहल (2992ई.), बुतखाना (2002ई.), गूँगा आसमान आदि प्रकाशित कहानी-संग्रह हैं। इनकी कहानियों में रूढ़ियों में जकड़ी किन्तु आधुनिक जीवन की दौड में आगे बढ़ने के लिए बेचैन पिछ्ड़े वर्ग की मुसलमान जनता, तानाशाही के विरुद्ध ईरानी जनता आदि का संघर्ष मौजूद है। दूसरे विश्वयुद्ध के दौर में बेहद तनाव की जिन्दगी जीने वाले यहूदी हैं। आधुनिक सुविधाओं से वंचित हिन्दुस्तान की गरीब जनता है। पुरुष प्रधान समाज में, हदीस, शरीयत और कुरान में औरतों को दिए गए अधिकारों की जानकारी से लैस अपने हक के लिए संघर्ष करती मुस्लिम औरतें हैं। इनकी कहानियाँ आज की जिन्दगी को समग्रता में उपस्थित करने की कोशिश हैं।

सबीना, गुल्लो, सायरा, चम्पा, मुन्नी जैसी किरदारों के ज़रिए नासिरा खुद के अनुभवों को दर्शाती हैं। उनका प्रसिद्ध कहानी संग्रह 'खुदा की वापसी' ऐसे सवालों की ओर इशारा करता है जो स्त्री को उपलब्ध है उसे भूलकर वे उन मुद्दों के लिए क्यों लड़ती है जिन्हें धर्म, कानून, समाज, परिवार ने स्त्री को नहीं दिया है। इसप्रकार उनकी कहानियाँ उन बुनियादी अधिकारों की माँग

करती नज़र आती है जो वास्तव में महिलाओं को मिले हुए हैं, मगर पुरुष प्रधान समाज के धर्म-पण्डित मौलवी उनके इन मौलिक अधिकारों को भी देने के विरुद्ध है।

2.2.1.27 ऋता शुक्ल

ऋता शुक्ल ने अपनी कहानियों के ज़रिए मानवीय रिश्तों के बीच स्नेह की बूँद बरसाने की कोशिश की है। क्रौंच वध तथा अन्य कहानियाँ (1985ई.), दंश (1985ई.), शेष गाथा (1993ई.), कनिष्ठा उँगली का पाप (1994ई.), कासौं कहाँ मैं दरदिय (1997ई.), मानुष तन (1999ई.) प्रकाशित हो चुके हैं। इन्होंने दुर्बलों, अपहिजों तथा मासूम लोगों को लूटने के लिए किए जाने वाले छल-छद्म के प्रति लेखनी चलाकर उन्हें सजग बनाया है। इन्होंने हिन्दी-कहानी के क्षेत्र में अपनी अलग-पहचान कायम की हैं।

2.2.1.28 गीताञ्जलि श्री

अनुगूँज (1995ई.) और वैराग्य (1999ई.) इनके दो कहानी संग्रह हैं। 'अनुगूँज' की कहानियाँ मुख्यतः नारी-चेतना की कहानियाँ हैं। इनकी कहानियों में अपने जीवन को अपने ढ़ंग से जीने वाले नारी पात्र भी हैं और मध्यवर्गीय परिवार में पुरुष वर्चस्व के चलते अपनी दोयम दर्ज की स्थिति को नियति मानकर चुपचाप रहने वाली नारी पात्र भी हैं। नारी के चारों और पुरुष प्रधान समाज ने रूढ़ियों की जो दीवारें खड़ी कर दी है जो उसे नारी के अलावा और कुछ भी स्वीकार करने के तत्पर नहीं है। इनकी कहानियाँ नारी की प्रायः स्थितियों का बयान है। इनकी कहानियों में नारियाँ, हालात का प्रतिरोध करती भी दिखाई देती है। इस प्रक्रिया में लेखिका ने नारी-मनोविज्ञान की बारीकियों को ध्यान से उकेरा है। इनकी नज़र आधुनिक दाम्पत्य जीवन के पारस्परिक तनावों पर भी है। इनकी 'बेलपत्र' कहानी अंतर्धार्मिक विवाह के बाद व्यक्ति को निहत्था करनेवाली रूढ़ सामाजिकता पर चोट करती है और 'कसक' कहानी मानवीय होने की किसी भी सैद्धांतिक अनिवार्यता को नकारती है।

2.2.1.29 लवलीन

लेखिका ख्यातिलब्ध पत्रकार और जनवादी महिला समिति से सम्बद्ध एक सक्रिय कार्यकर्ती भी है। सामान्य जन के प्रति उनकी प्रतिबद्धता प्रकट है। उनके दो कहानी संग्रह है – 'सलिल सागर कमीशन आया बनाम समाज सेवा जारी है' (1997ई.), और चक्रवात (1999ई.)। इन्होंने सरिया जनजाति पर शोध किया है। उन्होंने समाज के सभी वर्गों को नजदीक-से देखा है और उनकी भीतरी सच्चाइयों को पहचाना है। उनका मानना है कि आम आदमी की भावनाओं को समझे बिना, ऊपर से लादी हुई कोई भी योजना सफल नहीं हो सकती। नारी-जीवन की विडम्बनाओं को लेकर उन्होंने कई कहानियाँ लिखी हैं। उनके अनुसार आज की शिक्षित नारी बोल्ड अवश्य हुई है किन्तु अब भी वह असुरक्षित है। लेखिका समाज को बेहतर बनाने के लिए संघर्ष में विश्वास करती हैं और इसके लिए आक्रामक तेवर का होना जरूरी है। लेकिन मनुष्य की मौलिक संवेदनशील अन्तश्चेतना को सुरक्षित रखना अनिवार्य है।

2.2.1.30 मुक्ता

पलाश बन के घुँघरू (1991ई.), आधा कोस (1994ई.), इस घर उस घर (1999ई.) आदि प्रकाशित कहानी-संग्रह हैं। कश्मीर का आतंकवाद, समर्पित कलाकार का जीवन, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, राजनीतिक दाव पेंच और छल-छद्म, अपनी धरती और अपने देश के लिए प्रेम आदि अनेक विषयों को इन्होंने अपनी कहानियों का कथ्य बनाया है। ज़िन्दगी को देखने का इनका दृष्टिकोण सकारात्मक और संतुलित है। क्रूरता, शोषण, उत्पीड़न, अन्याय, अत्याचार, छद्म और अमानवीयता का इन्होंने प्रत्येक स्थिति में विरोध किया है।

2.2.1.31 अलका सरावगी

इनके दो कहानी-संग्रह प्रकाशित हैं – 'कहानी की तलाश में' (1995ई.) और 'दूसरी कहानी' । इन कहानियों में कलकत्ता महानगर के ऐसे परिवारों को केन्द्र में रखा गया है, जिनमें सामन्तीय मूल्य आज भी सुरक्षित है । इन परिवारों में दो तरह की नारियाँ हैं । कुछ तो सामन्तीय मूल्यों से समझौता करने के लिए मजबूर है । कुछ जो मूल्यों को चुनौती देती हैं । लेखिका का मुख्य सरोकार परिवार के सामन्तीय ढाँचे के भीतर घुटती नारी की पीड़ा ही है ।

इनकी कहानियाँ प्रेम, स्वतंत्रता, अस्मिता जैसे शब्दों के अर्थ तलाशती है । उनके अनुसार स्वतंत्रता और प्रेम व्यक्ति के लिए सचमुच मूल्यवान है जो दूसरों को भी दिलवाने की कोशिश करनी चाहिए । 'एक व्रत की कथा', 'बीज' आदि कहानियाँ नारी-स्वतंत्रता पर ज़ोर देने वाली हैं। लेखिका के शब्दों में "मुझे अपनी शक्ति को जानने के लिए पुरुष-विरोधी होने की कभी ज़रूरत नहीं हुई । बल्कि मैंने यह जाना कि एक स्वस्थ, विकसित, संवेदनवाले समाज में ही स्त्री पूरे आत्मविश्वास, स्वतंत्रता और सम्मान के साथ जी सकती है । इसलिए ज़रूरत उस समाज को ही बनाने की है । "[70] इसप्रकार स्त्री ही नहीं अल्पसंख्यक भी एक स्वस्थ, करुणावान समाज में अपने अधिकारों को पा सकेंगे । ऐसे ही एक समाज को बनाने की दिशा में लेखिका अपनी रचना के ज़रिए काम करती दिखाई पड़ती है ।

2.2.1.32 अरुणा सीतेश

'वही सपने', 'कोई एक अधूरापन', 'लक्ष्मण रेखा', 'चाँद भी अकेला है', 'छालाँग',

---

[70] अलका सारावगी- कहानी के तलाश में, पृ.8

'तीसरी धरती', 'सूरज', 'कल्लू का कल्लू', 'एक फूल वसंत' आदि इनके प्रकाशित कहानी संग्रह हैं । आठवें दशक में सर्जनात्मक लेखन प्रारंभ करके अरुणा सीतेश ने हिन्दी कथा लेखिकाओं के बीच अपनी विशिष्ट पहचान बनाई । इनकी अधिकांश कहानियाँ नारी-मन की गहन पत्रों में संजोई भावनाओं का चित्रण हैं । जिनमें पारंपरिक परिवार के वृद्ध भी शामिल हैं और आज के जटिल दौर की महिलाएँ भी। गृहिणी और नई रोशनी की चकाचौंध में अपनी पहचान तलाशती संघर्षरत नारियों का भी अंकन है । जीवन-मूल्यों की टकराहट के बीच जूझती और अपना मार्ग स्वयं बनाती नई पीढ़ी की व्यथा-कथा उनकी कहानियों में मौजूद है।

2.2.1.33 मीराकांत

मीराकांत समकालीन रचनाकारों में प्रमुख हैं । 'हाईफन', 'कागज़ी बुर्ज', 'गली दुल्हनवाली' (2009ई.) आदि उनके प्रकाशित कहानी संग्रह है । 'धामपुर' कहानी की 'नित्या' अपना निर्णय खुद लेने में सक्षम नज़र आती है । इनकी कथा जीवन-सत्य की खोज करती हैं। इन्होंने कहानी को सार्वजनिक संवाद में बदल दिया है। जीवनानुभव का प्रयोग लेखिका कथा में पूरी सावधानी और कुशलता से इस तरह करती हैं कि उपलब्ध यथार्थ के बीच से उपेक्षित यथार्थ का मार्ग बनने की संभावना बनी रहे और पात्र हिम्मत भी न हारे । इनकी 'कागज़ी बुर्जु' की कहानियाँ उन प्राचीरों एवं बुर्जों को चुनौती देती हैं जो चाहे स्त्री को महिमामंडित करनेवाली खोखली परम्पराएँ हो या जीवन-संबन्धों की जीर्णशीर्ण दन्त कथाएँ । इनकी कहानियाँ स्त्री के जीवन से जुड़े ज्वलंत प्रश्नों पर रचनात्मक बहस छिडने का प्रयास हैं ।

2.2.1.34 क्षमा शर्मा

क्षमा शर्मा प्रसिद्ध लेखिका और पत्रकार हैं । इनका लेखन का दायरा बहुत विस्तृत रहा है । लेखिका प्रचलित फैशनों की रौब में नहीं आती और अपनी अलग लीक बनाती हैं । इस

आत्मविश्वास के पीछे उसकी अपनी समझ और भरोसा है। 'काला कानून', 'कसबे की लड़की', 'घर-घर तथा अन्य कहानियाँ', 'थैंक्यू सद्दाम हुसैन', 'लड़की जो देखती पलटकर' आदि उनके कहानी संग्रह हैं। लेखिका संक्रमण की पीड़ा को समझती है, पर उसके आगे घुटने नहीं टेकती, लेखिका की इस रचनात्मक ताप का एक परिणाम ऐसे स्त्री पात्र हैं जो स्वतंत्रता के साथ जीने की उमंग से भरपूर हैं। वे तथाकथित सामाजिक मर्यादाओं से टकराती है और अपना रास्ता खुद बनाती है। विफलताएँ उनके नारी पात्रों को परास्त भले कर दे, पर तोड़ नहीं पाती। लेखिका ने ऐसे कुछ पुरुष पात्रों का सृजन भी किया है जो परम्परा को तोड़कर नये रास्तों पर चलने की हिम्मत दिखाते हैं। उपभोक्तावाद से गहरी वितृष्णा और पर्यावरण से परिवार जैसा प्रेम उनकी कथा-लेखन को विशिष्ट बनाते हैं। यहाँ पेड़-पौधे भी जीवित पात्र बन जाते हैं। इनके अस्तित्व की लड़ाई में मनुष्य सहभागी बनते नज़र आते हैं।

2.2.1.35 शरद सिंह

'तिली तिली आग' इनका कहानी संग्रह है । स्त्री जीन का सूक्ष्म विश्लेषण इनके कथानकों की विशेषता है। इनकी कहानियों के नारी पात्र हर वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं । स्त्री के घेरे में फंसे एवं उसे तोड़कर भाग निकलने वाला रूप भी कहानियों में मौजूद है। 'आठ गुना आठ' का सुख की रामरती हो या 'वे पाँच लड़कियाँ और सपने' की लड़कियाँ इसमें रचनाकार बाहरी दुनिया के प्रति उसकी अभिलाषाओं को प्रस्तुत करती है। 'किस किस को कटवाओगे केशू' कहानी इसलिए प्रासंगिक है कि यहाँ स्त्री की सहानुभूति, शोषित स्त्री के प्रति जागती है। 'वे हथियारों वाले' की चाची हो या 'राग-पुराण' का बसेसर, 'एक अदद प्यार के लिए....' की नायिका हो या 'शाम को देखूँगा' की वेदवती, 'बोलो बुआ, बोलों की' मुकु हो या 'गीला तैलिया' की ज्ञानती, ये कहानियाँ

कहीं स्त्री की बेबसी को उजागर करती है तो कही उससे बाहर निकल अपने लिए ज़मीन बनाती नई स्त्री को सामने लाती है।

स्त्रियों की आत्मरक्षा पर ज़ोर देते हुए लेखिका का कहना है "ततैया को अगर छेड़ा जाए तो वह काटे बिना नहीं छोडती है। उसका डंक इतनी भीषण पीड़ा देता है कि इन्सान घंटों हाय-हाय करता घूमता है। इसलिए लोग ततैया को छेड़ने से डरते हैं। यदि अबला मानी जाने वाली औरत भी ततैया की तरह आत्मरक्षा में पलटवार करने योग्य हो जाए तो फिर किसकी मजाल है कि राह चलती औरत या लड़की को कोई छेड़ सके या उसकी अस्मत पर डाका डाल सके।"[71] इस प्रकार औरतों एवं लड़कियों को आत्मरक्षा में सक्षम बनाने का एक दमदार अभियान है उनकी कहानियाँ।

2.2.1.36 कविता

मेरे नाप के कपडे (2006ई.) और उलटबाँसी (2008ई.) उनके कहानी-संग्रह हैं। इनकी कहानियाँ युवा-स्त्री की मानसिकता की पड़ताल करती हैं। सहज लेकिन अलग भावभूमि पर खड़ी कथावस्तु के कारण अपने समकालीनों में से अलग पहचान रखती है। पुरुष मित्रों के साथ भावनात्मक जुड़ाव, अपनी तरह से संघर्ष करते हुए युवा मित्रों के साथ फ्लैट शेयर करती युवतियों का जीवन जिसे आज की भाषा में लिविंग इन कहते हैं इसका अंकन इनकी कहानियों में हैं। ये लड़कियाँ नये एडवेंचरों और पुराने संस्कारों के तनावों में प्यार और मित्रता की परिभाषा को बदलती हुई दिखाई देती है। यहाँ अपनी नियति पर रोती बिसूरती भारतीय स्त्री कही नहीं है। आर्थिक, भावनात्मक, सामाजिक और नैतिक स्तरों पर संघर्ष करती ऐसी नायिका है - जिसे जीवन अपनी तरह और अपनी शर्तों पर जीना है - सारी बाधाओं और अवरोधों के बीच। इसी वजह से लेखिका अपनी समकालीन कहानीकारों में से अलग है। इनकी कहानियों को पढ़ने का मतलब है

---

[71] शरद सिंह- औरत तीन तस्वीरें, पृ.77

नयी लड़की को जानना। तेज़ रफ्तार वाले समय और बदलते परिवेश में नये स्त्री सत्यों का अन्वेषण करती ये कहानियाँ स्त्री-मुक्ति का समानान्तर संसार बुनती है। इनका मानना है कि वर्गगत, वर्णगत, धर्मगत और नस्लगत विडम्बनाओं की भुक्त भोगी होने के बावजूद विश्व की प्रायः सभी स्त्रियों में एक अव्यक्त सा बहनापा पलता है। इनकी कहानियाँ पुरानी रूढ़ियों को चुनौती देती हुई, आधुनिक युगबोध का एक नया समाजशास्त्र रचती है।

2.2.1.37 उर्मिला शिरीष

'वे कौन थे', 'मुआवजा', 'कंचुली', 'सहमा हुआ काल', 'शहर में अकेली', 'निर्वासन' आदि इनके कहानी-संग्रह हैं। इनकी कहानियों में स्त्री और वृद्धों के प्रति गहरी संवेदना और जागरूकता मौजूद है। घर के हाशिए पर पड़े लोगों के मन की व्यथा को व्यक्त करने में लेखिका सिद्धहस्त है। वे स्त्रियों की आज़ादी की पक्षधर है। इनकी कहानियों में अधिकतर स्त्रियाँ अपनी राह तलाशते बार-बार समाज की रूढ़ियाँ लाँघती है। समाज का बदलता हुआ चेहरा, आज की समस्याओं का विश्लेषण नयी पीढ़ी का व्यक्तित्व आदि इनकी कहानियों में साफ नज़र आते हैं। इनकी कहानियाँ अपने समय में प्रासंगिक हैं। उनकी कहानियों में समाज के विकास की चिंता हैं।

2.2.1.38 दीपक शर्मा

'हिंसाभास', 'दुर्ग-भेद', 'परख-काल', 'बवंडर', 'रणमार्ग', 'उत्तरजीवी', 'आतिशी शीशा', 'आपद धर्म', 'चाबुक सवार', 'रथ-क्षोभ', 'दूसरे दौर में', 'घोड़ा एक पैर' आदि इनके प्रकाशित कहानी-संग्रह हैं। 'स्त्री-विमर्श' को 'देह विमर्श' के दायरे में न समेट कर स्त्री प्रश्नों को 'स्त्री-मुक्ति' और 'सापेक्ष-स्वतंत्रता' प्रदान करने का दायित्व इनकी कहानियों ने खूब निभाया है। निम्न मध्यवर्गीय विषम-जीवन, उत्तर आधुनिक समस्याएँ, शोषण के नित नवीन होते षड्यन्त्रों और कठिन परिस्थितियों के प्रति संघर्ष आदि लेखिका की कहानियों के विषय हैं। बीमार बूढ़ों की

असहाय दशा, लौह भट्ठी में काम करनेवाले श्रमिकों की जिजीविषा, जातिवाद आदि समकालीन प्रश्नों से उपजती कहानियाँ, आम जन जीवन और उत्तर आधुनिक समय के संक्रमण को बखूबी व्यक्त करती है।

उपर्युक्त कहानीकारों के अतिरिक्त ज्योत्सना मिलन, अर्चना शर्मा, अचला शर्मा, अचला नागर, सुनीता जैन, कुसुम अंसल, मधु काँकरिया, अलका पाठक, आशारानी, मीरा सीकरी, पंखुरी सिन्हा, मनीषा कुलश्रेष्ठ, नीलाक्षी सिंह, पैमीला मानसी, कमल कपूर, लता शर्मा, सरला अग्रवाल, नीलम शंकर, जया जादवानी आदि अन्य लेखिकाएँ भी है जो अपनी कहानियों के ज़रिए स्त्री की स्वतंत्र अस्मिता को तलाशती कहानी-रचना के क्षेत्र में सक्रिय है।

2.2.2 समकालीन मलयालम कहानीकार

मलयालम साहित्य भी स्वयं चेती महिला रचनाकारों से भरपूर है। वे अपने परिवेश के प्रति सचेत रही हैं। स्त्री को अपने स्वत्व की पहचान दिलवाने के लिए वे प्रयत्नरत हैं। स्वतंत्रता आन्दोलन के समय जीवित रही मलयालम की बालामणियम्मा, ललितांबिका अंतर्जनम, के. सरस्वतियम्मा, राजलक्ष्मी आदि लेखिकाएँ अपने समय की समस्याओं के प्रति सचेत थी। इन्होंने ही आगे आनेवाली पीढ़ी को राह दिखाई थी। स्त्री के उद्धार के लिए अपने आवाज़ को बुलन्द करके माधविक्कुट्टी, पी. वत्सला, सारा जोसफ, सारा तोमस, पी.आर. श्यामला, आर. मल्लिका, बी.एम. सुहरा आदि ने अपनी निजी पहचान कायम कर ली है। इनके बाद आयी चन्द्रमती, अषिता, सी.एस. चन्द्रिका, गीता हिरण्यन, श्रीकुमारी रामचन्द्रन, कय्युम्मु, खदीजा मुंमताज़, प्रिया ए.एस, सितारा एस., के.जी. सुधीरा, सिल्विक्कुट्टी, तनूजा एस. भट्टतिरी, टी.पी.

सेबिया, के.आर. मीरा, इन्दुमेनोन, अंबिका, रेखा के, डॉ. सरस्वति शर्मा, निर्मला, पी. उषादेवी, गिरिजा के. मेनन आदि आज कहानी के क्षेत्र में विशिष्ट रूप से सक्रिय है।

2.2.2.1 माधविक्कुट्टी

विश्वप्रसिद्ध कवयित्री एवं मलयालम की प्रमुख कथाकार माधविक्कुट्टी का दूसरा नाम कमलादास है। पुरानी पीढ़ी के समकालीनों में इनकी उपस्थिति एक भिन्न तेवर, ली हुई है। वे अपने समय और आनेवाले समय को लेकर चिंतित है। 'मेरी छोटी कहानियाँ', 'मेरी प्रिय कहानियाँ', 'चेक्केरुन्न पक्षिकल' (देशाडन पक्षी), 'नरिच्चीरुकल परक्कुम्पो' (चमगीदडें उड़ने पर), 'पक्षियुडे मणम' (पक्षी की गंध), 'उन्मक्कथकल', 'माधविक्कुट्टि की कहानियाँ', 'हंस ध्वनि', 'नष्टप्पेट्ट नीलांबरी' आदि उनके कहानी संग्रह हैं। इनकी कहानियाँ सामाजिक समस्याएँ एवं अनीतियों के विरुद्ध अपना विरोध दर्ज करती हैं।

इनकी कहानी 'स्त्री' (1947) मलयालम की पहली लसबियन कहानी मानी जाती है। 'क्या? एक स्त्री दूसरी स्त्री से प्यार नहीं कर सकती?' स्ववर्गानुरागी स्त्री की यह आवाज मलयालम कहानी में गूँजती हुई 60 वर्ष पूरा कर रही है। केवल पन्द्रह साल के बीच जो देखा और अनुभव किया इसके तहत ही उसने इस कहानी की रचना की थी। इनका कहना है "I do not think I am lesbian. I tried to find out. I experiment with everything. I tried to find out if I was a lesbian, if I could respond to a women, I failed. I must speak the truth, I believe we must abandon a thing if it has no moral foundation whether it be a belief, a political system or a religious system." [72]सिर्फ एक स्त्री ही ऐसी लिख सकती है। उनकी

---

[72] उम्मकथकल-मधावीकुट्टी-भूमिका से

कहानियाँ स्त्रीत्व से जुड़ी सारी बातें कहती है। 'स्वातंत्र्यसमर सेनानियुडे मकल' (स्वतंत्रता सेनानी की बेटी), 'मकल' (बेटी), 'पुतिय ओरम्मा' (एक नई माँ), 'सुन्दरियाय मकल' (खूबसूरत बेटी), 'वलकल' (चूड़ियाँ), 'चुवन्न पावाड़ा' (लाल लहंगा), 'हंसध्वनि', कोलाड (शोषित बकरी), नेय पायसम (खीर), स्वतंत्र जीवी आदि कहानियों में स्त्री के कई रूप जैसे बालिका, प्रणयिनी माँ, दादी, विधवा, विरहिणी, कामिनी आदि हमारे आमने सामने अपने सारे दुःखों को साथ लेकर खड़ी है। वे अपनी कहानी में स्त्री स्वत्व के विविध भावों को दर्शाती हैं।

इनकी कहानियों में बिना विश्राम के घर में काम करने के लिए मजबूर स्त्रियाँ है। इनके बारे में कमलादास ने लिखा 'वह मशीन भी खराब हो गयी'। इस तरह स्त्री मन की गहराइयों पर पकड़ उनकी रचना की पूर्णता है। उनका स्त्री पात्र यह स्वीकारती है कि प्रेम की पूर्णता पाने की उनकी प्यास एक सहज सत्य है साथ ही साथ यह भी महसूस करती है कि पुरुष को सिर्फ उसके शरीर से ही लगाव है। वे स्त्री को पुरुषों की गुलाम न होने एवं खुद सोचने और कार्य करने में सक्षम बनने की सलाह देती है।

वृद्धों की दयनीय स्थिति एवं उनके साथ बच्चों का गलत बर्ताव उनकी कुछ श्रेष्ठ कहानियों का विषय बना है जैसे 'रोमक्कुप्पायम' (ऊन की ओढ़नी), 'कीरिप्पोलिंज चकलास' (जरजर चकलास), 'मुत्तश्शी' (दादी), 'मुत्तश्शन' (दादा) आदि। इन कहानियों में जीवन दृष्टियों की भिन्नता, जीवनमूल्यों का अलगाव जो दो पीढ़ियों के बीच खाई बनकर उभरते हैं। वह ईश्वर के नाम पर अत्याचार करते धर्मान्ध व्यक्तियों के षड्यंत्रों पर भी विचार करती है। 'दैवत्ते धिक्करिच्च कुट्टी' (ईश्वर का अनादार करता बच्चा), 'विशुद्ध पशु' (पवित्र गाय), 'विशुद्ध ग्रन्थम्' (पवित्र ग्रन्थ) आदि कहानियाँ धार्मिक कुरीतियों पर वार करती हैं। 'माधवियुडे मकल' (माधवी की बेटी), 'जानू परंज कथा' (कहानी जो जानू ने कही) आदि कहानियाँ गरीबों की दयनीय स्थिति पर लिखी

गयी हैं। 'मृगतृष्णा', 'दृक्साक्षी', 'दैवंकल' (भगवान) आदि उनकी अन्य श्रेष्ठ कहानियाँ हैं । इनकी कहानियों का मूल स्वर व्यंग्य परक एवं आत्मविश्लेषणपरक है ।

2.2.2.2. सारा तोमस

गहरी मानवीय संवेदना के धरातल पर दलित एवं पीडित वर्गों के प्रति आद्र्रता इनकी कहानियों की निजी पहचान है । 'गुणितम् तेट्टिय कणक्कुकल' (हिसाबों की गलत गिनती), 'इणंगात्त मुखंगल' (परिस्थितियों से न मिले-जुले मुँह),'ओट्टप्पेट्टा निमिषंगल' (एकांत पल), 'सारा तोमसिन्टे कथकल' (सारा तोमस की कहानियाँ), ऐन्टे स्त्रीपक्ष कथकल' (मेरी स्त्रीपक्ष कहानियाँ) आदि कहानी संग्रह प्रकाशित है ।

टूटते स्त्री-पुरुष संबन्ध, उसकी आन्तरिक गतिविधियाँ 'तण्णीरपन्तल', 'उयिरत्तेषुन्नेल्प' (पुनर्जीवन), 'रूपान्तरम्' 'स्परशम्', 'निलावुम् निष़लुम' (चाँदनी और परच्छाई), 'यात्रा', 'मुट्टत्तेमुल्ला' (आँगन की जुही) आदि कहानियों में अंकित है । नारी-जीवन को केन्द्र में रखकर लिखी गयी कहानियों के बारे में उनका कहना है "मात्र उसके लिए अनेक सालों से समुदाय द्वारा जतन किए गए अन्धकारमय संकुचित अवस्थाएँ एवं लोहे से भी सख्त वर्जनाएँ, उससे अतिजीवित उसकी सहनशक्ति, स्नेहमय आद्र्रता आदि गुणों के तहत् मेरी कहानी ने संसार में अपनी एक अलग जगह बना ली हैं। "[73] वह अपनी कहानियों में नारियों के स्वतंत्र अस्तित्व की प्रतिष्ठा के मार्ग में आनेवाली समस्याओं को यथार्थ के धरातल पर ला खड़ा करती है ।

2.2.2.3 सारा जोसफ

[73] सारा तोमस- स्त्रीपक्ष कहानियाँ, भूमिका से

स्त्री-पक्ष में खड़े होकर सारा जोसफ पुरुषसत्ता द्वारा निर्मित मिथक एवं धारणाओं की पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता पर ज़ोर देती है। नये जीवनानुभव एवं सूक्ष्म, निरीक्षण से संपन्न है इनकी रचनाएँ । 'मनस्सिले ती मात्रम्' (मात्र मनकी आग), 'अकले अरिके' (दूर एवं पास), 'काडिन्टे संगीतम्' (जंगल की गीत), 'नन्म तिन्मकलुडे वृक्षम(1989), 'ओडुविलत्ते सूर्यकान्ती' (1988), 'पापत्तरा' (पापी चबूतरा), 'निलाव अरियुन्नु' (चाँदनी पहचान रही है), 'पुतुरामायनम्' (नये रामायण) आदि उनके कहानी संग्रह हैं। उनके आलोचनात्मक ग्रन्थ है 'भगवतगीतयुडे अडुक्कलयिल एषुत्तुकारिकल वेविक्कुन्नत' (भगवतगीता की रसोई में लेखिकाएँ पका रही है) और नम्मुडे अडुक्कल तिरिच्चु पिडिक्कुक (हमारी रसोई को वापस लेना है) ।

स्त्री होकर जन्म लेना मेरे लिए गौरव की बात है। (पापत्तरा की भूमिका में) उनके यह ऐलान इस बात को सिद्ध करती है कि वह आज तक समाज में व्याप्त पुरुषवर्चस्ववादी मूल्यों एवं विचारों के खिलाफ है। उनकी प्रसिद्ध कहानी है 'मुडित्तेय्यमुरयुन्नु'। केरल की स्त्री के संबन्ध में कहें तो लंबे बाल पुरुष से स्त्री की भिन्नता को दर्शाते हैं। यह प्रतीक उसकी स्त्रैणसत्ता और विशेष सौंदर्य को रेखांकित करता है। काम, ऊर्जा, स्वातंत्र्य, उर्वरता, स्त्री स्वत्व को दर्शाती आदिरूप ऊर्जा से द्योतित यह प्रतीक स्त्री विमोचन के प्रतीक बन जाते हैं। "आन मेरी की शादी" दहेज और अमीरी के खोखलेपन पर लिखी व्यंग्य कहानी है। "पापत्तरा" बहुत चर्चित कहानी है जिसमें पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री की शोचनीय स्थिति एवं उन स्थितियों को ललकारने की शक्ति जो वर्तमान स्त्री में मौजूद है उस पर ज़ोर दिया गया है।

अपनी सर्जनात्मकता को पहचान न दिलवा जाने की स्थिति में लेखन का एक विस्फोटनात्मक बहिर्गमन ही "ओरो एषुत्तुकारिकलुडे उल्लिलुम" (हर एक लेखिकाओं के भीतर) कहानी का विषय है। 'चावुनिलम' कहानी में स्त्री माँ, भूमि और प्रकृति है। इसमें माँ युद्ध का विरोध करके भूमि की ऊषरता के खिलाफ एवं उर्वरता के लिए आँसू बहाती है।

"पातालप्पड़िकल" (पाताल की सीढ़ियाँ) कहानी में पत्थर को दूध पिलानेवाली स्त्री के चित्र को देखने पर, "आज की माएं पत्थरों को दूध पिलाती है" या अर्थ मिलता है। बार-बार खुदाई करने पर भी पानी न दिख रहे शापायनम्" कहानी की "बावूड़ी" मनुष्य जाति भविष्य में सामना करनेवाली विपत्ति का सूचक है। "अट्टपाडी" कहानी की स्त्री पात्र बलात्कारी की सिर काटती है। "तायकुलम" कहानी में शूर्पणखा का आत्मालाप है। लड़की की "कन्यकात्व" को नष्ट करनेवाला पुरुष खुले आम शरीफ बनकर घूमता है, मगर समाज की हेय दृष्टि का भी सामना स्त्री को ही करना पड़ता है, यही "कन्यकयुडे पुॉल्लगम" (कन्या की पुॉल्लग) कहानी का प्रमेय है। इनकी रचनाएँ सामाजिक अनीतियाँ, पारिस्थितिक संकट एवं स्त्री शोषण के खिलाफ सशक्त प्रतिरोध है।

पुरुष के अत्याचारों को सहती दुःखी एवं पीडित "स्त्रीबिंब" को समाज के लिए आपत्तिजनक करार करती हुई उनका कहना है "महिला लेखन को समाज में स्थिति स्त्री-पुरुष संबन्ध के उच्चनीचत्व को पहचानकर उसे नष्ट करके, समाज को प्रगति की ओर अग्रसर करनेवाले नये स्त्री-पुरुष संबन्ध की सृष्टि करना है । उसे दुनिया को यह समझाना है कि समाज के सभी विषयों पर स्त्री को मान्यता क्या है ? महिला लेखन में प्रकृति और स्त्री, पुरुष के लिए क्या है इस नये बोध की सृष्टि करनी है। उसे समाज में स्थित "पुरुष बिंब" के साथ "स्त्री बिंब" को भी धरायशील करना है। ....तभी महिला लेखन उसको ऐतिहासिक दौत्य को पूरा कर पायेंगी। " समाज में लेखिका वर्ग, वर्ण, वंश, जाति आदि के नाम पर उपेक्षित, दलित, शोषित एवं पीड़ित इनसान के पक्ष में खड़ी होकर लिख रही है। वह वर्चस्ववाद के खिलाफ संघर्ष करती है साथ ही मूल्य एवं मानव जीवन का पुनर्गठन भी करती है।

2.2.2.4 अषिता

"विस्मयचिह्नंगल" (विस्मय चिह्न, 1987), "अपूर्ण विरामंगल" (अपूर्ण विराम, 1993), "ओरु स्त्रीयुम् परयात्तत्" (किसी भी स्त्री से न बोली गयी, 1988), "अषितयुडे कथकल" (अषिता की कहानियाँ 1996), "निलाविन्टे नाट्टिल" (चाँदनी के गाँव में, 2002), "अम्मा एन्नोडु परञ्ञ नुणकल" (माँ द्वारा मुझसे कह गयी झूठें) आदि उनके प्रकाशित कहानी संग्रह है। "चारल मष़ा" (बूँद बूँद बारिश), "औत्तुतीरप्पुकल" (समझौता), "वेट्टा" (शिकार करना), "उमा", "कोऴिंज तूवलुकल पेरुक्कुन्नवर" (झरते परों को चुननेवाली), "सुजाता", "मध्यवर्त्तिकल", "यादृश्चिकम्", "रण्डु तलमुरकल" (दो पीढ़ियाँ), "मुखम् तिरिच्चिरिक्कुन्न पावकल्" (मुँह फेरकर बैठी गुडियाँ), "अम्मा एन्नोड़ परंज नुणकल" आदि उनकी प्रमुख कहानियाँ हैं।

इनकी कहानियाँ मानव मन की विविध गतिविधियों एवं प्रत्येक संदर्भ को सूक्ष्म रूप से व्यंजित करती है। उनका कहना है "रचना मेरा वहन कर रही है। मैं उसका नहीं। जब मैं अपने से प्रतिबद्ध हूँ तो पूरे संसार के साथ भी प्रतिबद्ध हूँ। यह सरल सत्य है।"[74] समाज में व्याप्त शोषण के मूल में व्यवस्था की विसंगतियों के साथ हमारी सामाजिक दायित्वहीनता भी एक कारण हैं। स्त्री की संवेदनाओं को रचना में रेखांकित करते समय उनमें एक फेमिनिस्ट की विमर्शन बुद्धि काम करती है। उनकी कहानियों में जो प्रतीकों

का इस्तेमाल किया गया है, वह घटनाओं के सार्थक व्यंजन के लिए योग्य है। घटनाओं के आशय के समान भाषा पर भी उनकी पकड़ सख्त हैं।

---

[74] अषिता- अम्मा एन्नोडु परंजा नुणकल, भूमिका से

2.2.2.5 गीता हिरण्यन

व्यक्ति मन के पर्त-दर-पर्त विश्लेषण करके उसके दुःख-दर्द को उजागर करने की उनकी विशिष्ट क्षमता ने अपनी एक अलग पहचान रखी है । "ओट्टा स्नाप्पिल ओतुक्कानाविल्ला ओरु जन्मसत्यम्" (एक ही स्नाप में परिमित नहीं कर सकते एक जन्मसत्य), कथकल (कहानियाँ) आदि प्रकाशित हैं। पढी-लिखी, अंग्रेज़ी जानती फिर भी घरों में नौकरानी की तरह काम करती स्त्री के एक से अधिक स्नाप "ओट्टा स्नाप्पिल ओतुक्कानाविल्ला ओरु जन्मसत्यम्" कहानी में है । "उण्णिक्कुट्टन्टे अम्मयुडे ओरु दिवसम्" (उण्णिक्कुट्टन की माँ का एक दिन) कहानी का नारी पात्र अपने सर्गात्मक व्यक्तित्व के बीच संघर्ष करती दिखाई पड़ती है। घर में अपने सर्गात्मक व्यक्तित्व का विकास करने का अवसर न मिलने पर अपने बच्चे को क्रष में डालती, काम पर जाने के लिए भी बच्चे को क्रष में भेजती ऑफिस की बदबूदार बाथरूम में अपने भरे हुए स्तनों से दूध निकालती ऐसे विभिन्न भूमिकाओं को निभाती आधुनिक स्त्री पात्रों का सृजन उन्होंने किया है।

इनकी कहानियाँ जिन्दगी की समन्वयात्मकता को जारी रखने में सक्षम है । सूक्ष्म आत्मनिरीक्षण के तहद् स्त्री स्वत्व के भिन्न भाव, मानव जीवन की प्रतिसंधियों का आविष्कार "असंघड़िता" कहानी में किया गया है। नये समय की माँग के अनुरूप आशय को पुनर्निर्मित करने वाली शक्तिशाली भाषा इसकी विशेषता है। उनका कहना है "बाहर की दुनिया कैसे भी मेरा शिकार करे मुझे उसकी परवाह नहीं है।" अपने सामने की कठिनाईयों का सामना करना वह जानती है। समाज एवं साहित्य के क्षेत्र में एक स्त्री होने के नाते झेलनी पड़ रही विडम्बनाओं को वह अपनी कहानियों में दर्शाती हैं।

2.2.2.6 चन्द्रमती

मलयालम में सपना देखती एवं साहित्य सृजन करती अंग्रेज़ी के प्रोफेसर चन्द्रमती के लिए मलयालम हृदय की भाषा और अंग्रेज़ी बुद्धि की भाषा है। उनके हृदय एवं बुद्धि दोनों समान

रूप से प्रयत्नरत है। उनकी कहानियाँ इन दोनों शक्तियों का उज्ज्वल संतुलन हैं। "देवीग्रामम्", "आर्यावरत्तनम्", "रेयिन्डियर", "दैवम् स्वरगत्तिल" (भगवान स्वरग में), "अन्नयुडे अत्ताय़ विरुन्नु" (अन्ना की ब्यारी दावत), "एन्टे प्रियप्पेट्ट कथकल" (मेरी प्रिय कहानियाँ), "चन्द्रमतियुडे कथकल" (चन्द्रमती की कहानियाँ), "तट्टारक्कुडियिले विग्रहंगल", "स्वयं; स्वन्तम्", "इविडे एनिक्कु सुखमाण्" आदि उनके प्रकाशित कहानी संग्रह हैं। "आर्यावर्तनम्", "बोणसाय", "अमलयुडे मोचनम्" आदि कहानियाँ आख्यानशैली की विशेषता के कारण विशेष महत्व रखती है। उनकी कहानियाँ प्रहसनात्मक एवं व्यंग्यपूर्ण कल्पना से समृद्ध है।

"बोम्मकल" कहानी विशेषरूप से बदलते मानवीय संबन्धों का सूक्ष्म विश्लेषण करती है। "प्रिय जनंगल" कहानी नेताओं के शोषण तंत्र, "भाषा प्रश्नम्" कहानी में "स्त्री भाषा" पर व्यंग्य किया गया है। उनकी कहानियाँ काफका, देरिदा, षोवाल्ट आदि सैद्धान्तिकों के विचारों से समृद्ध है। पारिस्थितिक स्त्रीवाद, उत्तर आधुनिकतावाद इसके अलावा पुराण एवं वेदों के विचारों से पूर्ण हैं का उनकी कहानियाँ । पती की गलती को न चिपाने वाली अमला, स्त्री को संपूर्ण बताने वाला सैद्धान्तिक फॉयड के विचारों का विमर्श करती "मेमिल सइमन", आत्महत्या भीरुत्व नहीं है, करार करके, आखिरी पल तक हार न माननेवाले असाधारण निर्भीकलोगों की पहचान है। इस तथ्य को पहचानती श्रीमती सखरिया साइमन् Discourse Fiction एवं Writing the Body के बारे में अपने विचार प्रकट करती श्यामला, अपना बच्चा एवं पूर्व प्रेमी को भारत में छोड़कर कानड़ा में एक नीग्रो दोस्त के साथ रहनेवाली प्रवासी मीना आदि सभी पात्र मलयालम कहानी जगत में अपनी अलग पहचान रखने योग्य हैं। मलयालम के स्त्रीवादी विचारों को वह स्वीकारती नहीं। अपने को स्त्रीवादी लेखिका न मानकर Individualistic Feminist कहती है। स्त्रीवाद की

शक्ति उसकी साझेदारी में है लेकिन "Individualism" में यह साझेदारी बिल्कुल भी नहीं। इसलिए Individualistic Feminist विशेषण एक विरोधाभास है। उनका मानना है लेखन को, पुरुष लेखन, स्त्री लेखन जैसे अलग खेमे में करके देखना स्त्री को मुख्यधारा से अलग करने की पुरुषवर्चस्ववादी समाज की साजिश है। उनका कहना है "त्याज्य, ग्राह्य विवेचन शक्ति से संपन्न पाठकों के सामने कोई भी व्यवस्था की सहायता के बिना खड़ी होना एक लेखिका होने के नाते मेरा लक्ष्य है।"[75] महिला लेखन की लेबल उन्हें कतई मन्जूर नहीं |

2.2.2.7 पी. वत्सला

विख्यात रचनाकारों के बीच एक कहानीकार एवं उपन्यासकार के रूप में पी. वत्सला अपना स्थान ग्रहण कर चुकी हैं। "उण्णिक्कोरन चटटोपाध्याय", "पष़य पुतिय नगरम्" (नया पुराना शहर), "तिरक्किल अल्पम् स्थलम्" (भीड़ में थोड़ी जगह), "उच्चयुडे निष़ल" (दोपहर की छाया), "पेम्पी" (एक आदिवासी लड़की का नाम), "अनुपमयुडे कावलक्कारन (अनुपमा का अंगरक्षक), "अन्ना मेरिये नेरिडान" (अन्नामेरी से मुकाबला), "करुत्तमष़ पेय्युन्न ताष़वरा" (घाटियों में बरसती काली बारिश), "कोणिच्चोट्टिले वेलिच्चम्" (सीढ़ी के नीचे की रोशनी), "आनवेट्टक्कारन" (हाथी का आखोटक), "अरुन्धती करयुन्निल्ला" (अरुन्धती नहीं रोती), पंगुरुपुष्पत्तिन्टे तेन (पंगुरु पुष्प का अमृत), वत्सला की कहानियाँ, "मडक्कम" (वापसी), "कलि 98 तुडरच्च" (खेल 98 का होना), "दुष्यंतनुम् भीमनुम इल्लात्त लोकम्" (दुश्यन्त और भीम के बिना दुनिया), "पूरम्" (एक

---

[75] सं. एन. जयकृष्णन-लेखन चंद्रमाती, पन्नेषुतु

उत्सव), "ग्राउण्ड ज़ीरो", कोट्टयिले प्रेमा (दुर्ग में रहनेवाली प्रेमा) आदि उनके प्रकाशित कहानी संग्रह हैं।

वे एक यथार्थ धर्मी कहानी लेखिका हैं। उन्होंने दलित एवं आदिवासियों के जीवन यथार्थ का चित्रण करने के लिए उनकी जगहों पर रहकर उनकी भाषा, रहन-सहन, आचार-संहिता आदि के बारे में जानकारी हासिल की ओर उनके घोर अन्धविश्वास पर आधारित एवं प्रकृति के साथ मिली-जुली जीवन रीति, वहाँ चढ़ाई करनेवालों का शोषण तंत्र आदि को समझ लिया। इस ज्ञान ने उनकी कहानियों की विश्वसनीयता को बढ़ाया । "पेम्पी", "पंगुरुपुष्पत्तिन्टे तेन", "प्रेस कॉनफ्रन्स", "कालियुडे स्वप्नंकल" (काली की ख्वाबें), "अडिवारंकलिल निन्न वन्नवर" (घाटी से आये लोग) आदि कहानियों में उनको जीवन संघर्ष को समग्र रूप से उकेरने की जो पैनी दृष्टि लेखिका ने अपनायी है, वह अद्वितीय है। किसानों के आर्थिक संघर्ष, ऋण न चुका पाने से उनकी आत्महत्या जैसी प्रत्येक घटना का विवेचन वह मानवीय दृष्टि से करती है। अपने स्वत्व को पहचानती एवं अपने से प्रतिज्ञाबद्ध सशक्त स्त्री पात्र उनकी कहानियों से जन्मी हैं।

2.2.2.8 ग्रेसी

समाज और मानव जीवन से जुड़ी समस्याओं और उनकी पहचान से ही इन्हें लिखने की प्रेरणा मिली है। पुरुष वर्चस्ववाद को स्थापित कर रही सार्वजनिक रीतियों का निषेध कर मलयालम कहानी में अपने जड़ को स्थापित करता हुआ एक भिन्न स्वर ग्रेसी की कहानियों में हमें सुनाई देता हैं। उनकी ज्यादतर कहानियाँ स्त्री को केन्द्र में रखकर लिखी गई है। "पडियिरंगिप्पोया पार्वती" (देहली लाँघती पार्वती), "नरकवातिल" (नरक का दरवाज़ा), "भ्रान्तन पूक्कल" (पागल फूल), "रण्डु स्वप्नदर्शिकल" (दो स्वप्नदर्शियाँ), "पनिक्कन्न" "मूत्रतीक्करा" आदि उनके प्रकाशित कहानी संग्रह है।

उनकी "पाँचाली", "गौलीजन्मम" (छिपकलिया जन्म), "ओरोतयुम् प्रेतंगलुम्" (ओरोता और प्रेत), "भ्रान्तन पूक्कल" "पडियिरंगिप्पोया पार्वती" जैसी कहानियों में स्त्री मुक्ति का स्वर गुंजायमान है। पुरुष सत्तात्मक समाज में विवाह, प्रेम, परिवार, मातृत्व जैसी संस्थाओं के अन्दर सिमटी स्त्रियों की समस्याओं को वाणी दी है। "पुरम् काऴ्चकल" (बाहर की नज़ारें), "इविडम् इप्पोल शान्तम्" (अभी यहाँ शान्ति है), कल्लु", "अतिक्रमिच्चु कडक्करुत" (ज़बरदस्ती आन्दर नहीं आना), "कल्पान्तम्", "तीच्चामुण्डु" आदि कहानियाँ भी प्रमुख हैं । जिनमें स्त्री-पुरुष संबन्ध एवं स्त्री की पीडा ही रेखांकित है। उनकी कहानियाँ रूपकों एवं प्रतीकों से संपन्न है।

स्त्रियों के बारे में लिखित पुरुष लेखन को भी वह स्त्रीपक्ष रचना मानती है। उनका कहना है स्त्री के बारे में पुरुष ने ही कहा था। उनकी नज़रों से ही पाठक स्त्रियों को देखता है। अब स्त्रियाँ स्वयं को प्रकट कर रही है। तब उसकी विश्वसनीयता बढ़ेगी साथ ही ईमानदारी भी।"[76] कहने का मतलब यही है कि अनुभूति एवं अनुभव में फरक है। एक स्त्री ही भोगे हुए यथार्थ का चित्रण कर सकती है। अनुभव की प्रामाणिकता रचना की विश्वसनीयता को बढ़ाती है। वस्तुतः लेखिका ने भावुकता से हटकर बदलते हुए जीवन-संदर्भ में नारी-जीवन की वास्तविकता को बड़ी सादगी के साथ व्यक्त किया है।

2.2.2.9 बी.एम. सुहरा

मलयालम कहानीकारों में इनकी कहानियाँ आज बहुत पढ़ी जा रही है। बी.एम. सुहरा जीवन की दिशाहीनता से उत्पन्न घात-प्रतिघातों और मानसिक उलझनों का एक खास अन्दाज़ में प्रस्तुत करनेवाली कहानी लेखिका है। "चोयिच्ची", "रचनयिले चिल तंत्रंगल" (रचना की कुछ युक्तियाँ), "कुहू कुहू" (कोयल की आवाज़), "भ्रान्त" (मोरोग) आदि उनके प्रकाशित कहानी संग्रह

---

[76] एन. जयकृष्णन- पेन्नेषुत्तु,एषुत्तिनु लिंगभेदमिल्ला, लेखन को लिंगभेद नहीं , (ग्रेसी)

है। समस्याओं की गहराइयों तक जाने की उनकी अन्तर्दृष्टि एवं आक्षेपहास्य शैली उनकी कहानियों की विशेषता है। "भ्रान्त", "वत्तक्का", "साक्षरता", "पेट्टिच्ची", "आकाश भूमिकलुटे ताक्कोल" (आकाश और भूमि की चाबी), "हाज्यारुडे भार्या" (हाजी की पत्नी), "अवने नरकाग्निियिल एरिक्कुविन" (उसे नरक की आग में जलाओ) आदि उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

स्त्री की अनेक भूमिकाओं को जब वह रचना में उतारने की कोशिश करती है तब उसे अनेक मानसिक उलझनों का सामना करना पड़ता है। वह लिखती है "मर चुकी एवं जीवित, हज़ार स्त्रीयों के दुःख भरे चेहरे लिखते समय मुझे दिखाई पड़ते हैं। क्यों हमारी कठिनाइयाँ एवं संवेदनाओं के बारे में दुनिया समझती नहीं? उनकी इस सवाल का जबाब देने के लिए मैं लिख रही हूँ।"[77] वह लिंगभेद में जकड़ी स्त्री मन की व्यथा को जानने एवं दुनिया को समझाने के लिए लिख रही है। ईश्वर की विशिष्ट सृष्टि स्त्री को उसकी इच्छा के विरुद्ध गुलाम बनानेवाले पुरुषवर्चस्ववाद पर अमर्ष, उनकी कहानियों में सर्वत्र देखा जा सकता है। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि अनुभवों के साक्षात्कार के लिए भोगे हुए लोगों की आवश्यकता है।

स्त्री और पुरुष के आपसी प्रेम एवं सम्मान पर आधारित पारिवारिक स्थिति की आवश्यकता, आज के जड़ होते हुए समाज की मांग है। इसके प्रसार के लिए लेखिका अपनी कलम चला रही है। वह स्त्रियों के बारे में लिखती है, लेकिन मात्र वह स्त्रीपक्ष लेखिका नहीं है, मुसलमानों के बारे में भी ज़्यादा लिखती है। पर मुसलमान साहित्यकार नहीं। वह सामाजिक बदलाव के लिए लिखती है। एक ही समय में इन सभी वर्गों पर लिखने के बावजूद वह इन सभी विषयों पर ज्ञान प्राप्त कर चुकी है।

---

[77] बी.एम. सुहरा- भ्रांत कहानी संग्रह की भूमिका से

2.2.2.10 मानसी

वह हाशियेकृतों के उत्पीडन को मानवीयता की दृष्टि से देखनेवाली कहानीकार है। "इडि", "वेलिच्चंगलुडे तालम्" (प्रकाश ताल), "इडिवालिन्टे तेन्गल" (बिजली की सिसकी), "मंजिले पक्षी" (बर्फ का पक्षी), "मानसियुडे कथकल" (मानसी की कहानियाँ), "मानसियुडे तिरंजेडुत्त कथकल" (मानसी की चुनी हुई कहानियाँ) आदि उनके प्रकाशित कहानी संग्रह है। उनकी "शीलावती" नाम की कहानी आर्ष भारत के सभी महापुरुष जैसे नल, श्रीराम आदि को विमर्शन का बिधेय बनाती है। उनकी कहानियों में स्त्रियों को देवी बनाकर उन्हें अपने अधीन करने वाले पुरुषों पर व्यंग्य है । उदाहरण है, "देवीमाहात्म्यम्" कहानी। "मतिलुकल" (दीवारें), "मंगुन्न वेयिल" (ढलती धूप) ये दोनों कहानियाँ केरल में दलितों के साथ जो अन्याय किए जा रहे हैं उसका पर्दाफाश करती हैं । उनकी सारी कहानियाँ ईश्वर के नाम पर, मर्यादा के नाम पर, प्रेम के नाम पर समाज में चल रही कुरीतियों के मुखौटे को निकाल फेंकती है। आक्षेप हास्य शैली में लिखी गयी उनकी कहानियाँ विशेष महत्व रखती हैं।

2.2.2.11 श्रीकुमारी रामचन्द्रन

नारी के स्वतंत्र अस्तित्व का अहसास करानेवाली कहानी लेखिका है। "निर्माल्यम्" (1993), परित्राणम् (1995), तायवेर (1997), नक्षत्रंगलक निरमुण्डो? (क्या तारों के रंग है ? (1999), विधवकलुडे ग्रामम् (विधवाओं का गाँव) (1999), मुजाहिर (2005) आदि उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह है । नष्ट स्वप्नंगल (नष्ट स्वप्न) कहानी की पात्र 'तंकम्' अपने माँ, भाई एवं बहनों को पालने के लिए अपने लिए आये सभी विवाह संबन्धों को ठुकराती है। "पतिग्नि" कहानी में अपने पति के काम चले जाने के बाद कविता रचकर अपनी आजीविका चलाती पत्नी, तायवेर

कहानी में अपने नस को पहचानते विदेश में पले बडे बच्चे, "सिंहासन" कहानी की प्रधानमंत्री पद हासिल करती नायिका, 'तिरुत्त' (गलती सुधारना) कहानी में अपने प्रेमी के साथ भागती रुग्मिणी, भारत में धार्मिक संघर्ष पूर्वाधिक शक्ति आर्जित कर चुका है। इस कालखंड में कुछ भी हो सकता है, यह सोचने के लिए मजबूर करती कहानी 'विधवकलुडे ग्रामम्' तरक्की के लिए अपनी पत्नी को किसी ओर के सामने पेश करता पुरुष 'काष्चवप्प' (पेशवगी) आदि मानव जीवन की विभिन्न त्रासदी से भरा पडा है उनका रचना संसार।

2.2.2.12 प्रिया ए.एस.

"लेखन मेरे लिए एक balancing act हैं" यह ऐलान करती लेखिका के लिए लिखना ही जीवन है। कथकल (कहानियाँ, 1999), ओरोरो तिरुवुकल (एक.एक. घुमाव) मंजमरंगल चुट्टिलुम (पीले पेड़ों से घिरा) (2002) आदि उनके कहानी संग्रह है। अन्नयुम् जोसफुम ओरु पिणक्कवुम (अन्ना एवं जोसफ की झगड़ा) में बेकार जोसफ एवं नौकरी करनेवाली पत्नी अन्ना की कहानी है। घर में हो या बाहर एक आश्रिता का अपमान भार स्त्री को ही वहन करना पड़ता है। लेकिन वह रोल इस कहानी में पुरुष निभाता है। स्त्री और पुरुष समाज की दो इकाइयाँ है। सिर्फ स्त्री मात्र नहीं पुरुष की भी कमज़ोर होने की संभावना पर ज़ोर दिया गया है।

"ओट्ट मुलच्चि" (एक स्तनवाली) कहानी की नायिका का एक स्तन जो उसके रोग के कारण काट दिया जाता है। लेखिका सर्गात्मकता से संपन्न लड़की के साथ नसीब के क्रूर मज़ाक को, उससे भी क्रूर एवं असहनीय बनाकर पाठक की अन्तश्चेतना को झकझोरती है। वह छोटे छोटे जीवों में मानुषिकता का आवाहन कर, व्यंग्य शैली को एक नया जन्म भी देती है। इसके उदाहरण है पच्चक्कुतिरकलुम् पात्तुम्मयुम"आता नोक्कू ओरु पल्ली" (वहाँ देखो एक छिपकली) कहानियाँ। उनकी कहानी के बारे में एम. मुकुन्दन का कहना है "किसी का भी अनुकरण न करनेवाली नरेषन"

। नरेषन मात्र नहीं जीवन भी । नई लेखिकाओं में प्रिया को असाध्य "सेन्सिबिलिटी" है । "जागरूकता", "आता नोक्कू ओरू पल्ली", बस दोनों कहानियाँ ही काफी है मलयालम साहित्य जगत् में स्थान दिलाने के लिए । उनकी रचना मनुष्य सत्ता के साधारण तलों को भी गंभीर बना देती है ।

2.2.2.13 सितारा एस.

नये लेखिकाओं में अपनी सहजता एवं आत्मविश्वास के तहत अपने स्वत्व को स्थापित करती लेखिका । "नृत्तशाला", "अग्नियुम शलभंगलुम" (अग्नी एवं शलभ), "करुत्तकुप्पायक्कारी" (काला कपडा पहननेवाली) आदि उनकी प्रकाशित कहानी संग्रह हैं । अबलाएँ एवं गरीबों के साथ खड़े होकर लिखने में इतनी छोटी उम्र में ही वह समर्थ है । "निस्संकोचता" उनकी कहानियों की विशेषता है । मानवीय संवेदनाओं के साथ खिलवाड़ कर रहे मीडिया के कार्यक्रम आज कितने अमानवीय बनते जा रहे है यही "मण्ण" (मिट्टी) कहानी का विषय है । सामूहिक बलात्कार से पीड़ित प्रिया का प्रतिरोध ही "अग्नी" कहानी का प्रमुख विषय है ।

मानव मन की अन्तःसत्ता को छूने की अन्तर्दृष्टि उनकी कहानियों में है । सारा जोसफ उनकी कहानियों के बारे में कहती है "सामाजिक स्थितियों का ज्ञान, प्रतिषेध प्रतिरोध एवं स्वतंत्रता के बारे में निस्सीम स्वप्न, आदि अपने अन्तर की लेखिका की कथा निर्माण प्रक्रिया में नए मानकों को तलाशती है । जीर्ण झकझोरती, सड़ी-गली स्त्री संबन्धी मान्यताओं से अलग एक नयी स्त्री, नये स्त्री-पुरुष संबन्ध नये समय की माँग करती ये कहानियाँ श्रेष्ठ है । "[78] स्त्री जब अपनी

---

[78] सितारा एस. - कथकल, फ्लैप से

शक्ति को पहचानने लगती है तब सारी दुनिया को नया रास्ता दिखाना वह अपना दायित्व समझती है। यही सितारा की कहानियों की स्त्रियाँ कर रही है।

सम लैंगिकता के बारे में खुलकर बताने में शर्म महसूसती कपटता से भरे समाज में लैंगिकता को केन्द्र विषय बनाकर कहानियाँ लिखने की हिम्मत उन्होंने दिखाई। वे समाज में व्याप्त पाखण्डी - मुखौटा फाडती है और लड़कियों के सबसे बड़े रहस्य "सानिट्टरी पाड" के बारे में खुलकर बताती है। समाज में स्त्रियों के बारे में व्याप्त सारी कल्पनाओं का अतिक्रमण करती शक्ति संपन्न सितारा की स्त्रियाँ मलयालम कहानी के लिए उनकी सबसे बड़ी योगदान है।

2.2.2.14 के.पी. सुधीरा

जीवन के आन्तरिक एवं बाह्य पक्ष को सही मायने में मापने वाली लेखिका है

के.पी. सुधीरा। "आरो ओराल" (2005), "अतीतम्" (1996), "आकाशाचारिकल" (1996), "चोलामरंगल इल्लात्तवऴि" (बिना छायेदार पेंड के रास्ते), "सहयात्रिका", "स्नेहस्पर्शंगल" आदि उनके प्रकाशित कहानी संग्रह है। अपने स्वत्व के प्रति ईमानदार, बने बनाये रास्तों का पीछा न करने का धैर्य, एक फाइन के तहत नये पन को न अपनाना उनकी कहानियों की विशेषता है। उसमें बेडियों को तोड़ने एवं पारंपरिक मूल्यों को कसकर पकड़ने का आसमान्य सामर्थ्य हैं। "उमयुडे मकन" (उमा का बेटा) कहानी में एक अन्य स्त्री से लिए गए बच्चे को न त्यागने के लिए उमा पति से दूर चली जाती है। "अवलुडे वीड" कहानी का पुरुष पात्र, अपनी पत्नी का लेखिका बनना, आदर सम्मान से जीना पसंद नहीं करता। यह जानकर भी पति की जानकारी के बिना वह अपने लेखन को आगे बढ़ाती हैं। उनकी "अनाथ शिल्पंगल" (अनाथ मूर्तियाँ), "वऴियरिकिले तणल्मरंगल" (रास्ते किनारे के छायादार पेड़), "श्राद्धम" (श्राद्ध) ऐसी कहानियाँ हैं जिसमें वर्तमान जीवन की बदलती संवेदनाएँ उभरती हैं। "अरैवल" (आगमन) कहानी में ऊँचे आहेदे प्राप्त पति-

पत्नी के संबन्ध में पडने वाले दरारें अंकित हैं। उनकी रचनाएँ मानविक संबन्धों की गहराई को छूती है। वह प्रेम के नये आयामों को तलाश रही हैं।

2.2.2.15 सिल्विक्कुट्टी

चाकू की नोक जैसी इनकी तेज़ धार कहानियाँ सीधे पाठकों के मन की गहराइयों पर आकर चुभती हैं। "अन्नयुम् करत्तावुम्" (अन्ना और ईश्वर), क्रमसमाधानम् (2016) आदि इनके कहानी संग्रह हैं । उनके लिए कहानी एक खुला संघर्ष है। जिस प्रकार तीखे व्यंग्यों का इस्तेमाल कहानी में करता आ रहा है एक मलयाली लेखिका में हम इसका उम्मीद नहीं कर सकते। आधुनिकता के लेबल में अपने को बाँधना वह पसंद नहीं करती। "कपड़ा पहने बिना ही मुझे 8.30 की बस पकड़नी है" कहकर बिना कपड़ा पहने ही बस स्टोप में पहुँचती "लिसी" पात्र से आज तक मलयाल कहानी अपरिचित थी।

पुरानी पीढ़ी के पद चिह्नों का पीछा न करके मलयालम कहानी अपनी एक अलग पहचान कायम करने की कोशिश कर रही है। उनकी कहानियों का शिल्पी, प्रमेय आदि में सहजता है। व्यंग्य के क्षेत्र में स्त्री का सान्निध्य विरले ही मिलती है। लेखिका इस शून्यता को भरने का प्रयत्न करती है। मालती जब अपने पती को तलाक देने का निर्णय लेती है तब उसके दोस्त "कन्निपुरुष" के मूल्य बढ़ रहे वर्तमान समय में तलाकशुदा को स्वीकार करने के लिए तैयार होती है। यह कहानी दहेज की बढ़ती माँग पर व्यंग्य करती है। "स्त्री घर की दिया होती है" यह उक्ति सुनकर बडे होते बच्चे, जब दिया का प्रकाश धीमी पड़ जाती है तब उसको सुलगाती हैं। इस तरह की व्यंग्योक्तियाँ उनकी हर एक कहानी की विशेषता है।

2.2.2.16 सी.एस. चन्द्रिका

पारंपरिक रास्तों पर न चलकर, नए रास्ते एवं नये आविष्कार को ढूँढने के संघर्ष में है लेखिका। "भूमियुडे पताका" (भूमि का झंडा), "लेडीस कंपार्टमेन्ट" आदि उनके कहानी संग्रह हैं । "बार्बी", "भूमियुडे पताका", "मरुपडि प्रतीक्षिक्कुन्नु" (जवाब के इन्तज़ार में), "अन्तोणियुडे आड्" (आन्टणी की बकरी) आदि उनकी चर्चित कहानियाँ हैं। साम्राज्यवादी अधीशत्व नीतियों का विकास करके आम आदमियों को समाज में गरीब एवं गुलाम बनाकर रखने की, नेताओं के षड्यंत्रों पर अपना प्रतिशोध जताती है इनकी कहानियाँ। उनके नीति निषेध एवं अधिकारों के उल्लंघन को चित्रित करने के लिए वह हमेशा अपनी रचनाओं के माध्यम से संघर्ष करती रहती है। "ग्लोबल इनवेस्टेर्स मीट" एवं "मुत्तंगा" की घटनाएँ उनके मन को गहराई से झकझोरने वाली थी। इस मानसिक संघर्ष से उभरी कहानियाँ है "अन्तोणियुडे आड", "पुष़यिले मीनुकल" (नदी की मछलियाँ) आदि।

आज नयी विकासयोजनाओं के सामने किसान हो, परंपरागत धंधा करनेवाले हो, कुटीर उद्योग करनेवाले मजदूर हो, समाज में हाशियेकृत लोग जैसे आदिवासी दलित एवं स्त्रियाँ हो अपनी जिन्दगी को आगे बढाने में असमर्थ बन जाते हैं। बाद में उनकी आत्महत्या जिन्दगी भर ऋण चुकाने में असमर्थ, अपने मानसिक संतुलन खो बैठने जैसे स्थितियों से गुज़रना पड़ता है। "अन्तोणियुडे आड", "असंबन्धनाटकम्", "पुष़यिले मीनुकल" आदि कहानियां इन समस्याओं को पाठकों के सामने रखती हैं। उनके लिए लेखन का अर्थ ही संघर्ष है। अपने आपसे, अपनी भाषा, प्रमेय, समाज से संघर्ष करते रहना और परंपरा को ठुकराकर नया रास्ता अपनाना ही उनकी कहानियों की विशेषता है।

2.2.2.17 के.आर. मीरा

लेखन की शुरुआती दौर पर ही चर्चित कहानीकार । "ओरमयुडे ञरम्प", "मोहमंज़ा" (मोहित करती पीला रंग, 2004), "गिल्लट्टिन" (2010), "पेण्पंजतंत्रम् मट्टु कथकलुम" (स्त्रीपंजतंत्र एवं अन्य कहानियाँ 2014) आदि उनके प्रकाशित कहानी संग्रह हैं । नयी कहानियों को आन्तरिक ऊर्जा एवं पेशीबल प्रदान करती आख्यान शैली उनकी कहानियों की विशेषता है । परंपरा एवं अपने समय के साथ संघर्ष करती इनकी कहानी के पात्र समाज में एक जुगुप्साजनक स्थिति पैदा करते हैं और पाठक के सामान्य धारणाओं को तहस-नहस करते हैं ।

उनकी "कूट्टिक्कोडुप्पुकल" (दलाली करना) कहानी सांस्कृतिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में हो रहे कुतंत्रों का खुलासा करती है । मानव जीवन में संघर्ष की आवश्यकता पर जोर देती राजनीतिक खोखलेपन के प्रति मुठभेड़ करती इनकी कहानियाँ अत्यधिक वाचाल है । एक एक शब्दों के चयन के पीछे उनका अतीव जागृत मन काम करता है । इनकी कहानियाँ यकीनन मलयालम कहानी जगत् के लिए उत्तम देन है ।

2.2.2.18 इन्दु मेनोन

व्यवस्थापित नियमों को हवा में उडाती एवं संघर्ष करती लेखिका के लिए लेखन एक युद्ध है जो कभी दूसरों से है तो कभी अपने आपसे । "ओरु लेसबियन पशु" (एक लसबियन गाय, 2003), "संघपरिवार" (2005), चुंबनशब्दतारावली (2011), कथकल (कहानियाँ, 2010) आदि उनके प्रकाशित कहानी संग्रह है । बहुमुखी दिशाबोध पुनर्पाठन के विधेय सौंदर्यशास्त्र, अप्रत्याशित चिन्ताविन्यास, नर्म प्रधानता, सशक्त जीवन वीक्षण, परंपरा से हटकर मानवीय संबन्धों का समीपन इन सबसे युक्त आख्यान शैली उनको अलग पहचान के योग्य बना देती है ।

"चेट्टा" (कुली-कबाड़ी), आण्वण्डिकल (पुरुष गाड़ियाँ), "मष़युडे चेरिय कालडयालंगल" (बारिश के छोटे पदचिह्न), "मिण्डामिण्डिक्कायकल काय्क्कातिरिक्कान", "कडल पूट्टू", "ओरु लसबियन पशु" आदि उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं । वे साहित्य लिखने के लिए विमोचन प्रत्ययशास्त्रों की ज़रूरत पर ज़ोर देती है । "इन्दु की कहानियों में अनेक विमोचन दौत्यों को मैं देख रहा हूँ । "[79] इनक1. सक्करिया कहानियाँ) के भूमिका मे कहानियों में लैंगिकता को विचिन्तन के विधेय बनाने की निपुणता है । वे स्त्रीपक्ष दृष्टि को बनाये रखकर लैंगिक प्रमेयों का आविष्कार करती है । "भ्रूणम्" (भ्रूण), "दिगंबरन", "मम्मी", "संघपरिवार", "कन्यका", "योषितयुरक्कंगल", "कडलनाया" आदि उनकी चर्चित कहानियाँ हैं । उनकी कहानी के शीर्षकों के बारे में एम. मुकुन्दन लिखता है कि "कहानियों के शीर्षक को यदि वयलार आवार्ड देना है तो पहले इन्दु को मिलेंगे । " अच्छी तरह लिखने के लिए मात्र नहीं, उसके योग्य शीर्षक देने के लिए भी प्रतिभा अनिवार्य है । "ओरु लेस्बियन पशु" (एक लसबियन गाया), "हिन्दुच्छाययुल्ल मुस्लिम पुरुषन" (हिन्दु की तरह दिखता मुसलमान) उदाहरण है । अपने स्वत्व के प्रकाशन कर धीरे-धीरे कर्तृपद आर्जित करती नयी स्त्रियों के बदलते जीवन इनकी कहानियों में अंकित हैं । "कन्यका", "योषितयुरक्कंगल" इन कहानियों के ज़रिए अदृश्य एवं अजय्य पुरुषवर्चस्ववादी प्रत्ययशास्त्र पर चोट करती है । इनकी कहानियों की ध्वंसात्मकता समाज में नये समन्वय की सृष्टि करती हैं ।

2.2.2.19 तनूजा एस. भट्टतिरी

---

[79] सकरिया कहानियां भूमिका से

समन्वयवादी एवं स्वस्थ सामाजिक दृष्टि संपन्न, लेखिका के कहानी संग्रह है "ताम्रवरयिल निन्न ओरु काट्ट" (घाटी से आयी हवा), "स्टेलस्टियन प्लेयिन" आदि । केरल की पारिवारिक स्थिति, उसमें बदलते मानवीय-संबन्धों, मासूम बच्चे, वृद्धों की दयनीय स्थिति, शहरीय एवं ग्रामीण जीवन आदि को लेखिका ने अपनी कहानियों का विषय बनाया है। उनकी कहानियों का स्त्री पात्र अपनी परंपरा के सकारात्मक पक्ष को साथ लेकर सीढ़ियाँ चढ़ रही है। समाज में जितने भी विषय हो सभी पर वे अपने विचार प्रकट करती हैं । संघर्ष करने में इच्छुक स्त्रियाँ समाज से खुलकर बात करती है। बेटी, माँ, दादी, पत्नी आदि भूमिकाओं को निभाती स्त्री कभी प्रकृति का रूप है तो कभी ईश्वरीय चेतना संपन्न दिखती है। वह दूसरों का आदर भी करती है साथ ही दूसरों के आदर का पात्र भी बनती है। पुरुषों के सामने सधैर्य खडे होकर अपनी स्वतंत्रता का ऐलान करती इनकी स्त्री पात्र ममतामयी भी है, जो समस्त पृथ्वी को संकट से बचाने की क्षमता रखती है। मानवीयता इनकी कहानी की विशेषता है।

2.2.2.20 डॉ. लता लक्ष्मी

"स्त्री को स्त्री ही रहना है" ऐलान करती लतालक्ष्मी की कहानी संग्रह है "भारतियुडे रण्डाम यामम्" (भारती की दूसरा याम" (2006), "सिलिक्का" (2011), "तूलिकानामम् राधा" (तूलिकानाम राधा 2014)। स्त्री की समस्याओं का खुलासा स्त्री के द्वारा ही करने का बोधपूर्वक श्रम उनकी कहानियों की विशेषता है। स्त्री के विकास के लिए जो कुछ आवश्यक है उसी को लेकर ही उसका जन्म हुआ है, उसे मात्र पहचानने की ज़रूरत है। उसे पहचानकर प्रयोग में लाने का कार्य स्त्री को ही करना है। "वोट्टेडुप्पिनुल्ला स्वातंत्र्यम्" (चुनाव करने की स्वतंत्रता) कहानी में निरक्षर स्त्रियाँ भी अपने स्वत्व की पहचान दिलवाने की कोशिश करती हुई दिखाई देती हैं । इतिहास पात्र, मध्यवर्गीय परिवार की स्त्रियाँ, साधारण स्त्रियाँ, दूकान में खड़ी स्त्रियाँ इस प्रकार

समाज में स्त्री की जितनी छवियाँ मौजूद है सभी पर कहानियाँ लिखी गई हैं। "तूलिकानामम् राधा", "पामरम् कुन्निन्टे ताऴ्वारत्त" आदि इसप्रकार की कहानियाँ हैं। लेखिका स्त्रियों के अन्तर्मन के रहस्यों को खोलने में सिद्धहस्त है।

इनके अलावा "अंबिका" (विह्वलतकलक्कप्पुरत्त्), आतिरा. वी. (पेण्णोरुत्ति), बीना जोर्ज (तीक्कलिवेट्टंगल), धन्याराज (न्यू वुमन ब्यूजी सेन्टर), गीता चिरयन्कीष़ (वेयिल नालंगल), गिरिजा के. मेनोन (अरुणयुडे विशेषंगल), हेमलता नम्प्यार (ओरु तुल्लि कण्णुनीर), जानकी (पच्चक्कुतिरकल एत्तुम्पोल), कय्युम्मु (ओरोरमयुडे पच्चतुरुत्तिलूडे, कृष्ण पक्षत्तिले करुत्त रात्री), खदीजा मुमताज़ (बाल्यत्तिल निन्न इरंगि वन्न ओराल, ललिता. एस. (उच्चवेयिल), लता मुडपुरम (ओन्नुम परयानिल्लाते), के.आर. मल्लिका (निरंगलक्कप्पुरम्), मानसीदेवी (श्रीदेविमार पेडिक्कुन्नत), मिनि मलयिल (पकरन्नाट्टम), माया गोपिनाथ (मरुभूमियिल मषपेय्युम्पोल), सरोजम (वलक्कण्णिकलिल काणात्ततु), शारदा (श्रुतिभंगम्), सावित्री राजीवन (संजारियुडे तानुपोय वीड्), टी.पी. सेविया (सेबिययुडे कथकल), रेखा. के (आरुडेयो ओरु सखाव), सिल्वि वेल्लनाड (मालाखत्तुम्पिकल), षबना पोन्नाड़ (ऐन्नेन्नेक्कुमुल्ल ओरोर्मा) आदि लेखिकाएँ मलयालम साहित्य में अपनी सर्गात्मकता को पहचान दिलवाने की कोशिश कर रही हैं।

निष्कर्ष

असंतोष से ही वर्तमान परिस्थिति से अलग नए परिवेश की कल्पना उभरती है । बदलाव की यह तीव्र इच्छा प्रतिरोध का मूल तत्व है । कोई भी रचना हो अपने समय के प्रतिरोध को स्वीकारे बिना अगे नहीं बढ़ सकती । स्वतंत्रता और नये मूल्यों को अर्जित करने की मानसिक प्रौढ़ता वह महिला लेखन में दिखाई पड़ती है । "एक स्त्री", "स्त्री होते हुए" जब "स्त्री संसार" के बारे में "स्त्री दृष्टि" से विचार करने लगती है तब लेखन अत्यधिक संवेदनशील होता है । उनका अपना एक नया अनुभव संसार, उनकी चिंताएँ, अभिलाषाएँ, दैहिक प्रश्न पाठकों के सामने आते हैं । महिला लेखन इस दायरे से बाहर निकलकर समाज में हाशिएकृतों पर किए जा रहे जो गैर बराबरी है शोषण है, अन्याय है उसके खिलाफ खड़ी होती है । ये महिला रचनाकार उपेक्षित एवं अनावृतों के साथ आजीवन खडे रहने के लिए कलम उठाती हैं । इस दृष्टि से यह सामाजिक मुक्ति का विमर्श है । इस प्रकार हिन्दी की हो या मलयालम की सारी महिलाएँ जब अपनी रचना में प्रतिरोध की बात करती है तो वह व्यवस्था के तंत्र को पहचानकर मनुष्य की गरिमा के समर्थन में खड़ी होती दिखाई पड़ती है । स्थितियाँ तब बदलती है जब मानव की सोच बदलती है । इस प्रकार उनकी अस्मिता की तलाश या प्रतिरोध सकारात्मक हो जाता है । दोनों भाषाओं की महिला कहानियों में स्त्री अस्मिता, स्त्री स्वत्व के प्रति संघर्ष जारी है, जो भविष्य में नव मूल्य के नए पायदानों को खोलने में मदद करेगा और इनकी ये रचनाएँ

व्यवस्था से टकराकर चूर नहीं होंगी, बल्कि वह दोबारा उठ खड़ी होकर संघर्ष के इस कारवाँ को और आगे बढ़ायेगी ।

तीसरा अध्याय

समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला कहानियों में स्त्री - प्रतिरोध : सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ में

भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि जीवन के सभी क्षेत्रों की संरचना पुरुषसत्ता के हितों के अनुरूप विकसित हुआ है । जिसमें सामंतवाद का जबर्दस्त प्रभाव है और स्त्री की अधीनस्तता मौजूद है । 'ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी ये सब ताड़न के अधिकारी' यह समाज की मानसिकता की अभिव्यक्ति है । पितृसत्तात्मक समाज, पुरुष पर निर्भरता की घुट्टी, बचपन से ही स्त्री को पिलाता रहा है । समाज द्वारा स्त्री के प्रति 'दूसरे दर्जे' का व्यवहार, उसके जन्म के साथ ही शुरू होता है । जिसमें उसे जन्म लेने के लिए तक समाज की इजाज़त चाहिए । अगर वह बच निकलती है तो उसमें शील, नैतिकता, मर्यादा, मातृत्व, सहनशीलता जैसे आदर्शों को आरोपित करके देवी बना दिया जाता है । इसके तहत उसका अपना व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है । फलस्वरूप वह अपने ढंग से जीवन बिताने, पसंद के कपडे पहनने, ज्ञान प्राप्त करने तथा जीवन की बुनियादि ज़रूरतों से भी वंचित रह जाती है ।

समाज में लंबे समय तक इस व्यवस्था के अधीन रहने के बावजूद आज स्त्री अपनी गुलामी को पहचानने लगी है । इस पहचान को उसने शिक्षा द्वारा ही हासिल की । स्त्री की चेतना ने पुरानी सामाजिक व्यवस्था में गहरी दरारें उत्पन्न कर दी है । परिणामस्वरूप समाज में सकारात्मक परिवर्तन नज़र आ रहे हैं । जहाँ वह अपने स्वत्व संबन्धी मूल प्रश्नों से टकराने लगती है वहाँ से उसका प्रतिवाद प्रतिरोध शुरू हो जाता है । इस प्रतिरोध को समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला कहानीकारों ने अपनी कहानी का विषय बनाया है । बदलते परिवेशानुकूल उनकी रचनाओं में प्रतिरोध का स्वर गूँजने लगा है ।

3.1 स्त्री: व्यक्ति की अहमियत

संविधान के अनुच्छेद 14 के अनुसार सभी व्यक्तियों को समानता का अधिकार प्राप्त है । अनुच्छेद 15 में लिंगाधारित विभेद के प्रति भी विरोध दर्ज है । अनुच्छेद 19 से लेकर 22 तक

स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लेख भी किया गया है । यह सब अधिकार संविधान द्वारा लागू किए जाने पर भी एक व्यक्ति होने के नाते स्त्री इन अधिकारों से वंचित है । वास्तव में प्रत्युत्पादन को मद्दे नज़र रखकर ही स्त्री और पुरुष की शारीरिक बुनावट की गई है । मगर किसी भी स्तर पर मन, मस्तिष्क, चेतना एवं शक्ति में स्त्री, पुरुष से कमतर नहीं है । लेकिन पितृसत्ता इस वास्तविकता को स्वीकारती नहीं । वह स्वतंत्र रूप से कभी भी उसे जीने नहीं देता । इसलिए स्त्री अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत है । सही मायने में स्त्री अस्मिता का अर्थ होता है स्त्री के प्रति समाज के दृष्टिकोण और मानसिकता में बदलाव, जिसमें स्त्री का अपना दृष्टिकोण भी शामिल होता है । पुरुष के बराबर स्वतंत्रता, समानता और गरिमा के साथ जीवन व्यतीत करने का अधिकार स्त्री की अस्मिता की मुख्य शर्तों हैं । नारिश शर्मा लिखती है "वह दिन बहुत करीब है जब समाज स्त्री के अपने क्रूर व्यवहार को न केवल बदलेगा बल्कि उसके प्रति अपनी नज़रिया खुला रखने पर मज़बूर होगा । वह भी इसलिए कि 'औरत के लिए औरत' अपने अधिकार के लिए जागरूक हो रही है ।[80] मतलब स्त्री को पुरुष के समान दर्जा दिलवाने के लिए अस्मिता संपन्न स्त्रियाँ कोशिश कर रही हैं । स्त्री सशक्तीकरण भी इस दिशा में संघर्षरत है । यह स्त्री को शिक्षा प्रदान करने पर ज़ोर दे रही है क्योंकि शिक्षा अपनी आँखों से अपने को और दुनिया को देखना सिखाती है । यह उसे बौद्धिक रूप से सजग बना देती है ।

आज स्त्री यह समझने लगी है कि सजगता के ज़रिए ही वह इस समाज में अपनी जगह प्राप्त कर सकती है । इसके लिए उसे सुदृढ़ साहसी एवं निश्चयी होनी चाहिए । अब वह अपना फैसला स्वयं लेना चाहती है । जिससे उसे मनुष्य होने का अहसास प्राप्त होता है । समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला कहानी में ऐसी नारी पात्रों का निर्माण किया गया है जो बेबाकी से सच

[80] नासिरा शर्मा ,औरत के लिए ,भूमिका

बोलती है साथ ही अपने स्वतंत्र अस्तित्व व अस्मिता की समझ रखती है । अब वे अपनी राह खुद रचने में सक्षम है ।

3.1.1 जीवन साथी का चयन

हमारे संविधान के तहत् स्त्री और पुरुष को अपने प्रेमी-प्रेमिका के साथ विवाह करने का प्रावधान है । भारतीय संविधान के अनुच्छेद 16 में कहा गया है । कि राष्ट्रों की ओर से विशेष प्रयत्न किए जायेंगे कि वैवाहिक और पारिवारिक संबन्धों में महिलाओं के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव न बरता जाये और उन्हें पुरुषों के साथ बराबरी का स्थान व अधिकार मिलें । इसमें विवाह हेतु समान अधिकार, और अपने जीवन साथी के चुनाव की स्वतंत्रता तथा अपनी पूर्ण मर्जी से शादी करने का अधिकार शामिल है । लेकिन समाज ऐसा होने नहीं देता । धर्म, परंपरा एवं रूढ़ि आदि मिलकर इस स्वतंत्रता से स्त्री को वंचित बना देते हैं । आज स्त्रियाँ अपने इस अधिकार के बारे में समझने लगी है । शादी के बाद लंबे समय तक जीना तो उसे है इसलिए अपने ऊपर थोपे गए रिश्ते के बोझ को ज़िन्दगी भर ढ़ोना वह नहीं चाहती । आज वह अपनी इस चाहत को खुलकर बताने की हिम्मत जुटा रही है । अपने ज़िन्दगी के बारे में निर्णय लेने का पूरा हक स्त्री को ही मिलना है । समकालीन हिन्दी-मलयालम कहानीकारों ने ऐसी नारी पात्रों का निर्माण किया है जो अपने जीवनसाथी का चयन खुद करना चाहती है । स्त्री के इस फैसले के पीछे कई कारण होते हैं, जैसे कि माता-पिता द्वारा उनकी पसंद ना पसंद पर ध्यान नहीं दिया जाना ,गैर बराबरी का माहौल एवं उसके फैसलों को आदर व सम्मान न दिया जाना आदि ।

प्रस्तुत संदर्भ में मालती जोशी की 'पिया पीर न जानी' कहानी उल्लेखनीय है । कहानी में रसिका और उसकी बहन का अपने घर में ठीक से परवरिश नहीं होता । एक बेटे की चाह रखनेवाला पिता लड़कियों की पढ़ाई-लिखाई एवं उनकी ज़रूरतों पर ध्यान नहीं देता । रसिका नर्सिंग होम में पढ़ाई के लिए जाती है और वहाँ एक लड़के से प्यार कर बैठती है । यह

जानकर पिता उससे पूछताछ करता है और उसे मारने तक उतारू हो जाता है । तब रसिका हिम्मत जुटाकर कहती है "यह पूछने का अधिकार आपको किसने दिया? मैं क्या बनना चाहती थी, यह मुझसे कभी नहीं पूछा गया । हम लोग जिन्दगी भर दूसरों की दया पर जीते रहे । भूल ही गए कि हमारा अपना भी एक मन है । उसकी कोई अभिलाषा है ।"[81] उसके पिता ने एक पिता होने का फर्ज कभी भी अदा नहीं किया था । ऐसे में इस बात को लेकर उसका इनकार, रसिका के लिए मान्य नहीं था । इसलिए वह अपने प्रेमी के साथ भाग जाती हैं । माँ भी उसका साथ देती है ।लेखिका की एक और कहानी 'मुक्ति-पर्व' में इस मुद्दे को फिर से उठाया गया है । इसकी नायिका रंजना उसकी माँ के समान खूबसूरत नहीं है । माँ हमेशा सुन्दरता को लेकर उसकी मज़ाक उठाती है। घर में चैन से जीना उसके लिए मुश्किल हो जाता है । रंजना अपना क्लास मेट सुनील रायज़ादा से प्यार करती है जो एक शेड्यूल्ट कास्ट का है । इस मामले को लेकर माँ-बेटी में गप-शप बनी रहती है । वह अपने परिवारवालों से उसे मिलवाना चाहती है । वह साहस बटोरकर कहती है "वह सिर्फ मेरा क्लासमेट नहीं है, और भी कुछ है । इसलिए मैं चाहती हूँ कि आप एक नज़र उसे देख लें ।"[82] इस तरह उसका खुला बर्ताव घर को हिलाकर रख देता है । परिवारवालों से ठुकराये जाने पर भी सिर उठाकर जीने का सभी सामान वह ईज़ाद कर चुकी थी ।मलयालम की लेखिका सारा तोमस की 'ओरमकलुडे वेलिच्चत्तिल' कहानी में नायिका श्रीदेवी वार्यर नायक युवक से प्यार करती है । घर में उसकी शादी की बात ज़ोरों पर चल रही थी । परिवारवाले उसकी पसंद के बारे में जानने की कोशिश तक नहीं करते । ऐसे में उसके सामने प्रेमी के साथ भाग जाने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचता । वह भाई के नाम पर खत छोड़कर

---

[81] मालती जोशी - पिया पीर न जानी - पृ. 34-35

[82] मालती जोशी - पिया पीर न जानी पृ. 51

अपने प्रेमी के साथ चली जाती है । परिवारवालों की बातों में न आकर ये नायिकाएँ अपनी जिन्दगी को एक नया आयाम दिलवाना चाहती है ।

3.1.2 अकेले जीने का फैसला

आज स्त्रियाँ नौकरी करने लगी हैं । नौकरी के ज़रिए वह समाज में अपनी पहचान बना चुकी है । उनके पास खुद का घर, गाड़ी और पैसा सबकुछ है । यह आर्थिक स्वतंत्रता ही अकेले जीने का फैसला करती स्त्रियों की आत्मविश्वास की कुंजी है । ये स्त्रियाँ वैवाहिक जीवन की झंझट में पड़कर यह सब खोना नहीं चाहती । इनके विवाह न करने के कारण कई हैं । नासिरा शर्मा कहती है "अकेलेपन की पुरानी परिभाषा अविवाहित होना है परंतु नई परिभाषा का अर्थ है एक नई ज़िन्दगी की शुरुआत, एक नई स्वतंत्रता का एलान, जिसमें सब कुछ है, मगर प्रताड़ना अपमान, असुरक्षा,आँसू, आह, अविश्वास नहीं है । जो अंजाम है अच्छा या बुरा वह आपका अपना हिस्साहै, क्योंकि उसको आप स्वयं चुना है । यह नई जीवन-शैली वर्तमान परिस्थितियों में किसको कितनी रास आती है यह भी आनेवाला समय तय करेगा ।“[83] किसी की गुलामी को स्वीकार करने के लिए ये स्त्रियाँ तैयार नहीं है । बढ़िया नौकरी, तन्ख्वाह प्राप्त करनेवाली ये स्त्रियाँ अपनी पसंदीदा कपडे पहनकर, मनचाहा स्थानों पर घूम फिर कर एक आबाद ज़िन्दगी जीना चाहती है । लेकिन समाज इन औरतों को सहजता से स्वीकारने का मन आज तक नहीं बनाया है । भूमण्डलीकृत समाज में इन स्त्रियों के साथ विधवा एवं वृद्ध भी अकेले ही अपने जीवन को आगे बढ़ाने में सक्षम है ।

मलयालम कहानीकार चन्द्रिका की ‘इनि नी परयुका’ कहानी की नायिका गंगा

---

[83] नासिरा शर्मा - औरत के लिए औरत - पृ. 164

पेशे से नर्स है । एक दिन आस्पताल के सामने एक दुर्घटना घटती है । उस दुर्घटना में घायल देवदास उसका गाँववाला था । इसलिए गंगा बहुत आत्मीयता से उसकी देखभाल करती है । अमीर देवदास उसके सामने शादी का प्रस्ताव रखता है । लेकिन गंगा इनकार करती है । क्योंकि नर्स बनने से पहले उसे गरीबी से त्रस्त जीवन से उभरने के लिए छोटा-मोटा काम करना पड़ा था । इन्हीं कामों से उसने अपनी पढ़ाई के लिए पैसा जुटाया था । अपने दम पर हासिल की गयी इस मुकाम को वह शादी के बाद बर्बाद करना नहीं चाहती । वह समझती थी कि शादी के बाद जीवन की जिम्मेदारियाँ इसकी आडे आ जाएगी । इसलिए वह अकेले जीने का फैसला लेती है । लता लक्ष्मी मेनोन की ' माट्रिमोणियल डोट्ट कोम ' कहानी में नायिका वाणी के लिए वर को ढूँढने की सिलसिला ज़ोरों पर है । वह अपनी माँ से कहती है "मेरी मर्जी के बिना आप क्यों इन रिश्तों को फोर्वेड़ करती है? किसी का अस्तित्व पर सवाल उठाना सही नहीं है ।" [84] विवाह के बारे में उसका विचार है कि विवाह मानव को उसकी सीमा में बाँधकर रखता है । इसमें मानव-मानव को धोखा एवं पीड़ा देता है । इस रिश्ते के जाल में फँसकर वह अपने आपको धोखे में रखना नहीं चाहती । इसलिए वह शादी से इनकार करती हैं ।

पी. वत्सला की तेरेसयुडे कल्याणम्, अषिता की 'चिल सौंदर्य प्रश्नंगल' आदि कहानियों की नायिकाएँ शादी नहीं करना चाहती । ऐसा करके वे अपनी आज़ादी को खोना नहीं चाहती । शादी के बिना स्त्रियों का समाज में रहना पुरुषसत्ता द्वारा मुश्किल करार दिया गया है । इस अवसर पर इन स्त्री पात्रों ने इसे एक चुनौती के रूप में ले लिया है ।

3.1.3 अस्मिता की पहचान

स्त्री आज अपनी अस्मिता को पहचानने लगी है । अपने आपको पहचानना प्रतिरोध की पहली शर्त है । ससुराल में अपने अकेलेपन से ऊबकर एवं अपने व्यक्तित्व की विकास न कर पाने

---

[84] लता लक्ष्मी मेनोन – सिलिकका – पृ . 40

के कारण वह आवाज उठाने लगी है । समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला कहानियाँ अपनी अस्मिता को पाने के लिए संघर्षरत आत्मसंपन्न नारी पात्रों से भरपूर हैं ।

कविता की ' फुरसत के चार दिन ' घर गृहस्थी में बंदी सिक्ता की आत्मपहचान की कहानी है । सिक्ता एक चित्रकार है । शादी के बाद उसे मजबूरन गृहिणी बनना पड़ता है । पति के ऑफिस चले जाने के बाद वह सुबह ही सारे काम निपटा लेती है । लेकिन घर के अकेलापन से वह ऊब जाती है । जब उसका पति राहुल चार-पाँच दिन के लिए बाहर जाता है तब उसे अकेलापन और भी सालता है । वह सोचती है "मैंने खुद से लड़ने का मन बना लिया है । क्यों हावी होने दूँ इस अकेलेपन को, क्यों नहीं जिऊँ अपनी तरह से? क्या कभी सिर्फ अपने लिए नहीं जिया जा सकता? सुबह से शाम तक उसकी दिनचर्या से बँधी हुई रूटीन.... । रोज़ तो इस वक्त ऐसी अफरा-तफरी से मची होती है जैसे किसी जंग की तैयारी चल रही हो ।"[85] नायिका अस्मिता बोध से ग्रस्त है । वह अपने साथ होने वाले अन्याय को पहचानने लगती है । अपनी अधूरी पेंण्डग उसके मन को झकझोरने लगती है । एक चित्रकार के रूप में ही वह अपने व्यक्तित्व को पूर्णता दिलवा सकती थी । इस बात से वह अवगत हो जाती है । अपने आपको पहचानना प्रतिरोध की पहली शर्त है जिसको लेखिका ने सिक्ता द्वारा पेश किया है ।

लता शर्मा ने अपनी कहानी ' मदयंतिका ' में लेखन का शौक रखती मदयंतिका के चरित्र को रेखांकित किया है । वह अपने छात्र जीवन में वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में भाग लेती थी । उसने सहृदय कवि एवं प्रतिष्ठित पत्रकार नीरज जी से यह सोचकर शादी की थी कि उसके शौक को नई गति, नई दिशा और नया आकाश मिलेगा । लेकिन शादी के बाद उसका जीवन खाना बनाने, बच्चे पालने और घर चलाने का पर्याय बन जाता है । वह सोचती है "किसी चक्की की तरह

---

85 मेरी नाप के कपड़े ,कविता पृ .34

गोल-गोल घूम रही है । पिस रही है उसकी जिन्दगी.... और दो-चार ज़िन्दगियों के लिए । वो स्वयं वहीं की वहीं है । क्या इसे ही 'स्थगित जीवन्तता' कहते हैं - सस्पेंडेड एनीमेशन ।"[86] वह अपनी जिन्दगी के बारे में दोबारा सोच विचार करने लगती है । क्योंकि घर में उसको अपना हैसियत नौकर रामू से ज़्यादा कुछ नहीं लगता । उसका स्वत्व इस अवमानना का सहन नहीं कर पाता । इसलिए वह घर छोड़कर अपनी राह ढूँढ लेती है ।

ममता कालिया की 'बोलनेवाली औरत' कहानी में एक बोलनेवाली औरत का चित्रण किया गया है जिसका नाम दीपशिखा होने पर भी वह अपने आपको अग्निशिखा कहती है । वह अक्सर अपने आपको अग्निशिखा की तरह प्रज्वलित रखना चाहती थी । उसकी वक्तृता से प्रभावित होकर ही कपिल ने उसके सामने शादी का प्रस्ताव रखा था ।लेकिन शादी के बाद इसी कारण से ही वह बदतमीज़ और बदजुबन कहलाई गई । ससुराल में अपने व्यक्तित्व का विकास न कर पाने के कारण वह बहुत तनाव में आ जाती है । "उसे लगाता है घर में जैसे टायलेट होता है ऐसे एक टॉकलेट भी होना चाहिए जहाँ खड़े होकर वह अपना गुबार निकाल ले, जंजीर खींचकर बातें बहा दे और एक सभ्य शांत मुद्रा में बाहर आ जाए... । घर को सुचारू रूप से चलाने के लिए सिर्फ दो शब्दों दरकार थी जी और हाँ जी ।"[87] उसने अपनी ज़िन्दगी के लिए एक अलग तस्वीर देखी थी लेकिन नियति ने उसे एक फुलटाइम गृहिणी बना कर रख दिया । जिन्दगी ने उसे मालूम कराया कि एक इनसान को प्रेमी की तरह जानना और पति की तरह पाना अलग-अलग होता है । इतना सबकुछ होने के बावजूद वह अपना मुँह बंद नहीं करती सारे तनाव से उभरने के लिए वह अपने शब्दों को हथियार बना लेती है ।

---

[86] आखिरी नाम अल्लाह का - लता शर्मा - पृ. 11

[87] ममता कालिया -बोलनेवाली औरत - पृ. 9

मलयालम लेखिका सिल्विक्कुट्टी की कहानी 'मष्रा' में आशा शादी के बाद अपने साथ हो रहे अन्याय को धीरे-धीरे पहचानने लगती है । वह सोचती है कि "यह तो मैं नहीं? इस तरह घुटती, अत्याचार सहती, बेशर्म भय नहीं हूँ मैं । अगर चाहूँ तो एक पल में सब कुछ तोड़कर बाहर निकल सकती हूँ.... मैं अब अपने आपको पहचान चुकी हूँ, अवश्य मैं, मैं बनूँगी ।"[88] स्वतंत्रता एवं नए मूल्योंको आर्जित करने के लिए जिस मानसिक प्रौढता एवं आत्मविस्वास की आवश्यकता है, वह इस कहानी की नायिका आशा में है । इस प्रकार अपनी अस्मिता की पहचान प्रतिरोध की पहली शर्त है, जिस पर आशा खरी उतरती है ।

3.2 स्त्री जीवन का पारिवारिक संदर्भ

परिवार समाज की मूलभूत इकाई है । समाज का कोई भी परिवर्तन हो, वह परिवार से ही शुरू होता है । "परिवार" की परिकल्पना ही एक सुरक्षित स्थान के रूप में की गयी है । वहां पर मानव अपनी थकान, चिंता एवं बाहरी आक्रमणों से निजात पा लेता है । लेकिन परिवार में स्त्री की स्थिति पर नज़र डाले तो रक्षकों का भक्षक बनने की प्रक्रिया साफ-साफ दिखाई पड़ती है । जहाँ पर मर्द औरत के रिश्ते चाहे बाप-बेटी का हो, माँ-बेटा, भाई-बहन या पति-पत्नी का हो उनमें समानता दिखाई नहीं देती । इसलिए स्त्री के अन्तर्मन में घुटन का एहसास सहज रूप में विद्यमान रहता है ।2005 में पारित 'घरेलू हिंसा संरक्षण अधिनियम ' में स्त्री को पूर्ण सुरक्षा दी गयी है । भारतीय संविधान के आर्टिकल 14 के अनुच्छेद 5 में कहा गया है कि किसी को शारीरिक यातना न दी जाएगी और न किसी के प्रति निर्दयतापूर्ण अमानुषिक या अपमानजनक व्यवहार होगा । परिवार में स्त्री को इसके बदले ऐसा एक खुला वातावरण मिलना चाहिए जहाँ वह

---

[88] शिल्विक्कुट्टी - अन्नयुम् करत्तावुम् - पृ. 72

अपने आपको पहचान दिलवा सके । अन्यथा ये संबन्ध शोषण मुक्त नहीं रहेगा । समकालीन हिन्दी-मलयालम लेखिकाओं ने 'पारिवारिक अवधारणा' को खारिज करने की बजाय उसकी रूढ़ियों के खिलाफ अपना प्रतिरोध दर्ज कर रही है । वे प्रतिरोध को आज़मा कर 'परिवार' की धारणा को नया अर्थ देने की कोशिश में रत हैं

3.2.1 माँ की संवेदना

माँ एक स्त्री है । इसलिए इस बदलते वक्त में बेटी के सपनों और आकांक्षाओं को माँओं ने समझ लिया है । वह अपनी बेटियों को उस व्यवस्था के शिकंचे से बचाना चाहती है जिसके शोषण का शिकार वह खुद बन चुकी है । इस प्रकार परिवार में माँ अपनी बेटियों की इच्छाओं की कदर कर अपनी बेटी के सपनों की निर्णायिका बनती है । आज की हिन्दी-मलयालम कहानियों में लेखिकाओं ने ऐसे नारी पात्रों का निर्माण किया है, जो अपनी बेटी को परिवार में स्पेस देने की हिम्मत रखती है । इन कहानियों में नयी स्त्री की मुक्ति यात्रा का संकेत स्पष्ट है ।

मीराकांत की 'गली दुल्हनवाली' कहानी में ऐसी एक माँ के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है जो अपनी बेटी के लिए पति से संघर्ष करती है । दो बेटियों के बाप अकबर से नगीना का पति रज्जाक, अपनी बेटी नरगीस की शादी पक्की करता है । यह खबर सुनकर नगीना चीखती हुई कहती है "मैं ऐसा नहीं होने दूँगी ।...तू बाप है कि जल्लाद ।... बेच के खायेगा बेटी को । ....इससे तो अच्छा है कि इस मासूम को कमेले जाकर जिबह कर दे ।"[89] रज्जाक पैसे की खातिर बेटी को अपने हम उम्र आदमी को बेचने के लिए उतारू हो जाता है । लेकिन उस मासूम बच्ची की माँ होने की खातिर नगीना ऐसा होने नहीं देती । अपनी बेटी के वास्ते वह डटकर खड़ी रहती है ।

---

[89] मीराकांत - गली दुल्हनवाली - पृ. 190

कविता की 'उलटबाँसी' कहानी भी इस समस्या की ओर संकेत करती है । अपूर्वा, अनुज से प्यार करती है, जो एक साधारण-सी नौकरी करनेवाला है । लेकिन उसके तीनों भाई, उसके इस पसंद के खिलाफ हैं । तब माँ अपनी बेटी का साथ देती है । वह कहती है "मैंने तो अपने सारे बच्चों की इच्छाओं और सपनों की कद्र की है, मेरे बेटे की तरह अपूर्वा को भी अपनी जिन्दगी चुनने का हक है और मैं उसका साथ ज़रूर दूँगी ।"[90] जब कोई लड़की अपनी पसंद की शादी करना चाहती है तब पुरुष सत्तात्मक मानसिकता से ग्रस्त लोग उसके खिलाफ हो जाते हैं । इस संदर्भ में माँ ही अपनी बेटी का साथ दे सकती है । समकालीन समय में माँओं की सोच में आ रहे बदलाव की ओर इशारा करती है यह कहानी ।

मालती जोशी की 'गतांक से आगे' कहानी भी इस तथ्य को केन्द्र में रखकर लिखी गयी है । कथावाचिक की साँसू माँ तथा ससुरालवाले सब बेटे की चाह रखनेवाले हैं । जब उसे बेटी ही पैदा होती है तो सास उसे कोसना शुरू कर देती है । घऱवाले उस बच्ची का जन्मदिन तक नहीं मनाते । लेकिन एक माँ होने के नाते वह अकेली अपनी बच्ची का जन्मदिन मनाती है । जब उसे दूसरी बार भी बेटी हो जाती है तो सास उसके परिवारवालों को ताने देती है ताकि उसके अपने घर में भी तीन बेटियाँ थीं । यह सुनकर उसकी क्षमा का बाँध टूट जाता है । वह कहती है "हाँ हम तीन बहनें ही थीं, पर हमारे माता-पिता ने हमें कभी यह अहसास नहीं होने दिया कि हम अनचाही संतान है । मैं भी अपनी बेटियों को यह कभी महसूस नहीं होने दूँगी ।"[91] वह परिवारवालों की इस हेय दृष्टि को अपने बच्चियों पर हावी न होने का फैसला करती है । वह अपनी बेटियों के अधिकार हेतु संघर्ष करने की मानसिकता बना लेती है ।

---

[90] कविता – उलटबांसी –पृ 187

[91] मालती जोशी –पिया पीर ना जानी – पृ 16

लता शर्मा की कहानी 'तीसरी बेटी के नाम ये ठंडे, सूखे, बेजान शब्द' में भी कथावाचिका को तीसरी बार भी बेटी ही पैदा होती है । घर में एक और लड़की की पैदाइशी पर निराश होकर बुजुर्ग बुआ कहती है कि तुझे बनाते समय मिट्टी कम पड़ गई थी?" [92] यह सुनकर माँ को ऐसा लगा कि पैदा होते ही उसकी बेटी को नंगा कर दिया जा रहा है । इसलिए चादर ओढ़ाकर वह अपनी बेटी का आदर लौटाती है । वह कहती है "बुआ ऐसे मत बोल! यह मेरी बेटी भी है और बेटा भी । बेटा होता तो भी इतनी ही तकलीफ देकर, इतना ही खून बहाकर पैदा होता है ।"[93] माँ के लिए बेटा हो या बेटी एक जैसा ही होता है ।

इस कहानी में कथावाचिका उस ईश्वर से भी अपना प्रतिरोध ज़ाहिर करती है जिसने स्त्री को बनाते वक्त भेद-भाव दिखाया था । जब उसकी बेटी की शादी हो जाती है । तब ससुराल में उसके प्रति अत्याचार इतना बढ़ गया था कि ससुरालवालों के हाथों वह मर जाती है । भगवान को दोषी ठहराते हुए माँ आत्मगत करती है "पर सुन मेरी बच्ची! अपनी कटी हुई हथेलियाँ न फैलाना उस बनानेवाले के सामने कि पिछली बार तुझे बनाते समय उसने जो भूल की थी, उसे सुधार ले! नहीं । तुझे तो फिर-फिर वही बनाना है! फिर-फिर औरत! सौ जनमों तक औरत! तब तक औरत, जब तक तेरे हिस्से का आसमान तेरे और सिर्फ तेरे नाम न कर दिया जाए ।"[94] समाज में लड़कियों पर हो रहे अत्याचारों से मुँह मोड़कर बैठे भगवान से वह अपना प्रतिरोध जताती है । वह किसी को भी सामने भीख माँगना नहीं चाहती औरत ही बने रहकर इन सब अत्याचारों के खिलाफ संघर्ष करना चाहती है । इतना ही नहीं समाज की सभी औरतों को इस मुकाम तक पहूँचाना भी चाहती है । जब तक समाज औरत के अधिकारों के प्रति सजग नहीं होता, उसे

---

[92] लता शर्मा – आखिरी नाम अल्लाहताला का – पृ 128

[93] [93] लता शर्मा – आखिरी नाम अल्लाहताला का - पृ 129

[94] लता शर्मा - आखिरी नाम अल्लाहताला का - पृ 131

इज़्ज़त की जिन्दगी जीने की स्वतंत्रता नहीं देता तब तक संघर्ष करते रहने की सलाह वह देती है ।

नासिरा शर्मा की कहानी ‘अपनी कोख’ इस समस्या की ओर ही इशारा करती है ।

साधना के ससुरालवाले लड़के की चाह रखते हैं । लेकिन उसके नसीब में बेटी लिखी गयी थी । दूसरी बार जब वह गर्भवती होती है तब सब लोग मिलकर जाँच करवाते हैं । जाँच के दौराने उनको बेटी होने की भनक लगती है । वे लोग बच्चा गिराने के लिए कहते हैं । लेकिन साधना मना करती है । तीसरे गर्भ की जाँच करवाने पर उसे लड़का होने की खबर मिलती है । लेकिन अब वह लड़के को जन्म देना नहीं चाहती क्योंकि घर में लड़के के आ जाने से उसकी बेटियों पर उसका बुरा असर पडेगा । अपनी दोनों बच्चियों का घर में दूसरे दर्जे का हो जाना उसके बर्दाश्त के बाहर की बात था । वह सोचती है "लड़कियों में भेद करनेवाला यह समाज तब तक बलवान बना रहेगा जब तक नारी उसके इशारे पर चलती रहेगी । कोख उसकी है, वह चाहे तो बच्चा पैदा करे और न चाहे तो न पैदा करे । चयनकर्ता वही है, अगर वह मर्दों को पैदा करना बन्द कर दें तो इस समाज का क्या होगा, जिसके ठेकेदार अपनी ही जननी के विरोध में हत्याओं का कालिफा बना रहे हैं?"[95] वह अपनी बेटियों के जीवन को अपनी इच्छा से आकार देना चाहती है । वह बेटे की भ्रूण को गिराती है । क्योंकि इससे उसकी बच्चियों की खुशियाँ बरकरार रहें । यहाँ माँ अपनी बच्चियों की खातिर ऐसा करने के लिए मजबूर हो जाती है ।

मलयालम की लेखिका माधविक्कुट्टी की कहानी ‘पारितोषिकम्’ की माँ अपनी बेटी को पूरी स्वतंत्रता देती है ताकि वह अपने इच्छानुसार ज़िन्दगी का गुज़ारा कर सके । लेकिन बेटी के लिए इतनी छूट परिवारवालों को हज़म नहीं आता । लड़की की दादी माँ उसे पाक्कला सिखाने के

---

[95] नासिरा शर्मा - मेरी प्रिय कहानियाँ - पृ 16

लिए कहती है ताकि भविष्य में उसके लिए काम आये । तब माँ कहती है "सिर्फ मछली पकाने से, पति को वह अपने कब्जे में नहीं कर सकती । शराब पीकर आनेवाले पति को अपने नियंत्रण में लाने के लिए पर्याप्त सामर्थ्य तो अवश्य होना चाहिए ना ।"[96] माँ अपनीबेटी को सभी कठिनाइयों का सामना करने की सीख देती है । वह बेटी को घर-गृहस्थी में जकड़ी गृहिणी नहीं बल्कि एक सबल एवं आत्मनिर्भर औरत बनाना चाहती है ।

हिन्दी और मलयालम लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में माँ के रूप में स्त्री की निर्णायक भूमिका को पेश किया है । परिवार में ये माँएं सदा अपनी बेटियों का साथ देकर, पितृसत्ता द्वारा सदियों से उनके साथ किए जा रहे । भेद-भाव को मिटाने की कोशिश में है । पूरे परिवार के खिलाफ जाकर वे अपनी बेटियों के निर्णय के पक्ष में खडी हो जाती हैं । उनकी यह क्षमता परिवार में हलचल पैदा कर देती है । परिवार में लड़कियों को अपना हक दिलाने में ये सबल माएं सफल सिद्ध हुई हैं । हिन्दी और मलयालम कहानियों की तुलना करें तो स्त्री का यह रूप मलयालम में कम दिखाई देता है फिर भी वह बहुत सशक्त है ।

3.2.2 पति-पत्नी संबन्ध

भारतीय संस्कृति में पति-पत्नी संबन्ध को सबसे पवित्र माना गया है क्योंकि परिवार नाम की नाजुक संस्था पति-पत्नी के कंधों पर ही टिकी है । स्वस्थ परिवार के लिए इस रिश्ते में एक-दूसरेके प्रति समर्पण का भाव होना ज़रूरी है । इसके लिए एक का कद दूसरे के कद से बराबर होना है । पति-पत्नी के इस संवेदनशील रिश्ते के अंतर वर्चस्ववादी संस्कृति ने अपना आसन ग्रहण कर लिया है । बहुत कुछ सहने के बाद आज स्त्री इस संस्था में छिपी स्त्री विरोधी षड्यंत्र

---

[96] मधावीकुट्टी – पारितोषिकम – पृ 32

को समझने लगी है । इसलिए वह इस रिश्ते को बनाये रखने के लिए पहले पुरुषवर्चस्व को खत्म करने पर ज़ोर देती है ताकि वहाँ स्त्री दमित एवं शोषित न हो ।

आज की स्वतंत्रचेतना नारी वर्चस्ववादी दमन के खिलाफ है । अनामिका लिखती है "नई औरत अगर तादात्म्य बैठाएगी भी तो नए पुरुष से ही, जो उसकी टक्कर का होगा । और उसकी टक्कर का कौन होगा? जो साथ निभाना जानेगा ।"[97] मतलब यह है कि वैवाहिक जीवन को सफल बनाने के लिए सिर्फ स्त्री की मानसिकता में ही नहीं पुरुषों की मानसिकता में बदलाव लाने की ज़रूरत है । अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी निभ नहीं पाए तो आज स्त्रियाँ तलाक माँगने से भी हिचकती नहीं । नई औरत बराबरी का पक्षधर है । स्त्रियों का यह प्रतिरोधी तेवर समकालीन हिन्दी-मलयालम कहानियों का विषय बन गया है ।

नासिरा शर्मा की 'कैदघर' कहानी की स्त्री पात्र वकीलन अपने ही घर में कैद है । वकील अपने काम में इतना मग्न रहता है कि उसे अपनी पत्नी को मायके ले जाने तक की फुरसत नहीं मिलती । अगर वकीलन अकेली जाना चाहती है, तो भी वकील उसे नहीं जाने देता । बच्चों की परवरिश एवं लड़कियों की शादी के बाद उस बडे घर में वकीलन का दम घुटने लगता है । वह घर में बात-बात पर बिगड़ने एवं आवाज़ उठाने लगती है । एक बार उसकी आवाज़ इतनी ज़ोर पकड़ लेती है कि वकील उससे आहिस्ता बोलने के लिए कहता है । तब उसके मन के सारे तनाव फूट-फूटकर बाहर निकलने लगता है । वह कहती है "कही जाने देते हैं जो मैं आहिस्ता बोलूँ? पूरे तीस साल से मैं इस घर में कैद हूँ । बचपन बीता, जवानी गुजरी, अब अधेड़ हुई कभी तो घुमाने ले जाइए? मायके मत जाओ, बहन के घर मत जाओ, बस दरोगा बन इस घर की रखवाली करो

---

[97] मन मांझने की ज़रूरत – अनामिका – पृ 80

कौव्वा हकनी बनी। ...काम के साथ तुम ताज़ा हवा खा लेते हो, कुछ नए चेहरे देख लेते हो, हँस-बोल लेते हो, मगर मैं.... क्या इन दीवारों से सर फोड़ूँ.... ।"[98] एक और जगह वह कहती है "कोई मेरी परवाह नहीं करता। कोई नहीं समझता कि मैं इस घर में कितना घुटती हूँ, मुझे आज़ादी चाहिये ताज़ा हवा चाहिये ।" [99]अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने के बाद वह घूमना-फिरना चाहती है। लेकिन सालों तक गृहस्थी को ढ़ोती रहने के बावजूद भी कोई भी उसकी इस इच्छा की परवाह नहीं करता। इसलिए वह इस कैदघर से आज़ाद होना चाहती है। अपना यह फैसला पति और बेटे को सुनाकर वह अपना प्रतिरोध प्रकट करती है।

ममता कालिया की ‘बोलनेवाली औरत’ कहानी में गृहस्थी के तनाव से उभरने के लिए अपने पति एवं बच्चों के साथ घूमने की इच्छा जाहिर करती है। लेकिन पति मना कर देता है। तब वह कहती है " इसका मतलब हम कहीं नहीं जाएँगे, यही पडे-पडे एक दिन दरख्त बन जाएँगे। सिम्मी अर्षिता ‘कब्रगाथा’ कहानी में अपनी कब्र रूपी वैवाहिक जीवन से मुक्त होती रतिका के चरित्र को अंकित करती है। कहानी में पति को पत्नी से बातें करने एवं उसकी खुशियों पर ध्यान देने तक का वक्त नहीं रहता। वह बात-बात पर पत्नी पर शक करता है। एक दिन वह अपने दोस्त के परिवार के साथ पत्नी को लेकर पिकनिक जाता है। वहाँ पर लिए गए फोटो में पत्नी के साथ दोस्त को देखकर, वह रतिका को तमाचा मारता है। घुटन एवं अत्याचारों से भरी जिन्दगी से तंग आकर रतिका कहती है " अरे तोहमती नामर्द ! तो तुम भी अपने आपको पति कहते-मानते हो? तुम्हें भी एहसास है पति होने का और पत्नी पर अपने कानूनी अधिकारों का? यूँ मारकर अपना तथाकथित पौरुष जताते हो ? तुमसे और आशा भी क्या की जा सकती है? ....यदि में एक

---

[98] मेरी प्रिय कहानियाँ – नासिरा शर्मा – पृ 110

[99] वहीं पृ 115

अंधेरी सुरंग से गुज़र रही हूँ तो तुम्हारी सुरंग भी तो उतनी ही अंधकारमय है, यह ताना-बाना भी बार-बार न बुना होता और अपने को उसमें उलझाकर दुर्बल न बनाया होता तो विवाहित जीवन की इस अविवाहित कब्रगाथा से मुक्त हो जाती ।"[100]पत्नी पर हाथ उठाकर अपने पौरुष को जाननेवाला पति को वह दुत्कारती है । पत्नी के मुँह से अचानक इतना सुनने के बाद पति का मन परिवर्तन होता है । उसकी घर-गृहस्थी ठीक से चलने लगती है ।

घर-गृहस्थी का बोझ ढोकर थक चुकी रमा की कहानी है मालती जोशी की ‘ पिया पीर न जानी’ । रमा का पति अपनी बेटी के मरने के बाद सांग मनाने तक का फुंरसत न देकर उससे चाय बनाकर लाने को कहता है । तब वह अपनी मन की गहराई में सुप्त पडी सारी विषमताओं को शब्द देने लगती है । वह कहती है " देख रही हूँ कि तुम मुझे मिसरानी से ज़्यादा कुछ समझते भी हो या नहीं.... जाकर बना क्यों नहीं लेते ।" [101]अपनी बेटियों के लिए ही वह आज तक सबकी चाकरी बजाती रहती थी । लेकिन अब उसको किसी की भी परवाह नहीं रहती । पति के पुरुषवर्चस्ववादी रवैये को तोड़ मरोड़ने के लिए अब वह हिचकती नहीं ।

मलयालम की लेखिका जानकी की ‘पञ्चक्कुतिरकलेत्तुम्पोल’ कहानी में रीत्ता को पति एक नौकरानी से परे नहीं मानता । कहानी में घर के इस वातावरण से ऊब चुकी रीत्ता के चरित्र परप्रकाश डाला गया है । एक दिन सुबह वह अखबार में एक विज्ञापन देखती है ‘महीने 2500 रुपये तन्ख्वाह में घर के सारे काम करने के लिए एक औरत की ज़रूरत है । विज्ञापन को पढ़कर वह अपने पति अलक्स से कहती है "तुम्हें शादी के बदले ऐसा एक विज्ञापन देना चाहिए था ।"[102] मनुष्य होने कीन्यूनतम गरिमा से वंचित रीत्ता अपनी स्वतंत्र जीवंत अस्मिता से

---

[100] बोलनेवाली औरत – ममता कालिया – पृ 11

[101] पिया पीर न जानी - मालती जोशी – पृ 23

[102] ‘पञ्चक्कुतिरकलेत्तुम्पोल’ – जानकी पृ – 31

परिचित कराती है। अपने पति के प्रति उसकी घृणा इस कदर बढ़ जाती है कि वह अपनी बच्ची को दूध पिलाने से भी कतराती है। बच्ची के मुँह में बोतल घुसाकर पति से वह कहती है "यह तो मुसलाधार वर्षा के बच्चों को पिलाने के लिए है।"[103] घर के इस शोषणयुक्त माहौल में वह अपने आपको फिट नहीं कर पाती। इसलिए वह पति को छोड़कर चली जाती है।

अषिता की 'शिवेन सहनर्त्तनम्' कहानी में अनुराधा और रमेश अपने दाम्पत्य जीवन को आगे ले जाने में असमर्थ दिखाई पड़ते हैं। इसलिए दोनों कण्सॉल्टग सेन्टर पहुँचते हैं। डॉक्टर उन्हें एक दूसरे से प्यार एवं विश्वास का दिखावा करने की सलाह देता है। अनुराधा के लिए सन्दर्भानुसार हँसी, चुप्पी आदि का अभिनय करके जिन्दगी का एक-एक दिन काटना मुश्किल हो जाता है। वह अपनी माँ से कहती है " मेरा जीवन मात्र वहम बन गया है माँ, दूसरे का वहम।"[104] अनुराधा को अपना जीवन भ्रम लगता है। सिर्फ दूसरों के सामने खुश दिखाने के लिए पति-पत्नी दिखावा करते हैं। इस दिखावे की जिन्दगी से अनुराधा हमेशा के लिए मुक्त होना चाहती है।

पी. वत्सला की 'अनुपमयुडे कावलक्कारन' कहानी में इच्छानुसार कपड़े पहनने तक की आज़ादी से वंचित अनुपमा के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। अनुपमा को संदर्भानुसार किन-किन कपड़ों को पहनना है इसका फैसला पति करता है। वह अपनी इच्छाएँ पति से खुलकर बता नहीं पाती। पति के ऑफिस चले जाने के बाद वह पसंदीदा कपड़े खरीदकर रखती है ताकि पति के अभाव में उन कपड़ों को पहन सकें। जब दो दिन के लिए पति पिकनिक पर जाता है तब वह उन कपड़ों को ब्रीफकेस में रखकर अपने गॉव जाने का फैसला लेती है ।पति के अभाव मेंवह झूठी लोक मर्यादाओं से मुक्त होना चाहती है । उसका प्रतीकात्मक चित्रण कहानी में यों किया गया है " आइने के सामने खड़ी होकर वह अपने गहनों को एक-एक करके निकालने लगी। वह उस पुरानी

---

[103] पच्चक्कुतिरकलेत्तुम्पोल – जानकी – पृ 32

[104] जिलाविंटे नाट्टिल - अषिता - पृ 13

अनुपमा को निहारने लगी जिसको किसी ने आज तक न देखा । वह अपने कान, गर्दन, हाथ आदि की कोमलता को महसूस करने लगी । वह मंगलसूत्र को सूटकेस में रखकर अपनी पसंदीदा लालपत्थरवाली हार पहन ली ।"[105] मतलब वह स्वतंत्र विचरण करना चाहती है । उसकी हिफ़ाजत के लिए पति द्वारा भेजे गए रिश्तेदार केलू को वह कमरे में बन्द करके घूमने निकलती है । इस प्रकार वह अपनी दबी हुई इच्छाओं को नया रूप देती है और अपना प्रतिरोध दर्ज करती है ।

के.आर. मीरा की ' पश्य ', ' प्रिय ', ' कोंकणे ' कहानी की स्त्री पात्र सती पति के ' टेम्स आण्ड कण्डीषन्स् ' पर जीने के लिए मजबूर है । स्त्रियों की आवाज़ घर से बाहर नहीं निकलनी चाहिए, पति जो कुछ खरीद लाता है उससे खुश रहना है, ऑफिस से थककर घर लौटने पर उसे परेशान नहीं करना आदि उसके कण्डीषन्स थे । सती एक अच्छी पत्नी की तरह इन सब बातों का पालन करती रही । अचानक एक दिन वह मंदिर के पूजारी दिवाकरन के साथ भाग जाती है वह दिवाकरन से पूछती है " घर छोड़कर आना मेरी विवशता थी । दिवाकरन जी, क्या मैं भी एक स्त्री नहीं हूँ? क्या मैं किसी से बात भी नहीं कर सकती? मुझे सुनने के लिए भी कोई है, इस एहसास को क्या मैं महसूस नहीं कर सकती?"[106] इस कहानी में सती एक इनसान की तरह सम्मानजनक स्थिति पाने एवं अपने स्वतंत्र अस्तित्व के साथ जीने के लिए संघर्षरत है । पति द्वारा की जाने वाली उपेक्षा को वह सहती है । जब वह हद से बाहर हो जाती है तब उन बेडियों को वह तोड़ती है ।

1.पी वत्सला- मलयालत्तिंटे सुवर्णकथकल -पृ .164

[106] के आर मीरा - गिल्लट्टिन -पृ. 76

जानकी की 'चिलन्तियुम कोलुत्तुम' कहानी की नायिका मीरा कोख में पल रहे अपने बच्चे को जन्म देने तक के अधिकार से वंचित है। मीरा जब गर्भवती होती है तब सिद्धार्थ उससे अबोर्शन करने के लिए कहता है , क्योंकि वह अब बच्चा नहीं चाहता था। लेकिन मीरा अपने बच्चे को जन्म देने के इरादे में दृढ़ है। पत्नी की इच्छा जानकर पति यह कहकर चला जाता है " इसलिए मनु ने स्त्रियों को स्वतंत्रता से वंचित रखने के लिए कहा है, ताकि वह खुद का निर्णय न ले सकें ।"[107] यह सुनकर मीरा दीवार पर लिखती है कि मनु वह एक कायर इनसान था। प्राचीनकाल की धूल भरे कोने में बैठकर, एक बड़ा-सा जाला बुनकर चला गया कायर मकड़ी। वह अपने निज अनुभव को सार्वभौम यथार्थ के साथ जोड़ती है। वह परंपरा से चली आ रही पुरुषवर्चस्ववादी समाज की मानसिकता के विरुद्ध अपना प्रतिरोध दर्ज करती है।

इन्दुबाला की कहानी ' निनविले नोम्बरम ' का पुरुष पात्र रविशंकर अपनी पत्नी के बारे में बड़ा-चढ़ाकर अपने दोस्त एवं रिश्तेदारों से झूठ बोलता है । जैसे कि घर की इन्टीरि यल डिसाइन पत्नी ने किया है, वह नाचती है, योगा करती है, नारीवाद को लेकर अच्छा लिखती है आदि। इस दिखावे की जिन्दगी से नायिका ऊबकर मायके चली जाती है। इसप्रकार मानसिक शोषण के खिलाफ लड़ने की चेतना वह ईज़ाद कर लेती है।

शारदा चूलूर की कहानी ' अनिरुद्धन्टे दुरवस्था ' का शराबी पुरुष पात्र पत्नी समझकर नौकरानी पर अत्याचार करता है। नशे में धुत अपना विवेक खोए पति को सीता घर से बाहर निकालती है। निकम्मे पति को घर से निकालने की हिम्मत जुटाना स्त्री के प्रतिरोधी तेवर की पहचान दिलाती है।

3.2.2.1 शारीरिक शोषण

---

[107] जानकी - काल्पुरुषण्टे आटम पृ 29-28

बलात् किसी की देह पर काबू पाने की कोशिश, जो पति के हाथों से ही क्यों न हो बलात्कार कहलाता है। पुरुषों ने यह समझ रखा है कि पत्नी से बलात्कार करने का हक उसे तो सात फेरों के साथ मिला हुआ है। इस समस्या को लेकर हिन्दी और मलयालम साहित्य में अनेक कहानियाँ लिखी गयी है।

मीराकांत की ' गली दुल्हनवाली ' कहानी का पुरुष पात्र रज्जाक औरत की देह को अपनी अमानत समझने की मानसिकता से ग्रस्त है। इसलिए वह पत्नी नगीना का शारीरिक शोषण करता है। वह पत्नी को बच्चा पैदा करनेवाली मशीन मात्र समझता है। पत्नी के गर्भवती होने पर भी वह उसका शारीरिक शोषण करता है। एक बार उसकी छेडखानी इस हद तक बढ़ जाती है कि रज्जाक नगीना की जाँघ में सुलगे हुए बीड़ी से चुबाने की कोशिश करता है। तब नगीना रज्जाक को ऐसा धक्का मारती है कि वह दहाड़ खाकर गिर पड़ता है। अत्याचार को सहते-सहते अपने मन को वह इतना मज़बूत बना देती है कि वह पति को मारने से भी चूकती नहीं।

रश्मि मल्होत्रा की कहानी ' स्वाति नक्षत्र ' की नायिका चन्द्रमुखी का पति शराबी है। इसलिए हमेशा उन दोनों के बीच झगड़ा होता रहता है। उसका पति कहने में अमीर था लेकिन दिल का गरीब। बस उसे घर संभालने के लिए नौकरानी चाहिए थी। पत्नी का काम घर में बस इतना मात्र था कि दिन में घर-गृहस्थी संभालों और रात में सज-संवर कर पति की शारीरिक कामनाओं की भूख मिटाए। इस पैशाचिक माहौल में एक बच्चे की चाह भी उसके मन में नहीं आती, क्योंकि वह जानती है कि इस माहौल में बच्चे को पैदा करने का मतलब है उसके साथ अन्याय करना। लेखिका लिखती है "सब कुछ देती हुई, लुटाती हुई भी उसको प्यार की, सम्मान की, अपनेपन की ज़रूरत महसूस होती थी। उसे एक रास्ता, एक खिडकी, एक झरोखा चाहिए

था, जिसमें खड़ी होकर वह अपनी मर्जी से भरपूर तरीके से साँस ले सके।"[108] लेकिन पति उसके मन की इच्छाओं की कदर नहीं करता। शोषण जब सिर पर चढ़ जाता है, वह हालात सुधरने का अधिक इंतज़ार न कर घर से चले जाने का फैसला लेती है, क्योंकि वह अपनी देह को पुरुष के हाथ का खिलौना नहीं बनाना चाहती ।

प्रत्यक्षा की 'यही प्यार है क्या' कहानी का पुरुष पात्र आदित्य अपनी पत्नी किकी के साथ सिर्फ रोमांस एवं मौज-मस्ती करना चाहता है। वह उन दोनों के बीच बच्चा तक नहीं चाहता। वह एक आज़ाद पंछी की तरह जिन्दगी गुज़ारना चाहता है। पति के ऑफिस जाने के बाद किकी अकेलेपन से ऊबने लगती है। एक बच्चे को पाल-पोसने की इच्छा उसमें बलवती होती है। लेकिन आदित्य इनकार कर देता है। उसके लिए पत्नी का शरीर ही सबकुछ है, बाकी सब झंझट से वह मुक्त रहना चाहता है। उसके इस इरादे को समझकर किकी कहती है "तुम्हें सिर्फ इसकी ज़रूरत है। तुम्हारे लिए सिर्फ शरीर ज़रूरी है। मैं तुम्हारे लिए एक ज़रिया हूँ। मुझे तुम्हारे स्पर्श से भी घिन्न है।"[109] आदित्य सिर्फ अपनी इच्छाओं को पत्नी के ऊपर थोपना चाहता है। वह नौकरी की वजह से बाहर निकल सकता था, दूसरों से बातें कर सकता था। लेकिन किकी का उस घर में दम घुटने लगता है। वह अपने पति को धिक्कारने के लिए तैयार होती है।

मलयालम की लेखिका निर्मला की कहानी 'वेन्टय्क्कात्तोरन' में भी इस मुद्दे पर प्रकाश डाला गया है। कहानी का पुरुष पात्र समझता है कि अपने एवं बच्चों की पसंदीदा खाना बनाना ही औरत का कर्तव्य है,साथ - साथ रात में पति की कामवासनाओं की पूर्ती भी करना है। वह कहती

---

108 डॉ. रश्मि मल्होत्रा - ढाल तथा अन्य कहानियाँ - पृ. 70

109 प्रत्यक्षा - जंगल का जादू तिल-तिल - पृ. 35

है "दिन में एक दुश्मन के जैसे दुखाते रहना ही उसको पसंद है... फिर रात में नींद नहीं, उसके प्रति प्यार उमड़ने की मांग करें तो यह कैसा होगा?"[110] सिर्फ कामवासना की तृप्ति ही पति-पत्नी के संबन्ध का आधार है यह मानने के लिए वह तैयार नहीं है ।

रेखा . के अपनी कहानी 'ओट्टक्कारी' में श्रीजा नामक एक एथलेट की बारे में कहती है । शादी एवं बच्चा होने के बाद उसका जीवन एक सरकारी नौकरी में सीमित हो जाता है । पति को उसके संग सोना बेकार लगता है । क्योंकि उसका शरीर सख्त एवं मजबूत है । एक एथलट होने के नाते यह श्रीजा के शरीर की खासियत थी । उसकी वेश-भूषा भी दूसरों से अलग है । इसपर हमेशा पति उसका मज़ाक उडाया करता है । इसप्रकार श्रीजा की दिनचर्या में पति का कोसना भी शामिल हो जाता है । एक दिन रात में वह मन से नहीं चाहती थी कि पति उसे छुए । लेकिन रात के वक्त कमरे में उसकी इच्छा को मरोड़ा जाता है , क्योंकि वहाँ पर पति के चाहने पर शुरू एवं खत्म होती एक मीट चलती है । उस रात भी मोहन उसका मज़ाक उड़ाता है । श्रीजा अपनी असहमति जताती है । तब अतृप्त मोहन उसे गलियाँ देने लगता है । वह झट से फ्लेवर वेस उठाती है और उसके सिर पर मारती है । इसप्रकार वह भविष्य रूपी रेस में जीतने के लिए जिन्दगी के डाक पर झुककर खड़ी रहती है । हालाँकि अपने भविष्य के बारे में निर्णय लेने की क्षमता प्रतिरोधी चेतना से ही उत्पन्न होती है ।

3.2.2.2 तलाक की माँग

पति और पत्नी को यदि साथ-साथ जिन्दगी गुज़ारना मुश्किल हो जाये तो तलाक

---

[110] निर्मला - निंगलेन्ने फेमिनिस्टाक्कि - पृ. 29

लेना सबसे स्वीकार्य बात है । लेकिन इसके लिए हमेशा समाज में स्त्री को दोषी ठहराया जाता है । तलाकशुदा स्त्री के चरित्र पर समाज कलंक लगाता है । लेकिन आज शोषित, पीड़ित स्त्रियाँ परिवार में अपनी विषमतामूलक स्थितियों को पहचानकर अपनी ओर से तलाक माँगने लगी हैं ।

नासिरा शर्मा की 'शामी कागज़' कहानी में खानम मरजिया जो खुद कोर्ट में तलाक का फार्म भरती है । वह दुःख की पराकाष्ठा में पहुँचकर मुट्ठियाँ अपनी जाँघों पर मारकर दुःख और झुँझलाहट के स्वर में वकील से कहती है "वकील साहब, मैं औरत नहीं केवल जूस निकालने की मशीन बनकर रह गयी हूँ। नहीं जानती कि पति-पत्नी का संबन्ध क्या होता है। विवाहित जीवन का क्या उद्देश्य होता है । ....मैं जिन्दगी से थक चुकी हूँ । मुझे निजात चाहिए... मैं जो सह चुकी हूँ,उम्र भर के लिए काफी है । अब मुझे तलाक चाहिए । मेरा सब्र का पैमाना लबरेज़ हो चुका है ।"[111] पति केवल उसे एक नौकरानी समझता है । एक व्यक्ति एवं मनुष्य के रूप में उसकी भी स्वतंत्र पहचान एवं स्वायत्त ज़िन्दगी है यह स्वीकारने के लिए पति तैयार नहीं होता । इसलिए वह पति से तलाक लेना चाहती है ।

कहानी में और एक स्त्री पात्र है । उसका पति हमेशा उसे दुःखी एवं उदास देखना चाहता है । वह औरत वकील से पूछती है "आप स्वयं सोचें, क्या मेरे जीवन की परिधि केवल दुःख होना चाहिए? यदि नहीं तो मुझे इस पुरसे की मुसीबत भरी जिम्मेदारी से आज़ाद करें ।"[112] अपने जीवन के बारे में गहरी आत्मालोचन करती यह स्त्री पात्र अपनी अस्मिता को बचाए रखना चाहती है ।

---

[111] नासिरा शर्मा - शामीकागज़ - पृ. 32

[112] नासिरा शर्मा - शामीकागज़ - पृ. 36

उर्मिला शिरीष की कहानी 'धूप से भी बड़ा' में रमा और बंटी इन्टरकास्ट मार्येज़ करते हैं। पति के आवारागर्दी से तंग आकर रमा उसे छोड़ने का फैसला लेती है। रमा बंटी की आन्टी से कहती है आन्टी मैं आज सदा के लिए इस घर को छोड़कर जाती हूँ। जैसा अपने साथ कुछ नहीं लायी थी - वैसे ही आज जा रही हूँ, केवल जाने का किराया खर्च लिया है। ...मैं बन्टी से तलाक लेना चाहती हूँ।"[113] रमा बन्टी से तलाक लेती है और उसे चाहने वाला सुनील के साथ सुखी जीवन बिताती है। अपनी वजूद को तलाशती यह स्त्री अपने भविष्य को मद्दे नज़र रखते हुए जीने के लिए नए मार्ग खोज निकालती है।

मलयालम की लेखिका तनूजा एस. भट्टतिरी की कहानी 'गायत्री मंत्रम् चोल्ली' में गायत्री और सादिक्क प्रेम विवाह करते हैं। शादी के कुछ साल बाद सादिक्क मारक बीमारी से पीड़ित होता है। बीमारी की वजह जानने के लिए डॉक्टर त्तक्ष्ज् टेस्ट करने का निर्देश देता है। इसी कारण सादिक्क अपना विवेक खो बैठता है और गायत्री पर शक करने लगता है। वह गायत्री को बदचलन कहता है। अपने चरित्र पर कलंक लगाने वाला सादिक्क से गायत्री नफरत करने लगती है। जब सादिक्क की बीमारी हट जाती है तब वह गायत्री से माफी माँगने आता है। लेकिन गायत्री अपने वजूद को गलत ठहराए उस आदमी के साथ जीने के लिए तैयार नहीं होती। वह समझती है कि ऐसा करने का मतलब है अपने को धोखे में रखना। यह उसके लिए हरगिज़ मंजूर नहीं था। वह सादिक्क से तलाक लेती है।

इन्दु मेनोन की 'मिन्डामिन्डिक्कायकल कैयक्कातिरिक्कान' अवलोडोप्पम् घनश्यामनुम्" कहानी में रैसाद और मुकुन्दन दोनों सुमित्रा से प्यार करते थे। मुकुन्दन सख्त मिज़ाजवाला था। सुमित्रा मन ही मन रैसाद को चाहती थी। लेकिन परिवारवाले उसकी शादी मुकुन्दन के साथ करवाते हैं। उस समय अपनी पसंद को खुलकर कहने की हिम्मत उसमें नहीं थी। 24 वर्ष के

---

[113] ऊर्मिला शिरीष - लकीर तथा अन्य कहानियॉ-पृ.101-102

वैवाहिक जीवन के बाद भी रैसाद एवं गायत्री का प्रेम बरकरार रहता है। उम्र की इस दौर में वह रैसाद के साथ जीना चाहती है। गायत्री सबकुछ छोड़कर रैसाद के साथ चली जाती है। गायत्री कहती है "मुझसे भेजा गया तलाक के कागज़ात घर में हंगामा मचा दिया था। उस दिन मुकुन्दन बिल्कुल निस्सहाय था। उसका मुँह एक मुर्दे के समान पीला पड़ गया था। उसने यह सोचा था कि तलाक के कगार पर खड़े इस दाम्पत्य को बच्चा साय के ज़रिए जोड़ा जा सकता है.... लेकिन वह कितना बुद्ध था। 24 वर्ष तक साथ जिन्दगी गुज़ानेवाली एक स्त्री से उसने थोडी सी दया चाही थी लेकिन मेरा मन न हिला, शब्द बिल्कुल न काँपे।"[114] उस पर ज़बरदस्ती थोपे गये वैवाहिक जीवन की जकड़न से वह आज़ाद हो जाती है। वह तलाक लेकर बाकी जीवन अपने प्रेमी के साथ जीने का फैसला लेती है।

मलयालम और हिन्दी की इन कहानियों में स्त्री की मानसिक यातना और उत्पीडन का अनुभव प्रत्यक्ष है। एक दूसरे को ठीक से जानने-समझने वाले स्त्री-पुरुष ही समझदार और संवेदनशील जीवनसाथी बनते हैं। उनके संबन्ध को दो अधूरों का सह अस्तित्व नहीं बल्कि एक दूसरे के विचारों और अनुभूतियों को आपस में बाँटने का जरिया समझना है। तब स्त्री यह समझ पाएगी कि वह पुरुष की पूरक मात्र नहीं है। उसकी भी अपनी स्वतंत्र पहचान है। समकालीन लेखिकाएँ परिवार में स्त्री के साथ किए जा रहे निरर्थक रवैए पर प्रहार कर रही है।

1.2.2.3 दूसरी औरत की समस्या

परिवारवालों के बीच हो या बाहर किसी दूसरी औरत के साथ संबन्ध बनाना पुरुषों में आम बात बन गया है। लेकिन इन पुरुषों के साथ जीने के लिए आज की स्त्री तैयार नहीं है। सुधा अरोड़ा की कहानी "पीर पर्वत हो गई है" की नायिका निर्मल पति के नाजायज संबन्ध का

---

[114] इन्दु मेनोन - कथकल - पृ. 60-61

पता चलने पर अपने बच्चे को लेकर मायके चली जाती है। पति प्रदीप का नाजायज संबन्ध विधवा भौजाई के साथ था । ससुरालवाले निर्मल से तलाक की माँग करते हैं । वह इनकार करती है क्योंकि वह जानती है कि तलाक के दूसरे ही दिन प्रदीप किसी और से शादी करेगा। इसलिए वह प्रदीप के सामने एक शर्त रखती है "जिनके कारण यह सब बखेडा हुआ है, आप उन्हीं से शादी क्यों नहीं करते.... यही कि आप भाभी का हाथ थामकर उन्हें एक इज़्ज़त की जिन्दगी दें । समझ लीजिए कि तलाक के लिए मेरी यह शर्त है। ...जिस दिन आप इतनी हिम्मत जुटा लेंगे, मैं आपको तुरंत तलाक दे दूँगी।"[115] जिस संबन्ध को वे लोग घर के अंदर दफन करना चाहते थे, निर्मल उसे सब लोगों के सामने लाती हैं। उसकी जिन्दगी तो बर्बाद हो गयी लेकिन उससे एक विधवा को नई जिन्दगी मिल जाए तो निर्मल शेष जीवन खुशी-खुशी काटने के लिए तैयार हो जाती है। निर्मल अपने इस सकारात्मक उद्देश्य को सार्थक बनाने की दिशा में दृढ़ संकल्पबद्ध दिखाई पड़ती है।

नासिरा शर्मा की 'दूसरा कबूतर' कहानी भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। इसमें

इसमें बरकत नाम का पात्र अपना नाम बदलकर दो शादियाँ करता है। दोनों बीवियों को कानों कान-खबर तक नहीं होने देता। जब सदिया और रुकइया के सामने पोल खुल जाती है तब बरकत की पहली बीवी रुकइया सदिया से कहती है "इतमीनान रखो मैं तुम्हारे साथ हूँ । तुम्हारी लड़ाई मेरी लड़ाई है। मुझे गैर न समझना। हमारी जात एक है। पहचान और नस्ल एक है।"[116] यहाँ पर एक औरत दूसरी औरत के दुःख को आपस में बाँट कर मिल जुलकर फैसला करने के पक्ष में है। दूसरी बीवी सदिया कहती है ""कुछ मर्द आदतों में औरत और कुछ औरतें खसलत में मर्द होती

---

[115] सुधा अरोडा - औरत एक रात है - पृ. 109-110

[116] नासिरा शर्मा - खुदा की वापसी - पृ. 126

है। समझ लो मैं मर्द हूँ। गैरतदार,हाकिमाना तेवर और खुदगर्ज अपने शोहर को किसी और के साथ देखना बर्दाश्त नहीं कर सकती है और तीन बार तलाक,तलाक,तलाक कह सकती है।"[117] कहानी में पुरुष पात्र एक तरफ शहाब बना एक जमी-जमायी गृहस्थी का सारा सुख ले रहा है तो दूसरी तरफ बरकत बन प्रेमी का रोल अदा कर रहा है। दोनों सोचती हैं कि उसके हाथ में इतने सारे दौलत है इसलिए इतना घमण्ड है। अगर दौलत ही न रह जाए तो तीसरी शादी कैसे करेंगे। दोनों शहाब की जायदाद में से अपना हक माँगकर अपनी बेइज्ज़ती का सबक सिखाती है। रुकइया अपना हक लेकर उसे तलाक कर देती है। दूसरी सदिया दौलत लेने के बाद अपनी शादी का कार्ड भेजकर अपना प्रतिरोध प्रकट करती है। इस प्रकार दोनों ने मिलकर वर्चस्वी मानसिकता से ग्रस्त पुरुष की नकाब उतारकर उसे ऐसा सबक सिखाती है कि वह जिन्दगी भर याद रखें।

उर्मिला शिरीष की कहानी 'हँसी'का पुरुष पात्र अपनी पत्नी से प्यार नहीं करता। हर समय उसे गालियाँ देकर जलील करता रहता है। उसके नाज़ायज संबन्ध को लेकर एक दिन बात इतनी बिगड़ जाती है कि वह पत्नी को मारने के लिए हाथ उठाता है। पत्नी क्रोध में आकर उसका हाथ पकड़ लेती है और कहती है "बस, अब और नहीं। रहना है तो रहो, वरना नहीं।"[118] वह अपनी बलबूते पर बनी-बनायी गृहस्थी बिगाड़ना नहीं चाहती। अगर बिगाड़ने की कोशिश पति ही क्यों न करें उसमें उसको धक्का मारकर बाहर निकालने की हिम्मत है। पति उसके बारे में तरह-तरह की बातें फैलाकर बदनाम कर, उसकी हिम्मत को लगातार तोड़ने का प्रयास करता है। वह अदालत में खुद तलाक की माँग करती है। वह कहती है " मैं अपने बच्चों को खुद पाल-पोस सकती हूँ... बस मुझे इस आदमी से छुटकारा दिलावा दीजिए। मैं उसका चेहरा भी नहीं देखना

---

[117] वही - पृ. 130

[118] उर्मिला शिरीष - लकीर तथा अन्य कहानियाँ - पृ.40

चाहती हूँ ।"[119] वह इस जकड़न भरी जिन्दगी से अपने को मुक्त कराना चाहती है । इसप्रकार वह अपनी प्रभावी उपस्थिति को दर्ज करती है ।

मलयालम की लेखिका बी.एम. सुहरा की 'नेरच्चक्को.षिकल' कहानी का पुरुष पात्र शादी करके कुछ दिन बाद पत्नी को छोड़कर चला जाता है । एक साल तक कोई खबर न मिलने पर पत्नी उसे ढूँढने निकलती है । पति को दूसरी औरत के साथ देखकर वह उस औरत से सच बोलने की कोशिश करती है । खुद तो वह धोखे में पड गयी है और किसी औरत को उस धोखेबाज के जाल से वह बचाना चाहती है । वह अत्याचार और शोषण के विपक्ष में खड़े होकर पुरुष की छद्म मानसिकता को प्रकाश में लाने का प्रयास कर रही है ।

ललिता एस. की कहानी 'मौनम मुरिच्च इणक्किलि, की नायिका अनीता इसी वजह से पति विनोद के सामने तलाक का प्रस्ताव रखती है । उसके पति का अलग होने से पहले पति-पत्नी एक दूसरे से शिकायत करते हैं । तब अनीता कहती है " मैंने एक ही आदमी के इर्द-गिर्द अपनी जिन्दगी, विचारों एवं प्यार को बुना था । फिर भी तुम तृप्त नहीं थे । ....आज मैं वहाँ से बहुत दूर निकल चुकी हूँ । तुम और तुम्हारे दोस्त ने मिलकर जो घाव मेरे मन में भरा था, जिसने मुझे कुछ ओर ही बना डाला । जो टीस मेरे मन को लगी उसे दर किनार कर मैंने एक नया जीवन प्राप्त किया, निडर बन गयी । मैं अपनी ओर उन्मुख हुई । तुम दोनों ने मिलकर जो कठिनाईयाँ मेरे लिए उत्पन्न किया वे सब मेरे पुनरुत्थान के लिए चुनौतियाँ बनी ।"[120] वह अपनी ज़िन्दगी के सामने घुटने नहीं टेकती । उनके द्वारा दी गई सारी कठिनाइयों को पार कर वह अपने लिए नई राह तलाश लेती है ताकि वह उस राह पर चल कर अपने अहं को गरिमा प्रदान कर सकें ।

---

[119] वही - पृ. 78

[120] ललिता एस. - उच्चवेयिल - पृ. 48

प्रिया ए.एस. की 'पयरुवल्लिकलिल तूंगी नम्मलोक्के' कहानी में पत्मिनी और नारायण को अपना बच्चा नहीं है। फिर भी वे खुशी-खुशी जीवन बिताते हैं। लेकिन नारायण का और एक स्त्री के साथ संबन्ध था जो पद्मिनी की समझ के बाहर था। उसमें उसे एक बच्चा भी था। इसका पता लगने परपद्मिनी दिल को सदमा लगता है। वह पति को घर से निकाल देती है। उसका दुःख यह था कि पति को बच्चा चाहिए था तो उसे पहले अपनी पत्नी से ही कहना चाहिए था। इस मुद्दे को ही केन्द्र में रखकर माधविक्कुट्टी ने अपनी कहानी 'पारतंत्र्यम्' का ताना बना बुना है। इसका पति अपनी पत्नी से ज़्यादा उस औरत की बातों को गौर करने लगता है जो एक बच्चे की माँ एवं पेशे से अध्यापिका है।

पुरुष सत्तात्मक समाज यह समझता है कि पुरुष कितनी भी स्त्रियों के साथ संबन्ध जुटायें पत्नी को अपने बच्चों एवं परिवार की खातिर चुप रहना चाहिए। यही साध्वी स्त्री का धर्म है। लेकिन आज की स्त्रियों को यह हरगिज़ मंजूर नहीं। हिन्दी और मलयालम की लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में ऐसी स्त्री पात्रों की सृष्टि की है जो ऐसे पुरुषों को घर से निकालने एवं तलाक देने तक की हिम्मत रखती हैं।

3.3 स्त्री जीवन का सामाजिक संदर्भ

स्त्री और पुरुष के बीच जैविक रूप से तो कोई अन्तर नहीं है। लेकिन सामाजिक लिंगभेद आज का यथार्थ है। इस तरह स्त्री के प्रति संवेदनात्मक पक्ष का कमज़ोर होते जाना लिंग भेद की राजनीति कहलाती है। स्त्री-पुरुष के सामाजिक संबन्ध में पुरुष का स्त्री पर वर्चस्व मानव जीवन में सुधार लाने में बाधक होता है। जब तक संसार भर की सामाजिक संरचना ही स्त्री विरोधी रहेगी तब तक नारी के पक्ष में बोलते, कानून, न्याय एवं दर्शन का कोई अर्थ नहीं।

समाज में स्त्री-पुरुष का संबन्ध समानता पर आधारित होना है। "समन्वय और संवाद उनकी मानवीय अस्मिता की पहली शर्त है। असहमतियाँ, मतभेद, आपत्तियाँ, विवाद जीवन्तता

की निशानियाँ है, जिन्हें मिल-बैठ कर संवाद और सौमनस्य के सहारे सुलझाया जा सकता है ।"[121]तभी एक स्वस्थ समाज का निर्माण संभव है । यह समझ एक शिक्षित स्त्री को है । इसलिए समकालीन लेखिकाएँ, स्त्री की अस्मिता को पहचान दिलवाने के लिए प्रतिरोध का रास्ता अपना रही है । समकालीन हिन्दी-मलयालम लेखन में स्त्री का यह प्रतिरोध काफी सशक्त है । उनकी कहानियों की स्त्री पात्रों में समाज में व्याप्त चुनौतियों से भिडने की ताकत है साथ ही पुरुषवर्चस्व के प्रतिमानों को ध्वस्त करने की शिद्धत भी । सामाजिक क्षेत्र में स्त्रियों ने अपनी खोई हुई अस्मिता को पहचान दिलवाने की अहिंसात्मक हथियार के रूप में प्रतिरोध को आजमा लिया है ।

3.3.1 कामुक दृष्टि की शिकार

स्त्री को यातायात में हो या सड़क पर अपमानजनक भाषा, हरकतें एवं कामुक इशारेबाजी का सामना करना पडता है । ऐसी हरकतें उसकी अस्मिता का हनन करती है साथ ही साथ मानसिक बलात्कार व सेक्सुअल उत्पीड़न का परिचायक है । इस असुरक्षा भरे वातावरण पर स्त्री ने प्रतिरोध की उंगली उठायी है । हिन्दी में हो या मलयालम में लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में ऐसे पात्रों को जन्म दिया है जो अपने ऊपर हो रही इस नाइनसाफी को खुलकर बताने की हिम्मत रखती है ।

अल्पना मिश्र की 'मुक्ति प्रसंग' कहानी की नायिका को बस में कामुक हरकतों का सामना करना पड़ता है । वह इस पर विरोध प्रकट करती हुई कहती है "क्या समझ रखा है? जिसकी बगल में बैठो, उसी की अनन्त जिज्ञासाएँ जाग जाती है । पूछना शुरू हो जाता है - कहाँ जाएँगी, कब लौटेंगी? आपकी बीवी नौकरी नहीं करती? कहीं आती-जाती नहीं? दूसरे लोग उनके साथ

---

[121] मैत्रेयी पुष्पा - सुनो मालिक सुनो - पृ.41

ऐसा ही व्यवहार करते होंगे, कभी सोचा आप लोगों ने.... ।"[122] अपनी अस्मिता को कुचलनेवाली इस प्रवृत्ति पर वह उंगली उठाती है ।

कविता की 'फुरसत के चार दिन'कहानी की नायिका को बस स्टॉप पर अपमान जनक भाषा सुननी पड़ती है । एक शरीफ औरत के साथ इस तरह के व्यवहार से वह सदमे में आ जाती है । यह सुनकर वह ज़ोर से चीखने लगती है "आप अपना रास्ता नापेंगे कि लगाऊँ सैण्डिल और दूसरों से भी पिटवाऊँ? आपने क्या समझा है मुझे? किसी शरीफ औरत से बातचीत कैसे की जाती है थोड़ी देर में सब समझ में आ जाएगा?"[123] अपने साथ हुए कामुक व्यवहार को सब लोगों के सामने खोलकर वह अपना प्रतिरोध जताती है

मलयालम की लेखिका सरस्वति शर्मा की 'मनस्सिनेट्ट मुरिवुकल' कहानी में रमा को एक स्त्री होने के नाते अकेले जीने के लिए अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । कहानी में रमा की माँ मानसिक रोग से पीडित है । बीमार माँ के साथ रहने वाली रमा को हमेशा पुरुषों की छेड़छाड़ को सहना पड़ता है । रात भर ये लोग दरवाज़ा खटखटाते हैं । लेकिन रमा हार नहीं मानती । अगर कोई जबरदस्ती करें तो पलटकर वार करने के लिए वह चाकू लेकर फिरती है । कोई उसके प्रति आकर्षित न हो जाए इसके लिए वह अपने मन एवं शब्द को कठोर बना लेती है । एक-एक दिन काटने के लिए संघर्ष करती रमा उस आम स्त्री का प्रतीक है जिसे चैन से समाज जीने नहीं देता ।

सिल्वी वेल्लनाड़ की 'स्नेहसोपानम्' कहानी में पति के बिना रफीना को अपने बच्चों

---

[122] अल्पना मिश्र - छावनी में बेघर - पृ. 18

[123] कविता - मेरी नाप के कपड़े - पृ. 45

के साथ जीना मुश्किल हो जाता है। उसका पति एक दिन बीच रास्ते में अचानक गायब हो जाता है। अपने पति की तलाश में वह इधर-उधर भटकती रहती है। ऐसे में कुछ लोग उसे छेड़ने लगते हैं। तब वह अपना चप्पल दिखाकर कहती है कि मैं सिर्फ अपने पति को खोज रही हूँ। ऐसे बद्तमीज़ पुरुष उसका जीना हराम कर देते हैं। फिर भी वह उन लोगों के सामने मजबूती के साथ खड़ी रहती है। कुछ औरतें खुलकर इसका सामना करती होंगी कुछ लोग छिपाती होंगी। औरतों पर किए जा रहे इस अत्याचार पर डटकर विरोध करने की आवश्यकता है। इस तरह खुले वातावरण में बदत्तमीज़ी से पेश आने की हरकत को बढ़ावा नही देना चाहिए। परिवार से ही पुरुषों को स्त्रियों से इज्जत करने की सीख मिलनी चाहिए। समकालीन हिन्दी मलयालम लेखिकाओं ने इस ज़रूरत की ओर संकेत किया है।

3.3.2 बलात्कार की शिकार

बलात्कार में स्त्री की सहमति का उल्लंघन होता है। आज समाज में स्त्री के प्रति हो रहे बलात्कार की घटनाओं में तेज़ी से वृद्धि हुई है । संविधान द्वारा महिलाओं की सुरक्षा के लिए बनाये गये कानूनों में उनकी शारीरिक सुरक्षा सबसे मुख्य है। लेकिन इन नियमों का उल्लंखन बलात्कार के रूप में समाज में होता ही रहता है। इस जघन्य, घृणित एवं पाशविक प्रवृत्ति की रपट इसलिए नहीं लिखी जाती कि इसे स्त्रियों की बद्नामी से जोड़ा जाता है। इससे बलात्कारी को आबाध छूट मिल जाती है। अगर रपट लिखा दी गयी तो बलात्कार की शिकार स्त्री से इसे सिद्ध करने की माँग अदालत करता है। अदालत में सिर्फ उसके बयान को प्रमाण नहीं माना जाता बल्कि संदेह की नज़र से उसे देखा जाता है। साथ ही सामाज का रवैया उसके लिए सबसे बड़ी परीक्षा होती है। अनामिका कहती है "बलात् किसी की देह पर काबू पाने की कोशिश शरीर पर तो गहरे घाव छोड़ती ही है, मन को भी तो क्षत-विक्षत छोड़ जाती है। यह एहसास की मुझे व्यक्ति नहीं, वस्तु समझा गया और ऐसे कार्य में भी मेरी सहमति ज़रूरी नहीं समझी गयी, जिसमें मुझे देह जैसे बड़े यथार्थ के साथ घसीटा जाना था - अपने आप में बहुत मारक है। दैहिक हिंसा से भी

बढ़कर यह मानसिक हिंसा है ।"[124] समाज में इसे औरत की शुचिता के साथ जोड़ा जाता है । यह व्यवहार औरत को मनुष्य श्रेणी से वंचित कर वस्तु में बदल देता है । बलात्कार को स्त्री की इज्जत के साथ जोड़ने के समाज की कुदृष्टि पर अनामिका ने यों प्रहार किया है "लोकजीवन में अंगों के कुछेक अमानवीय झटकों को 'इज्जत जाना' या 'इज्जत लुट जाना' कहते हैं, पर मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आता कि 'इज्जत' जैसी बड़ी चीज़ के साथ अंगों के अमानवीय घर्षण का हादसा क्यों जोड़ा जाता है ।"[125] मतलब है इसे शुचिता, पवित्रता, सतीत्व, पातिव्रत्य से जोड़ा जाना उसे अपने ही नज़रों से गिरा देता है । जबकि इस प्रवृत्ति पर वह दोषी नहीं होती । स्त्रियों को इस मानसिकता से उभरने की ताकत जुटानी है । यह बर्बरता सिर्फ पुरुष के पौरुष जतलाने का माध्यम है । समाज भी इसे 'जवानी का जोश' या 'मानसिक विकृति' की संज्ञा देता है ।

साहित्य में बलात्कार का चित्रण पहले से लेकर होता आया है । लेकिन इस प्रवृत्ति को देखने की दृष्टि में लेखन में अंतर आया है । यह अंतर स्त्री प्रतिरोध के ज़रिए हुआ है । यह मानसिकता स्त्री को अपराधबोध से मुक्त कराती है । रिश्तेदारों, पड़ोसियों, अन्य परिचितों एवं अपने पिता द्वारा भी लड़कियों पर होते बलात्कार को समकालीन हिन्दी मलयालम लेखिकाओं ने अपनी कहानियों का विषय बनाया हैं ।

आज सबसे विडम्बनापूर्ण स्थिति यह है कि रक्षक ही भक्षक बन जाता है ।असुरक्षित समाज में मानवता से उसका विश्वास ही टूट गया है । इस दृष्टि से नासिरा शर्मा की 'बिलाव' कहानी पर विचार किया जा सकता है । कहानी की स्त्री पात्र सोनामाटी की दो बेटियाँ है मैना और हीरा ।

---

[124] अनामिका - मन माँझने की ज़रूरत - पृ. 17

[125] अनामिका - मन माँझने की ज़रूरत - पृ. 17

एक दिन शराबी पति बडी बेटी का बलात्कार करता है। वह पति को इतना पीटती है कि पति बेहोश हो जाता है। वह सीधे पुलिस स्टेशन जाकर रपट लिखवाती है। वह कहती है "मेरी बेटी की इज्ज़त लूटी है मेरे आदमी ने। ...मेरा पति बलवीर शराबी है। उसने मेरी बेटी मैना की इज्ज़त खराब की है। मैंने उसको बहुत मारा है। वह मर गया है।"[126] परिवार में अपनों के साथ किए जा रहे इस जघन्य अत्याचार के खिलाफ वह संघर्ष करती है। दोनों बेटियों को लेकर वह गाँव छोड़कर चली जाती है। मैना को वह 'नारी मुक्ति मोर्चा संस्था' में छोड़ती है ताकि उसकी मानसिक एवं शारीरिक इलाज हो सकें। गाँव छोड़ने के बाद भी पुरुषों की विकृत मानसिकता उनका पीछा नहीं छोड़ती।आगे जब नये घर का पड़ोसी छोटी बेटी हीरा का शारीरिक शोषण करता है तो उसे सभी मरद बलवीर जैसे ही लगने लगता है। वह कहती है "यह कहाँ का न्याय है कि सोती लड़की का गहना कोई भी उतार ले जाए? चुप रहकर चोर को शाह देना ठीक नहीं। मुझे मत रोक मैना, मुझे मत रोक मैं पुलिस को खुद सबूत लाकर दूँगी।... मैं तुझे ढूँढकर रहूँगी... तुम सबको एक-एक करके अन्दर डलवा दूँगी। अब बात यूँ ज़्यादा दिन नहीं चलेगी। बलवीर, मैं तुझे जीतने नहीं दूँगी, हरगिज़ नहीं।"[127] वह अपनी बेटियों को न्याय दिलवाने की कोशिश करती है। वह ऐसे मर्दों को सलाहों में बन्द करवाना चाहती है। स्त्री के रूप में जीने के अधिकार के लिए वह लडने के लिए तैयार होती है।

चित्रा मुद्गल की कहानी 'गिल्टी रोजेस' में सजा भुगती कुछ कैदियों के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। उनसे मिलने के लिए लेखिका जेल जाती है और बातचीत करती है। पहली कैदी दुःखना अपने पति के इकलौते औलाद को मारने के जुल्म में जेल में सजा काट रही है। दुःखना अपने पति की छोटी बीवी थी। बेटा उससे जन्मा नहीं था ,पति की पहली बीवी का था। उसने

---

[126] अनामिका - बिलाव- पृ .69

[127] वही .पृ 75

दो-तीन बार उसके साथ बलात्कार किया था। ससुर और सौत का हाथ भी इस गुनाह के पीछे था क्योंकि उन्हें दुखना को नीचा दिखाना था । दुखना क्रए प्रति उसके पति का चाह-दुलार उन्हें अखरता था । उनका मकसद था। लेकिन दुखना बार-बार उसके साथ हो रहे उस अत्याचार को सह न पाई। वह उस घटना के बारे में कहती है कि "बस... झेला नहीं गया... बिजली की फुर्ती से हंसुआ उठाया और जब तक वो संभले, रेतके धर दी हरामी की गटई। कबूल किए जुर्म पुलिस-दरोगा के सामने.... ।"[128] ज़ोर जबरदस्ती करनेवाला कोई भी हो उसे मारने एवं थाने जाकर कुबूल करने की हिम्मत इस औरत में है। इस प्रकार वह अपनी प्रतिरोधी तेवर को बुलन्द करती है।

चित्रा मुद्गल की कहानी है "प्रेतयोनी" । इसमें दिल्ली विश्वविद्यालय की छात्रा अनीता गुप्ता ट्रेन दुर्घटना में घायल हो जाती है। घायलों को टैक्सी से घर भिजवा जाता है। रास्ते में ड्राइवर अनीता के साथ बलात्कार करने की कोशिश करता है। आत्मबल के कारण अनीता अपने को बचाने में कामयाब हो जाती है। वह पुलिस थाने पहुँचकर एफ.आई.आर. दर्ज करती है। दूसरे दिन यह खबर अखबार में छपती है। इससे पूरे घर का माहौल बिगड़ जाता है। परिवारवाले उसे संस्कार, नैतिकता, पारिवारिक मूल्य आदि के नाम पर कमरे में बन्द करते हैं। वे लोग इस सामाजिक अपराध को छिपाने की कोशिश करते हैं। ऐसे अवसर पर वास्तव में माँ-बाप को अपनी बेटी के हौसले को बढ़ावा देना चाहिए था। लेकिन उनके लिएन्समाज का डर बेटी से बढ़कर था। अनीता को जब सांत्वना की ज़रूरत थी तब उसे अपने परिवार से तिरस्कार और मानसिक प्रताड़ना मिली। इसलिए वह आत्महत्या के बारे में सोचती है। लेकिन उसके कॉलिज के कुछ सहपाठी मिलकर उस टैक्सी चालक को पकड़ने के लिए पुलिस मुख्यालय के समकक्ष शांतिपूर्ण विरोध-प्रदर्शन करते हैं। यह खबर अखबार में देखकर अनीता को लगा कि इस जंग में

---

[128] चित्रा मुद्गल - आदि-अनादि - पृ. 260

वह अकेली नहीं है। वह समझने लगती है कि वह खुद हार जाएगी तो उसके लिए लड़ने को तैयार इन लोगों का विश्वास बिखर जाएगा। वह मन में ठान लेती है कि अब उसे जिन्दगी के सामने घुटने टेकना नहीं चाहिए। बल्कि लड़ना चाहिए, प्रतिरोध प्रकट करना चाहिए, अपराधी को सज़ा दिलवाने के लिए साहस जुटाना चाहिए।

लता शर्मा की 'वो नहीं भूल सकते' कहानी की पात्र नेहा सामूहिक बलात्कार की शिकार होती है। लेकिन इस दुर्घटना को भूलकर वह फिर से जीने लगती है। कलंकित होने के नाम पर स्त्री की शुचिता तपर प्रश्न चिह्न लगानेवाले समाज की झूठी सहानुभूति का वह तिरस्कार करती है । इस कुप्रवृत्ति को शुद्धता और कलंक से जोड़ने के पितृसत्तात्मक समाज की स्त्री विरोधी नीति को वह तोड़ती है। बरसों पहले हुए इस दुर्घटना पर सहानुभूति जतानेवाले प्रेमी से वह कहती है " तुम सीढ़ी से गिरे, माथा फूटा। मैं हैवानों से घिरी, झिल्ली फटी। क्या अंतर है? अनचाहे, अनजाने गिरे, चोट लगी, खून निकला, टाँके लगे। इलाज हुआ, चोट ठीक हो गयी... ज़रा सा निशान रह गया है, जो याद भी नहीं रहता।"[129] नेहा यौन शुचिता की पारंपरिक मान्यताओं को तोड़ती है। बलात्कार की आशंका और वास्तविकता के प्रति नायिका की लापरवाही जताने का मतलब है, वर्चस्ववादी अहम्मन्य पुरुष को उसकी सही औकात दिखा देना। कहानी में लेखिका पुरुष की सहानुभूतिपूर्ण रवैये को भी नकारती है। लेखिका इसे महज दुर्घटना मात्र मानकर स्त्री को अपराध-बोध से मुक्त करना चाहती है। निस्संदेह यह एक आम सजग स्त्री छवि का गठन है जिसे बलात्कार के द्वारा तोड़ा नहीं जा सकता या समाज से तिरस्कृत एवं बहिष्कृत नहीं किया जा सकता।

---

[129] लता शर्मा - आखिरी नाम अल्लाह का - पृ. 28-29

इस संदर्भ में मलयालम की लेखिका सितारा एस. की 'अग्नि' कहानी विचार करने योग्य है। जिसमें प्रिया सामूहिक बलात्कार की शिकार होती है। वह शिक्षित एवं नौकरीपेशा थी। इसलिए वह अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाती है। वह बस में उसके साथ छेड़-छाड़ करनेवाले रवि को थप्पड़ मारती है।रवी का प्रतिशोध आखिर बलात्कार तक आ पहूँचता है। काम के बाद जब वह रात को देर से घर लौटती है तब रास्ते में रवि और उसके दोस्त ने मिलकर उसके साथ यह अन्याय करते हैं। इस दुर्घटना के बाद वह टूटती नहीं, अगले दिन भी ऑफिस जाती है। वह अगले दिन उसके इंतजार में खड़े रवि और उसके दोस्त के पास जाती है। रवि के दोस्तसे कहती है " मुझे नहीं लगता कि तुम एक स्त्री को पूर्ण रूप से तृप्त कर जाओगे,तुम में उस शक्ति की कमी है।"[130] फिर वह रवि की ओर मुड़ती है और कहती है "लेकिन तुम मुझे अच्छा लगा, तुम ही असल में पुरुष हो।" [131] कहानी की नायिका बलात्कार का आस्वादन लेनेवाली नहीं है। वह अपने ज्वलंत व्यक्तित्व को स्थापित करती है। अन्याय का विरोध करनेवाली लड़कियों की हालत समाज में क्या होती है यह कहानी हमें याद दिलाती है। शत्रु की दुर्बलता का आक्रमण करने का षड्यंत्र ही रवि ने अपनाया था। नायिका उसके पुरुषत्व पर वार करती है जिसके बल पर पुरुष घमंड करता फिरता है और अपने आपको श्रेष्ठ मानता है।

मलयालम लेखिका इन्दु मेनोन की कहानी है 'रक्तकाली भद्रकाली'। कहानी में कमला के अध्यापक उसके शारीरिक सौंदर्य से आकृष्ट होकर कमला के सामने शादी का प्रस्ताव रखता है एवं उससे शादी भी करता है। अध्यापक एक लम्पट आदमी था। जो लड़कियाँ उसे भाजाती थी उन सभी का यौन शोषण करने में वह उतारू हो जाता था। लेकिन कमला ने उससे शादी इसलिए की कि बरसों पहले उसकी बहन मल्लिका के साथ उस अध्यापक और उसके दोस्तों ने मिलकर

---

[130] सितारा एस. - कथकल - पृ. 225

[131] वही- पृ 225

सामूहिक बलात्कार किया था। वह उनसे बदला लेना चाहती थी। शादी के बाद कमला मल्लिका जैसा बरताव करने लगती है। वह अपने को रक्तकाली का प्रतिरूप मानकर उन सब लोगों का खून पीना चाहती है जो औरतों पर अत्याचार करते रहते हैं। कमला का अजीब सा व्यवहार देखकर अध्यापक को डर लगने लगता है। एक बार कमला गर्जकर करती है "मैं हूँ श्रीभद्रकाली, तुम जैसे नीचों के खून की प्यासी हूँ।"[132] वह भद्रकाली बनकर उन विकृत मानसिकतावाले पुरुषों से बदला लेना चाहती है जो अपनी यौनेच्छाओं की पूर्ती हेतु स्त्रियों पर बलात्कार करते हैं। ऐसे लोगों के जिन्दा रहने का कोई अधिकार नहीं है। वह इन लोगों का खून करके अपना प्रतिरोध दर्ज करती है।

कय्युम्मु की 'प्रतिकारम्' कहानी का पुरुष पात्र सेय्दुमुहम्मद हाजी भी एक लम्पट है। उसके नसीब में बाप बनने की खुशी नहीं थी। इसलिए वह लैला नाम की छोटी सी बच्ची को लाकर पत्नी मरयंबी के हाथों में सौंपता है। वह उसको सग्गी बेटी जैसी पालती है। जैसे जैसे वह बड़ी होने लगती है तैसे तैसे हाजी उसे गलत नज़र से देखने लगता है। वह कई बार उसके साथ जबरदस्ती भी करता है। उसकी कामुकता भरी नज़रों को पहचानती लैला अपने प्रेमी से कहती है "मैं अपने आपको बचा नहीं पायी तो.... फिर जिन्दा नहीं रहूँगी।"[133] एक बार हाजी की हीन हरकत से वह अपने आपको बचा नहीं पायी। वह गर्भवती हो जाती है। वह उस बच्चे को इस गन्दगी से भरे संसार में लाना नहीं चाहती थी। वह अपने साथ उस पाप को भी मिटाकर अपना प्रतिरोध दर्ज करती है।

रोजमर्रा की हमारी जिन्दगी में इस तरह की अनेक घटनाओं की खबर सुनने को मिलती हैं। इस अत्याचार की सही पड़ताल कभी भी नहीं होती। हिन्दी और मलयालम की लेखिकाएँ

---

[132] इन्दुमेनोन - चुम्पनशब्द तारावली - पृ. 36

[133] कय्युम्मु - ओरमयुडे पच्चत्तुरुत्तिलूडे - पृ. 21-22

इस जघन्य अपराध के प्रति समाज को अवगत कराने की कोशिश में हैं । वे अपनी कहानियों द्वारा ऐसे नारी पात्रों को जन्म देती हैं जो इस घटना को कलंक न मानकर आगे बढ़ने में सक्षम है। थाने जाकर रपट लिखवाने तथा समाज के सामने खुलकर बोलने के लिए तक वे हिचकती नहीं।

3.3.3 दहेज विरोधी स्वर

दहेज प्रथा आज व्यापक सामाजिक समस्या बन गयी है। यह घरेलु अपराध और अत्याचार को गंभीर बनाता है। इसमें मानवाधिकार का उल्लंघन होता है। दहेज प्रतिरोध अधिनियम (1961) में दहेज देने की कुप्रथा का निषेध किया गया है ।फिर भी पुरुष सत्तात्मक मानसिकता से ग्रस्त लोग रातोंरात अमीर हो जाने के लिए दहेज की माँग रखते हैं । वे लोग अपनी समस्त सुख-सुविधा को इसके माध्यम से पूरा करना चाहते हैं। इस माँग को घर की साँस, जेठानी, ननद आदि स्त्रियाँ भी मुखर करती हैं। इसके तहत् वे लोग मन, वचन, कर्म से बहु के खिलाफ मोर्चे में शामिल हो जाती हैं। समाज की मान्यता यह है कि दहेज लड़की के पिता द्वारा बेटी की परवरिश के लिए आश्वासन के रूप में दिया जाता है। लेकिन इस धारणा को खत्म करने की आवश्यकता है। उसे बेटी की सहायता दहेज के रूप में नहीं बल्कि पिता की संपत्ति में समान अधिकार दिलवाकर करनी है, जिस पर उसका हक बनता है। अनामिका जी कहती है कि "दहेज प्रथा तभी मिटेगी जब संपत्ति में बराबरी का हिस्सा बेटियों को दें।"[134] दहेज की माँग ने विवाह-संस्था को इस हद तक भ्रष्ट कर चुकी है कि लड़की चाहे किसी भी तबके की हो स्टौव फटकर जलाय जाने की तथा आत्महत्या करने की संभावना बनी रहती है। दहेज सिर्फ विवाह के वक्त दिया-लिया जानेवाला नहीं बल्कि इसकी माँग शादी के बाद भी जारी रहती है। दहेज के विरोध में लेखिकाओं का प्रतिरोध भिन्न भिन्न नारी पात्रों के ज़रिएखडा करने का प्रयास किया है।

---

[134] अनामिका - मन माँझने की ज़रूरत - पृ. 56

मालती जोशी की कहानी 'मुक्ति-पर्व' में रसिका खुद को विवाह के नाम पर एक बिकाऊ चीज़ बनाने के लिए तैयार नहीं है। रसिका कहती है "मैं जानती हूँ कि पापा मेरा रिश्ता अच्छी से अच्छी जगह करना चाहेंगे। जिस स्टैंडर्ड का दुल्हा वे ढूँढेगे वह अपने लिए अपूर्व सुंदरी की कामना करेगा। कन्या अगर सुन्दर न हो तो मुआवजे के तौर पर वह बोरी भर रुपए की माँग करेगा। मैं जानती हूँ कि मैं अपूर्व तो क्या साधारण सी सुन्दरी भी नहीं हूँ। पर अपने रूप के एवज में रुपयों से तुलने के लिए भी मैं तैयार नहीं हूँ। इसलिए आप सबको शुक्रगुज़ार होना चाहिए कि मैंने अपने साथ-साथ पापा को भी इस यातना-चक्र से उबार लिया है।"[135] उसको पता है कि वह खूबसूरत नहीं है। अपने पापा को इस यातना से मुक्त कराने के लिए, अपने जीवन साथी का चुनाव वह खुद करती है जो दहेज नहीं सिर्फ उसको चाहता है, उसके व्यक्तित्व का आदर करता है।

सूर्यबाला की कहानी 'कौमुदी : एक प्रश्न' की नायिका खुद को दूसरों के सामने पेश करते-करते थक जाती है। वह अपनी पसंद के लड़के के साथ भाग जाती है क्योंकि घर वाले उसकी पसंद के खिलाफ थे। वह कहती है "समझ में नहीं आता, उन मोलभाव करनेवाले परिवारों को लाखों के दान-दहेज में सन्तुष्ट कर मुझे सौंप देने के लिए पापा तैयार थे, लेकिन मात्र उनकी बेटी का हाथ माँगने वाले उदय के मामले में, एक रूढ़ और संकीर्ण उनके विवेक के सामने अभेद्य दीवार बनकर खड़ा हो गया। मेरे इतने समझदार, मुझे इतने प्यार करनेवाले मम्मी-पापा एक विवेक सम्मत विरोध के, न्यायसंगत निर्णय के पक्ष में क्यों नहीं खड़े हो पाये? ...यह मेरी बगावत नहीं है, न विद्रोह ही... बहुत सोचने-समझने के बाद, अपने लिए तलाशी एकमात्र पगडंडी है.... मेरी

---

[135] मालती जोशी - पिया पीर न जानी - पृ. 58

गलती, सिर्फ इतनी है कि मैं अपनी अवहेलना और अपमान एक सीमा के बाद बर्दाश्त नहीं कर पायी.... ।"[136] कौमुदी एक ऐसी अस्मिता संपन्न नारी है जो अपने को दो कौडियों की कीमत पर बेचने के लिए तैयार नहीं होती । उसके न्यायसंगत निर्णय के विपक्ष में थी पिता की रूढ़ एवं संकीर्ण मानसिकता । इसलिए वह डटकर प्रतिरोध करती है ।

उर्मिला शिरीष की 'तीसरी मोड़' कहानी में इस मुद्दे को ही उठाया गया है । पिंकी एक मेडिकल कॉलेज की होशियार छात्रा है । वह अपने साथी लड़के से शादी करना चाहती है । लडका अलग जाति का है । इस वजह से परिवारवालों को इस रिश्ते से एतराज़ थे । पिंकी दान-दहेज देकर शादी नहीं करना चाहती थी । वह कहती है "मेरी कोई गलती नहीं है माँ, इतने अच्छे लोग हैं, न दान-दहेज न कोई नखरे, फिर भी । पापा कोर्ट के फैसले घर में लागू करना चाहते हैं । ...जानती हूँ, मेरे फेवर में आने में आपको कष्ट होगा । संताप होगा... । पर पापा । ...जो काम आपकी सहमति से होगा, वह मेरे लिए सम्मानजनक होगा । आपकी बेटी आपसे कुछ नहीं माँग रही है, न प्रॉपर्टी, न दहेज... न.... उस तरह के तामझाम... ।सिर्फ.... आपका सहयोग और आशीर्वाद माँग रही है... क्या वो भी नहीं दोगे...एक बार जाति-धर्म, छोटे-बडे स्तर से उठकर सोचिए... आपको सब कुछ अच्छा लगेगा.... । इससे ज्यादा मैं आपसे कुछ कहना नहीं चाहती । मैं भी थक गई हूँ.यह सब करते-करते ।"[137] भारी भरकम रुपये देकर अपने बच्चों की शादी करवाने को सोच रहे पिताओं की मानसिकता पर यह पात्र प्रतिरोधीवार करती है । पिंकी के पिता अमीर है लेकिन पिंकी अपने को बिकाऊ माल बनाने के विपक्ष में है ।

---

[136] सूर्यबाला - गौरा गुनवन्ती - पृ. 39

[137] उर्मिला शिरीष - लकीर तथा अन्य कहानियाँ - पृ. 34

‘ पूर्णाहुति ‘ कहानी का चरित्र दो बेटियों का पिता है । उसका विश्वास है कि सभ्य समाज में जागरण और ज्ञान-विज्ञान के तहत् दहेज नाम की ओछी प्रवृत्ति भस्म हो जाएगी । इसलिए वह अपनी बेटियों को बिना भेदभाव की अच्छी शिक्षा देता है । बडी बेटी के विवाह प्रस्ताव लेकर जिन-जिन घरों में वह जाता है, वहाँ के लोग बेटीकीशिक्षा,गुण और सौंदर्य से पहले सीधे उसकी हैसियत के बारे में पूछते हैं।उसकी बेटी का रिश्ता जिन लोगों के साथ तय किया जाता है वे शादी के समूचे आयोजन से नाखुश होकर शादी के बाद दहेज की   माँग करती हैं। बेटी के बाप होने के नाते वह उनके पॉव पकड़ने लगता है । बेटीकी खुशहाल ज़िंदगी के सामने उसका सिद्धांत हवा में उड़ जाता है । पिता की उदास आँखों को देखकर बेटी कहती है "ऐसे नहीं मुझे, मेरे उन्नत सिर, सीधी आँखोंवाले पिता का आदेश चाहिए । ...मुझे डर है, कहीं मैं कुछ प्राप्तियों के एवज में अपना पिता ही न खो दूँ... एक बात मैं आपसे साफ-साफ कहे देती हूँ, मैं सारे नुकसान बरदाश्त कर सकती हूँ लेकिन इतने वर्ष साथ रहा अपना वह पिता नहीं खोना चाहती, किसी कीमत, किसी शर्त पर.... उलटे अपना सब कुछ दाँव पर लगाकर भी यह बेटी अपना पिता अपने पास सुरक्षित रखना चाहती है... ।"[138] इतना कहकर वह मायके से ससुराल न जाने का फैसला करती है । ससुरालवाले इस रिश्ते से मुक्त होना चाहते हैं तो उसके लिए भी वह तैयार रहती है क्योंकि अपने बाप के उसूलों को कुचलकर उसे एक जिन्दगी की आवश्यकता महसूस नहीं होती ।

नीलम सिन्हा की कहानी ‘पच्चीस हज़ारी दूल्हा’ में बाप अपनी बेटी को विदा कर चैन की साँस लेना चाहता है । बाप बीमार है इसलिए बेटी की शादी जल्द से जल्द करवाना चाहता है । दूल्हा पच्चीस हज़ार की माँग रखता है । बेटी शादी से मना नहीं कर पाती, पिता के आग्रह के आगे

---

[138] पूर्णाहुति - मानुष गंध - पृ. 73

सिर झुका लेती है। लेकिन दहेज की रकम को इकट्ठा करने के लिए इधर-उधर भटकते पिता को देखकर वह बेचैन हो जाती है। वह अपने शरीर बेचकर एक महीने के अन्तर पैसों का इन्तज़ाम करती है। वह शादी के बाद बिछावन पर बैठी सोचती है "आज दहेज दानव के द्वारा कितना भ्रष्ट हो रहा है। मनुष्य हाथ जोड़े खड़ा है - भले ही इसके लिए पवित्रता ही दाँव पर लगानी पड़ जाय। मुझे लगा दहेज दानवों को मैंने हरा दिया - उनसे लाजवाब बदला मैंने ले लिया है।... अपनी आत्मा और पवित्र तन का एक-एक रेशा मैंने तुम्हारे लिए रखा था... तुम्हारी खुशी के लिए एक भेडिए के सामने डाल दिया... ताकि पिता बिना गोलियों के सो सके... देखने वाले कहें, वाह। क्या दूल्हा बडा बाँका है। ...और मैं बहूँ छी... लालची... भिखारी पच्चीस हज़ारी दूल्हा... ।"[139] असल में पति-पत्नी संबन्ध एक दूसरे के विश्वास पर निर्भर है। यही रिश्ते की पवित्रता है। लेकिन वह अपनी इस पवित्रता को दाँव पर रख कर पति के पैसे का लालच पूरा करती है।

रेखा. के के द्वारा लिखी गई 'पातालदूरम' कहानी की नायिका एक चित्रकार है। पति के साथ उसका संबन्ध ठीक से नहीं चलता है। पति पेशे से डॉक्टर है फिर भी वह एक लालची किस्म का आदमी है। अरुणा यह सब झेलकर उसके साथ जीती है। एक बार पति चेचक से पीडित होने पर सारी कडवाहट भूलकर वह उसकी सेवा-शुश्रूषा बडी लगन से करती है। अरुणा एक गरीब परिवार से आयी थी। लेकिन पति उसे दहेज के नाम पर तंग करता रहता है। एक बार पति पूछता है "तुम्हारे घर में अब कितनी संपत्ति है.... हमें क्या मिलेगा? "[140] यह सवाल उसे जड़ से हिला देता है।उसका पति उसे और उसके परिवारवालों को कभी भी समझने की कोशिश नहीं करता था। जब चेचक उसे लगता है तब वह अपने रोम-रोम को अपमानित महसूस करती है। वह पति को छोड़ने का फैसला लेती है। अपने दोस्त जीवन से शादी भी करती है। वह समझ जाती है कि जिस पति से उसे एवं उसके पेशे को समझने की उम्मीद टूट चुकी होती है, उस

---

[139] नीलम सिन्हा - धूप-छाँह - पृ. 115-116

[140] रेखा के. - रेखयुडे कथकल - पृ. 149

रिश्ते को ज़्यादा आगे ले जाने से कोई फायदा नहीं। अरुणा को लगता है कि जीवन उसे पहचानता है एवं उसकी इज़्जत करता है।

सारा तोमस की 'पुरुषधनम्' कहानी की लड़की बिना दहेज की शादी की आशा रखती है क्योंकि उसका पिता गरीब था। उसके समुदाय में लड़की के गले में मंगलसूत्र डालने से पहले दहेज लड़के के घर में पहूँचाया जाता है। यह एक रस्म है। देहेज निरोधक कानून के आने से तो नहीं देना पडेगा पर लडकेवाले ज़रूर उसके पिता की हैसियत के बारे में पूछेंगे एक बार उसे देखने के लिए एक कुरूप आदमी आता है। पिता के बोझ को उतारने के लिए मात्र वह शादी के लिए हाँ कहती है। तब लड़का घर उसके अपने नाम करने की माँग रखता है। पर पिता बेटी के नाम करने के लिए राजी हो जाता है। लड़की को बेचने के लिए मोल भाव का सिलसिला आरंभ हो जाता है। ये सब घटिया बातों को सुनकर वह कहती है " बन्द करो यह मोल-भाव। मुझे तुम्हारे लड़के से शादी नहीं करनी। मेरा बोझ हल्का करने के लिए माता-पिता को सड़क पर आने की नौबत नहीं आएगी। मैं मन से किसी ओर को अपना बना चुकी हूँ।" [141] एक हिन्दु लड़का शेखर उसे बहुत चाहता है। अलग जाति के होने से उसका प्रस्ताव उसने ठुकरा दिया था। लेकिन शेखर ने उसका मोल-भाव तो नहीं किया था। पुरुष के वर्चस्व एवं स्त्री को वस्तु बनानेवाले इस सामाजिक अनीति के खिलाफ वह एक निर्णायक संघर्ष छ्ड़ती है। अपने वजूद को तलाशती यह लड़की आत्मसम्मान से जीने का फैसला लेती है।

इसप्रकार समकालीन हिन्दी-मलयालम लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में दहेज-प्रथा के विरोध में खड़ी स्त्री-पात्रों का निर्माण किया है। वे विवाह से जुडी इस कुप्रवृत्ति पर कुठारघात करती हैं क्योंकि आगे से यह प्रथा समाज् से मिट जाएँ और स्त्री आत्मसम्मान से जी सकें।

---

[141] सारा तोमस – तिरंञेडुत्त कथकल –पृ 115

3.3.4 स्त्री-पुरुष संबन्ध

स्त्री-पुरुष संबन्धों में आज बहुत परिवर्तन नज़र आ रहा है । परंपराएँ और पुरानी मान्यताओं के बदलने के कारण तथा शिक्षा एवं तकनीकी के विकास के कारण मूल्यों के प्रतिमान आज बदला हुआ दिखाई पड़ रहा है । पति-पत्नी संबन्ध अलावा स्त्री-पुरुष के बीच और संबन्ध भी होते हैं । कुछ स्त्रियाँ शादी के पहले अपने प्रेमी के साथ संबन्ध रखती हैं । कुछ स्त्रियाँ शादीशुदा होने पर भी अपनी जिन्दगी से नाखुश होकर दूसरे पुरुष के साथ संबन्ध जोडती हैं । कुछ स्त्री-पुरुष लिव इन रिलेशनशिप में विश्वास रखते हैं । ऐसे अनेक पात्रों को समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला कहानियों में देख सकते हैं ।

3.3.4.1 कुँवारी माँ

कुँवारी माँ समाज के सामने हमेशा एक प्रश्नचिह्न रहा था । साधारणतया प्रेमी से धोखा खाने से ही लड़कियाँ इसप्रकार माँ बन जाती है । लेकिन समाज कभी इसे स्वीकारने के लिए तैयार नहीं होता । शुचिता के नाम पर उसे गर्भपात के लिए मजबूर किया जाता है । ऐसा नहीं किया तो उसे समाज में घोर अपमान का पात्र बनाया जाता है । यदि वह बच्चे को जन्म देने के लिए तैयार होती है तो सभ्य होने का नाट्य करनेवाला मर्दवादी समाज उस बच्चे का उत्तरदायित्व अपने कंधों पर लेने के लिए तैयार नहीं होता । साथ ही उस बच्चे को अवैध करार कर दिया जाता है । उस बच्चे के साथ समाज में जीने की स्वतंत्रता स्त्री को नहीं दी जाती । लेकिन आज की स्वतंत्रचेता स्त्रियाँ, नौ साल कोख में रखे उस बच्चे को, पिता के साये के बिना पालना चाहती हैं । समकालीन हिन्दी-मलयालम लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में ऐसे पात्रों को जन्म दिया है जो पिता के नाम के स्थान पर अपना नाम देकर उन बच्चों को पाल-पोसकर बड़ा करने की हिम्मत जुटाती हैं ।

उर्मिला शिरीष की 'उसका अपना रास्ता' कहानी में मिस इण्डिया बनने का ख्वाब देखती वृन्दा की ज़िन्दगी को रेखांकित किया गया है । वह अपने दोस्त पवन के साथ रहने लगती है । मिस इण्डिया कॉण्डस्ट में वह हार जाने के कारण पवन उसे छोड़कर चला जाता है । तब तक वह गर्भवती हो जाती है । पवन सिर्फ उसके शारीरिक सौंदर्य से आकृष्ट था । वह उसके देह को पाने के बाद उसे बीच रास्ते पर छोड़ देता है । उसके अनुसार सेक्स एनजॉय करने के लिए होता है बच्चा पैदा करने के लिए नहीं । लेकिन वृन्दा अपने बच्चे को नष्ट करना नहीं चाहती थी । वह पत्रकारिता का कोर्स करती है क्योंकि अपने बच्चे को पाल सके और एक इज्जत की जिन्दगी जी सके ।

क्षमा शर्मा की 'माँ' कहानी में कथावाचिका को उसका प्रेमी विनय धोखा देता है । वह उसे अपने प्यार में फसाकर उसका शारीरिक शोषण करता है । जब उसे गर्भ ठहर जाता है तब विनय उसे छोड़कर चला जाता है । वह उसे समाज में मुँह दिखाने लायक नहीं छोड़ता । परिवारवाले गर्भपात कराना चाहते हैं। लेकिन वह ऐसा करना नहीं चाहती । इसलिए वह घर से भाग निकलती है । वह अपनी सहेली से कहती है कि "क्यों नहीं रहने देगा, क्या दुनिया में अकेली माँएँ अपने बच्चों को नहीं पालती हैं । उसी ने तो मुझे धोखा दिया, ये तो मेरे अपने हैं । क्या मैं इन्हें मार डालूँ क्यों इनका क्या कुसूर है ।"[142] वह समाज की चिंता नहीं करती । आगे वह अपने अकेले दम पर जुडवा बच्चों को जन्म देती है और पालती है । कुछ साल बाद उसे बेसहारा छोड़कर चला गया विनय वापस आकर उसे और बच्चों को अपनाने की बात करता है ।विनय की इस बेतुकी बातों को सुनकर वह कहती है "अपने ही बच्चों को कोई अपनाने की बात करता है ।वह जो वक्त पर भाग गया और अब उदारता का ढोंग करने आया है । कह देना मुझे उसकी ज़रूरत नहीं ।"[143] जिस समय उसको सहारे की ज़रूरत थी तब सब लोगों ने उसका साथ छोड़ दिया था । जिन्दगी की

---

[142] क्षमा शर्मा - लड़की जो देखती आलात कर - पृ 49

[143] क्षमा शर्मा - लड़की जो देखती आलात कर - पृ 51

बागडोर को खुद संभालने के काबिल अब वह हो गयी है तब उसकी तलाश में लोग आने लगते हैं । लेकिन उसे अब किसी की भी सहायता की आवश्यकता नहीं । बाप के साये के बिना बच्चों को पालने की मानसिकता वह बना चुकी थी । समाज की परवाह किए बिना अपने बच्चों को पालने की कोशिश उसकी प्रतिरोधी मानसिकता का बयान है ।

मलयालम की लेखिका कय्युम्मु की कहानी 'नोम्परक्किनाव' की नायिका को भी प्रेमी से धोखा खाना पडता है । वह परिवारवाले एवं पड़ोसियों की व्यंग्योक्तियों कीउपेक्षा करके अपनी कोख में अंकुरित नन्हे जीवन के इस धरती पर लाने का फैसला लेती है । वह सोचती है "बहुत दर्द सहकर ही मैंने इसे जन्म दिया था । उसका संरक्षण एवं पालन-पोषण मेरी जिम्मेदारी है ।"[144] इसलिए वह घर से भाग जाती है ।

सुहरा की कहानी 'पेट्टिच्चि' में माता और माधव एक दूसरे को बहुत चाहते थे । एक दिन माधव को सांप डंसता है और वह मर जाता है । तब माता पेट से थी । गाँववाले एवं परिवारवालों के पूछने पर वह बच्चे के पिता का नाम नहीं बताती क्योंकि वह माधव का नाम खराब करना नहीं चाहती थी । अकेली पडी, माता की जुबान तीखी हो जाती हैं । जब उसे प्रसव पीडा शुरू हो जाती है तब वह किसी की भी सहायता के बिना बिस्तर पर बैठकर चाकू से नाभी स्वयं काट लेती है और अपनी जचगी उठाती है

। बाद में वह किसानी छोड़कर दाई बन जाती है ।इस तरह वह अपनी बाकी कीज़िन्दगी गुज़ारती है ।

एक पिता के नाम के बिना बच्चे को जन्म देने के लिए औरत को पूरे समाज के खिलाफ जाना पड़ता है । फिर भी ऐसे पात्रों जिन्हें समाज के खिलाफ संघर्ष क्यों न करना पडे, अपने बच्चों

---

[144] कय्युम्मु - नोम्परक्किनाव - पृ. 38

को ठुकराती नहीं । हिन्दी-मलयाल लेखिकाओं ने ऐसे पात्रों को जन्म दिया है, जो अपने बल-बूते पर अपनी सन्तानों को नई ज़िन्दगी देने एवं उनके भविष्य को संवारने की कोशिश में लगी रहती हैं ।

3.3.4.2 अवैध संबन्ध

हिन्दी-मलयालम की लेखिकाएँ ऐसी स्त्री पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालती हैं जो अपने वैवाहिक जीवन के असन्तोष के कारण अन्य पुरुषों के साथ संबन्ध जोडने के लिए विवश हो जाती है । साधारणतया विवाहोपरान्त पति के नामर्द एवं शंकालू होना और वैवाहिक जीवन में अपनी यौनेच्छाओं का दमन इनकी असन्तोष का कारण है ।

नीलम सिंहा की कहानी ‘चुनिया’ में चुनिया एक सुखी वैवाहिक जीवन के लिए तरस जाती है । तीन वर्ष के वैवाहिक जीवन ने उसको एक कर्कश सास, निकम्मा नामर्द पति के अलावा कुछ नहीं दिया । उन्हें बच्चा भी नहीं होता । एक बार वह अपने भूखे शरीर को बचपन का प्रेमी जगदीश को समर्पित करती है । वह सोचती है "इसी तरह जितने दिन रही जगदीश का साथ रहा और मुझे लगता रहा नया जीवन मिला है.... जिस पति ने एक बार भी अपना पति धर्म नहीं निभाया उसके लिए कितना सोचूँ?.... एक नया आत्मा सजीव होकर मेरे आ गया है तो पाप कैसे हो सकता है? मैंने कोई गलती नहीं की है । अपने जीवन की सार्थकता मातृत्व है । सोचना पाप नहीं पुण्य ही है मेरा ।"[145] मतलब यौनेच्छाएँ सिर्फ पुरुष की ही नहीं स्त्री की भी होती है । सास अपने वंशवृक्ष को उसके गर्भ में पलते देखकर उसका खयाल रखने लगती है । उसका पति रोज रात को उसे पीकर पीटने की आदत भी छोड़ देता है । इस तरह चुनिया अपने जीवन को सार्थक बनाती है ।

---

[145] नीलम सिंहा-धूप छाँह, - पृ. 120

मधु कांकरिया की 'चूहे को चूहा ही रहने दो' कहानी की नायिका पहली बार पति के बिना घूमने निकलती है । तब वह अपने आपको मुक्त और निर्भीक समझती है । पति अपनी धोती मर्यादाओं का सीख देकर पत्नी को हमेशा इशारों पर नचाया करता था । अपने भाई के मित्र से हाथ मिलाने के कारण पति उसके हाथों को दीवार पर रगड़ देता है । अपने व्यक्तित्व का हनन होते देखकर पत्नी का प्रतिशोध इस हद तक बढ़ जाता है कि पति के अभाव में गैर मर्द के साथ एक रात गुजारती है । वह कहती है "यह प्रतिशोध तो इसी प्रकार लिया जा सकता था । जिस प्रकार बिना जल में कूदे तैरा नहीं जा सकता है... उसी प्रकार बिना देह से यह प्रतिशोध भी लिया नहीं जा सकता था । रही बात अपने को गिराकर लेने की.... सो मैं नहीं मानती कि मैंने स्वयं को गिराया है । क्योंकि वह मेरी वासना नहीं, प्रतिशोध की अग्नि थी, जिसकी ज्वाला में मैं धधक रही थी । नैतिकता, सच्चरित्रता और पवित्रता... ये सारे सत्य मुक्तात्मा पर लागू होते हैं - जीवन की स्वाभाविक माँग, इस माँग को ठुकराकर कोई भी सत्य हासिल नहीं किया जा सकता है । ...इस प्रतिशोध में भी जीवन के कुछ मूल्य और नारी बोध जुड़ा हुआ था ।"[146] स्वयं को मर्द के हवाले कर वह अपने अपमान का बदला लेती है ।

मलयालम की लेखिका के.आर. मीरा की पश्य, प्रिय, कोंकणे कहानी की नायिका सती पति की 'टेम्स एण्ड कण्डीशन्स' पर जीने के लिए विवश हैं । वह आजीवन पति की कण्डीशन्स का पालन करने की कोशिश करती है । एक दिन अचानक वह अपनी दोनों बेटियों एवं पति को छोड़कर मंदिर का पूजारी दिवाकरन के साथ भाग जाती है । सती दिवाकरन् से कहती है " प्रभाकर को मेरा बोलना पसंद नहीं था, रात में ऑफिस से आने पर उन्हें सिर्फ विश्राम करना था । मैं भी

[146] मधु कांकरिया - बीतते हुए - पृ. 190-191

एक मनुष्य हूँ, मुझे भी किसी से बातें करने की इच्छा थी । वहाँ मुझे कभी यह महसूस नहीं हुआ कि मेरी बातों को सुनने के लिए भी कोई है ।"[147] सती अपनी मनचाही जिन्दगी जीने के लिए तरस जाती है । एक इनसान होने के नातेउसकी भी इच्छाएँ और आकांक्षाएं थी । उसकी पूर्ति के लिए सती उस को दिल जान से मुहब्बत करता दिवाकरन के साथ भाग जाती है ।

3.3.4.3 वेश्याजीवन

समाज में वेश्याओं की बढ़ती हुई तादाद पितृसत्तात्मक व्यवस्था से गहरा तालूक रखता है । सेक्स-वर्कर्स के रूप में इनकी पैदाइशी नहीं होती, ये परिस्थितिवश दैहिक व्यापार में जा फँसती है । यह इसलिए है कि पुरुष अपनी यौनेच्छाओं की पूर्ति हेतु यह माँग रखता है । उस समाज में वेश्यावृत्ति उतनी ही बढ़ती जायेगी जिस समाज में पितृसत्तात्मक मूल्य मजबूत होंगे । कुछ लड़कियाँ जो ट्रेफिकिंग द्वारा सोनागाच्छी जैसे 'रेडलाइट एरिया' में जा फंसती है । एक बार उनका प्रवेश कर पाने पर बाहर निकलना मुश्किल ही नहीं असंभव सा बन जाता है । गरीबी के मारे, दलित एवं बेसहारा औरतें इस पेशे में उतरती हैं । क्योंकि इन्हें अपने जीवनयापन एवं बच्चों के पेट भरने हेतु ढंग की नौकरी नहीं मिलतीं । तब उनके सामने एक मात्र विकल्प बचता है, वह है उनकी देह । इसे अपने आय संसाधन का मार्ग बना लेती है । इस संदर्भ में प्रभा खेतान का वक्तव्य ठीक निकलना है " देह की ज़रूरत जब उद्योग व्यवस्था को नहीं पड़ती, सेवा उद्योग भी उसे नियुक्त करना चाहता तो उसका निवेश यौन उद्योग में होने लगता है ।" [148]मतलब यह है कि यदि ये स्त्रियाँ सबल एवं, आर्थिक दृष्टि सेस्वावलंबी हो जाए तो उन्हें इस दलदल में फंसना ही नहीं

---

[147] के.आर. मीरा - पश्य, प्रिय, कोंकणे - पृ. 75

[148] प्रभा खेतान - बाज़ार के बीच बाज़ार के खिलाफ - पृ 145

पड़ता। जिस्म बेचती ऐसी स्त्रियों की मजबूरियाँ यदि दूर हो जाए तो वे मुख्यधारा में लौट सकती हैं।

वेश्यावृत्ति का घातक परिणाम है संक्रामक बीमारियाँ इस धंधे की भयावहता से वेश्याओं को अवगत करना ज़रूरी है। हमारी सरकार को इसके निवारण हेतु काम करना है। प्रभा खेतान लिखती है "वेश्यावृत्ति एक नयी विकसित रणनीति है। आज यह केवल गरीब स्त्रियों की रोज़ी-रोटी से सम्बन्धित नहीं बल्कि इसके आधार पर राष्ट्र अपना विकास कर रहे हैं।"[149] उनके अनुसार राष्ट्र इसका उन्मूलन कभी नहीं चाहेगा। वेश्यावृत्ति को श्रम की संज्ञा देना उचित नहीं क्योंकि यह स्त्री को वस्तु के रूप में परिणत करता है और यौन उत्पीड़न को बढ़ावा देता है।

कविता की 'उल्टबाँसी' कहानी में एक वेश्या अपने प्रतिरोध को आवाज़ दे रही है। उसकी माँ को बचपन में एक आदमी ने कोठी में ले जाकर बेचा था। वह इस धंधे में फंसने के बावजूद भी वहाँ से भाग निकलने का अथक प्रयास करती है। उसके मन में एक इज़्ज़त की जिन्दगी गुज़ारने की ख्वाहिश थी। इसलिए वह एक शादीशुदा आदमी के साथ भाग निकलती है। उस आदमी के बेटे को इसका पता चलता है तो वह यह जानकर अपने पारिवारिक जीवन को बचाने की खातिर उससे बाप-बेटे दोनों की बनकर रहने का प्रस्ताव रखता है। लेकिन वह इस प्रस्ताव का खुलकर विरोध करती है। उस समय वह गर्भवती थी। अपनी बेटी को पालने के लिए वह फिर से उस धंधे में उतरती है। बडी होकर बेटी यानि कहानी की नायिका भी माँ का धंधा ही करने का फैसला लेती है। वहकहती है "जबरदस्ती किस ज़बरदस्ती की बात कर रहे है आप? मुझे देखकर आपको यह लगता है क्या कि मुझसे जबरदस्ती भी की जा सकती है? जबरन सम्बन्ध आप लोगों के घर में हीबनाये जाते हैं, ब्याह के नाम पर, परिवार की इज्जत के नामपर,औरतें झेलती रहती हैं सब, मन-बेमन। पति है वह, उसका सब कुछ झेलना होगा। खुशी-खुशी। जीवनदाता-अन्नदाता जो

---

[149] वहीं पृ 238

ठहरा । मैं बहुत सुरक्षित हूँ, बहुत सुकून में । मैं अपनी जीवन की वास्तविकताओं से वाकिफ हूँ इसलिए जिसे आप गन्दगी कहते हैं उसका शफ्फाकपन मेरी आँखों के आगे है और साफ-सुथरे के भीतर छुपाकर रखा गया मैल भी परख ही लेती है, मेरी आँखें ।"[150] अपनी माँ के साथ जो हुआ था इससे वह पारिवारिक जीवन से घृणा करने लगी थी । पुरुष एक ओर सामाजिक व्यवस्था की दुहाई देकर विवाह संस्था को अनिवार्य बनाता है तो दूसरी तरफ महिलाओं को वेश्या, देवदासी बनने को मजबूर करता है । दोनों हालत में स्त्री ही पिसती है ।

क्षमा शर्मा की 'भूख' कहानी में भी एक वेश्या अपने को घर-गृहस्थी में बन्दी औरतों से ज़्यादा स्वतंत्र मानती है । वह कहती है "यही कि जिन्होंने हमें यहाँ फेंका वे ही हमें यह सिखाते हैं कि यहाँ रहना कितना बुरा है थू... बीवी भी चाहिए, नाचने वाली भी । नाचनेवाली के लिए वे बातें बुरी नहीं है जो बीवी के लिए... बीवी को इसलिए हमेशा बाहर निकलने, रात-बिरात बाहर जाने डर दिखाया जाता है । हमेशा का एक डर कहीं कोई छोड़ न दे, कहीं कोई फब्ती न कसदे... टैक्सी में अकेली मत बैठना... टैक्सी वाला गुण्डों के साथ मिलकर बलात्कार न कर दे... जिधर देखो डर.... डर.... डर बीवी डरेगी नहीं तो काबू में नहींरहेगी.... ऐसी दुनिया में मैं अपनी लड़की को क्यों भेजूँ? वह यहीं ठीक है । ढोंकऔर मक्कारों से दूर ।"[151] वह अपनी बेटी को ऐसे पुरुष के हाथ सौंपना नहीं चाहती, जो मज़बूरी का फायदा उठाकर अनेक महिलाओं से संबन्ध स्थापित कर सकता है और अपनी पत्नी से एकनिष्ठता की माँग रखता है । इस पक्षपातपूर्ण मानसिकता के प्रति वह प्रतिरोधी व्यंग्यबाण छोड़ती है ।

---

[150] कविता - उलटबासी - पृ 71

[151] क्षमा शर्मा - लड़की जो देखती पलटकर - पृ 167

मेहरुन्निसा परवेज़ की 'खेलावड़ी' कहानी की पात्र लालमणी जो परिस्थितिवश खेलावड़ी बन जाती है । लालमणी की शादी पक्की कर दी गयी थी लेकिन लड़के का बाप उसके पिता से रकम माँगता है । उसके गरीब बाप के पास रकम न होने से रिश्ता टूट जाता है । घर में और तीन बेटियों के कारण लालमणी को बेचने के लिए बाप मजबूर हो जाता है । एक खेलावड़ी परिवार उसकी देखभाल करती है एवं उसे खेलावड़ी बना दिया जाता है । खेलावड़ी का मतलब है धंधेवाली । वह घर में बैठकर धंधा करने लगती है । ग्राहक खुद चलकर उसके घर आता है । एक बार उससे मिलने के लिए शंकर नामक युवक जिसके साथ उसकी सगाई टूट गयी थी, माफी माँगता है लालमणी कहती है "उस रात जब तेरे घर लालमणी अपने बाप की सारी मर्यादा छोड़कर आई थी तब तूने उसकी मर्यादा रखी थी? उस दिन तू बलवान था, आज मैं बलवती बन गई हूँ । उस दिन तेरे द्वार पर मैं भीख माँगने आई थी, आज तू भीखमाँगने आया है । जा चला जा! यहाँ खेलवाड़ी रहती है । उसका कोई नाम, गाँव, ठिकाना नहीं होता ।"[152]अगर उस दिन उसनेललमणि का हाथ थाम लिया होता तो उसे यह दिन न देखना पड़ता । उसके पैसे के लालचने लालमणि की जिन्दगी को तबाह कर दिया था । उस आदमी को मॉफी देने के लिए वह तैयार नहीं होती । एक इज्जत की जिन्दगी जीने का उसके सपने को जो उस आदमी ने चूर-चूर कर दिया था । आज वह देह बेचकर भी तो क्या अपनी पैरों पर खड़ी है । आज विकृत मानसिकता वाला पुरुष उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता ।

मलयालम लेखिका अषिता की 'ओत्तुतीरप्पुकल' कहानी में वेश्या कुप्पम्मा के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है । कुप्पम्मा पर दोष लगाकर आस पास की स्त्रियाँ उसे हेय दृष्टि से देखने लगती हैं । तब कुप्पम्मा का कहना है "दिन ढलते आप जैसी महरानियों के पतिदेव ही मेरे पास

---

[152] महरुननिसा परवेज़ - समर पृ 97

आते हैं । किसी को कुछ कहने का हक नहीं बनता ।"[153] मतलब यह है कि पुरुष वर्ग इसकी माँग रखता है । इसीलिए तो आज भी यह धंधा चल रहा है । हमें वेश्या को नहीं, बल्कि उसे इस स्थिति में पहुँचानेवाले कारकों को ढूँढ निकालना है एवं उसकी भत्र्सना करनी है । कुप्पम्मा प्रताड़िता है । उस पर इल्ज़ाम लगानेवाली स्त्रियों के सामने वास्तविकता को रखकर वह समाज को ललकारती है ।

सरस्वती शर्मा की 'मरियम' कहानी में वेश्या मरियम समाज में हो रहे सभी तरह के भेदभाव को चुनौती देती है । वह समाज की ओर अपना व्यंग्य बाणछेड़ती है "इस मरियम को वयभेद नहीं, देशभेद नहीं जातिभेद नहीं, उच्चनीचत्व नहीं, रंगभेद नहीं । मुझमें सभी का स्वागत है । सचमुच मैं ही इस देश की समतावादी हूँ ।"[154]वेश्या मरियमइस समाज में हो रहे दुराचार के प्रति सचेत है । वह इस धंधे में अपनी मर्जी के खिलाफ किसी को भी पास आने नहीं देती । उसके द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार ही मरियम के साथ एक दिन गुज़ारा जा सकता था । समकालीन हिन्दी-मलयालम लेखिकाएँ ऐसी वेश्याओं के चरित्र पर प्रकाश डालती हैं । जो हीनता बोध से मुक्त हैं और सभ्य समझनेवाली औरतों से ज़्यादा अपने को स्वतंत्र समझती हैं ।

3.3.4.4 बाल विवाह

बाल विवाह एक सामाजिक अन्याय है । इसमें मानवाधिकार का उल्लंघन होता है । समाज में इस कुप्रथा को रोकने के लिए संविधान द्वारा बाल विवाह अवरोध अधिनियम 1929 बनाया गया है । यह अधिनियम बाल विवाहों को अर्थात् जिस विवाह में वर और कन्या या इनमें से कोई एक खास उम्र से कम उम्र का हो उस विवाह को निषिद्ध मानने के लिए बनाया गया है ।माँ-बाप बचपन से ही बेटी को बोझ एवं पराया धन समझने की मानसिकता से ग्रस्त है । कुछ लोग जल्द-

---

[153] अषिता - अम्माएननोड्डु परजा नुनकल - पृ 44

[154] सरस्वती शर्मा - तष्पविलोरूरक्कम - पृ 44

से जल्द उसकी शादी करा के अपने इस बोझ से मुक्त होना चाहते हैं। आज भी कुछ जगहों में बाल-विवाह चालू है। इसके द्वारा पाँच-छह साल की अबोध बालिकाओं को शादी के बन्धन में बाँध कर उसके स्वतंत्र अस्तित्व के विकास पर रोक लगा दी जाती है। शादी के वक्त माँ की गोद मेंबैठकर बालिका सिर्फ भौचक तमाशा देखती है। भविष्य का तो उन्हें कुछ ज्ञान भी नहीं होता। बडी होकर अगर किसी से प्यार भी करने लगी तो भी इस बन्धन से वह मुक्त नहीं हो पाती। समकालीन लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में ऐसी पात्रों का निर्माण किया है जो समाज को इस कोढ़ से दूर करना चाहती हैं।

मीराकान्त की कहानी 'गली दुल्हनवाली' में दो बेटियों का बाप रज्ज़ाक, बड़ी बेटी नरगीस की शादी पक्की करता है। पैसे की खातिर वह अपने दोस्त के साथ बेटी की शादी कराना चाहता है। नरगीस बच्ची थी।उसे शादी की उम्र नहीं हुई थी। उसकी शादी की बात सुनकर माँ नगीना चीखती हुई कहती है "मैं ऐसा नहीं होने दूँगी, तू बाप है कि जल्लाद, बेच के खाएगा बेटी को, इससे तो अच्छा है कि उस मासूम को कमेले ले जाकर जिबह कर दे।"[155] रज्ज़ाक अपने फायदे के लिए अपनी बेटी को बेचने तक उतारू हो जाता है। लेकिन उसकी माँ ऐसा होने नहीं देती। वह अपनी बेटी को पढ़ा-लिखाकर उसे आत्मनिर्भर बनाने का सपना देखती है।

3.3.4.5 सहजीवन

भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया के तहत् 'लिव इन रिलेशन' महानगरों में एक नई जीवनचर्या के रूप में अपनाया जा रहा है। यह परिवार के पुराने रूप के अनुकूल नहीं है। पारिवारिक शोषण से मुक्त होने के लिए समाज, संबन्ध के इस नए रूप की ओर स्त्री और पुरुष मुडे है, क्योंकि स्त्री आज संबन्धों में स्वतंत्रता तलाश रहीहै। इस रिलेशनशिप में वह स्वयं को स्वतंत्र पाती है। वह

---

[155] मीराकान्त - गली दुलहनवाली - पृ 190

इस रिलेशन में रहते, जीवन साथी की प्रताड़ना सहने के लिए विवश नहीं है । इसे प्रेम का एक लौकिक रूप कह सकते हैं। इनके अनुसार दो विपरीत लिंगी एक-दूसरे को पसंद करते हैं तो, बिना किसी सामाजिक बन्धन में बंधेवे साथ-साथ रह सकते हैं। ये लोग प्रेमी जोड़े के रूप में आजीवन एक सुखद सहजीवन बिताने का प्रण लेते हैं। इनका सवाल है कि इस बंधन में यदि प्रेम, मज़बूत लगाव, एक साथ महसूस की जानेवाली सभी भावनाएँ, सम्मान, घनिष्ठता, आकर्षण और मोह है तो विवाह की क्या आवश्यकता हैं? स्त्री आज 'लिव इन रिलेशन' में अपनी स्वतंत्रता का मार्ग ढूँढ रही है।

'लिव इन रिलेशनशिप' के सकारात्मक पक्ष भी है और नकारात्मक पक्ष भी । समाज पूरी तरह से इस रिश्ते को स्वीकारता नहीं है। सिर्फ इसे खुले यौनाचार के रूप में देखता है। हम इससे पूरी तरह सहमत नहीं हो सकते । अगर व्यक्ति स्वतंत्र्य के रूप में ले तो इसे स्वीकारना ही है । नासिरा शर्मा कहती है "यदि किसी स्त्री और पुरुष के बीच आपसी सहमति और सहजता से कोई संबन्ध विकसित होता है तो उसके खिलाफ में नहीं हूँ, जब तक कि उससे समाज को कोई नुकसान नहीं पहुँचे, क्योंकि पिछले कुछ दशकों में समाज ने एक ऐसा पुरुष समाज विकसित किया है, जिसकी न तो वैवाहिक संबन्ध में रुचि है और न ही घरेलू औरत में। वह बिना विवाह के सभी के साथ रहना चाहता है। कुछ स्त्रियाँ भी इसी खयाल की है। ये लोग एक खुला और स्वतंत्र संबन्ध स्थापित कर ज़िन्दगी व्यतीतकरना चाहते हैं ।"[156] संबन्ध भी हो अगर वह समाज के लिए हितकारिणी नहीं है तो लेखिका भी उसके पक्ष में खडा होना नहीं चाहती ।"लिव इन रिलेशन" में भी स्त्रियाँ प्रेम करती हैं, संभोग करती हैं, गर्भपात करती हैं, लड़ती-झगड़ती है, घरेलू हिंसा के

---

[156] नासिरा शर्मा - औरत के लिए औरत - पृ 11

दौर से गुज़रती है, उनके संबन्ध टूटते बनते हैं। इस प्रकार पारिवारिक जीवन में जो कुछ शोषण उनको सहना है इस रिश्ते में भी वे सब उन्हें सहना पड़ता है।सम्बन्ध को बनाये रखने के लिए वे कोशिश भी करती है। समकालीन हिन्दी-मलयालम कहानीकारों ने इस मुद्दे को अपनी कहानियों का विषय बनाया है।

कविता की 'मेरी नाप के कपड़े' कहानी में कल्पना और रवि "लिव इन रिलेशनशिप" में है। घरवालों से दूर आकर दोनों एक साथ बिना विवाह किए सहजीवन जी रहे हैं। लेकिन इस रिश्ते में भी पति और पत्नी के बीच होनेवाले झगडे होते रहते हैं। कल्पना को कपड़ों की 'शोपिंग' करना अच्छा लगता है। कपडों के लिए इतना खर्चा करना रवि को रास आता नहीं। रवि हर बात पर उसे ठोकता रहता है। कल्पना को यह हज़म नहीं होता। वह पूछ बैठती है "कौन-सा मैं हज़ार-लाख के सामान खरीद लाती हूँ। कौन-सा इसके लिए तुमसे पैसे माँगती हूँ। खर्च के नाम पर जो पैसे तुम गिनकर देते हो उनमें से जैसे-तैसे बचाती हूँ। ...मेरी समझ में हर किसी को अपने मन का पहनने - ओढ़ने की स्वतंत्रता तो होनी चाहिए। किसी की पसंद को ढ़ोना भी तो गुलामी है। गुलामी ही नहीं चाहिए तभी तो इसके साथ हूँ,एक-दूसरे की आज़ादी और जीने की ढ़ब को तरजीह देते हुए। वर्ना विवाह में ही क्या बुराई थी। जब रिश्ता तानाशाही का ही रूप ले ले तो कैसा जीवन।"[157] वह समझ जाती है कि पुरुष कोईभी हो स्वामित्व और अधिकार जताएगा ही। इस रिलेशनशिप में रहते हुए वह ये सब सहने के लिए तैयार नहीं होती। व्याहता न होने से उनका रिश्ता आपसी समझ और तालमेल पर आधारित है। इसमें साथ रहकर एक-दूसरे की भावनाओं का सम्मान नहीं कर पाते तो, दोनों की अपनी अपनी राह पकड़ने की स्वतंत्रता है। इस रिश्ते की

[157] मेरी नाप के कपड़े - कविता - पृ 133-134

बुनियाद ही इसी शर्त पर टिकी है । निभ न सके तो कल्पना अपनी राह खोजने का मन बना लेती है ।

मलयालम की लेखिका सावित्री राजीवन की कहानी 'बोधी' में सीता एक वैज्ञानिक है । वह एक प्रपत्र प्रस्तुतीकरण के लिए दिल्ली में जाती है । प्रस्तुतीकरण के पश्चात् वहाँ पर आया हुआ एक पुरुष उसे बधाइयाँ देकर बहुत प्रोत्साहित करता है । इससे उसका आत्मविश्वास बढ़ जाता है । तब उसे यह सोचकर बहुत दुःख होता है कि श्रीधर ने आज तक उसकी नौकरी के या लेखन के पक्ष और विपक्ष में कुछ भी तो नहीं कहा है । उस आदमी का प्रोत्साहन उसकी जिन्दगी को जड़ से हिला देता है । वह मन ही मन उस आदमी से प्यार करने लगती है । वह अपनी सहेली से कहती है "मेरी आँखों के सामने,कानों में एवं हृदय में उस अभिनन्दन एवं लंबी तालियों का लय मात्र बचा है । उसने मेरी जिन्दगी के लय को जड़ से हिला दिया है । दूर से देखा गया वह हिलते हाथ एवं शब्दों और उस अनजान व्यक्ति से मैं प्यारकरने लगी हूँ ।" [158]श्रीधर के रिलेशन में 25 साल बन्धे रहने के बाद उसे पता चलता है कि उसकी व्यावहारिक ज़िन्दगी में जो प्रोत्साहन श्रीधर से चाहिए था वह उसे नहीं मिला है । एक अनजान व्यक्ति ही उसकी इज्जत करता है और उसकी भावनाओं को जानने की कोशिश करता है । चाहे पति हो या सहजीवन के साथी वे पुरुष सही रूप में स्त्री की भावनाओं को समझने केलिए तैयार नहीं होता ।

वत्सला की कहानी 'अम्मयुडे मकन' में दुर्गा अपनी अपूर्णता को पूर्ण बनाने के लिए एक पुरुष को तलाशती है । वह विवाह में विश्वास नहीं रखती । लिव इन रिलेशन बनाना चाहती है । अभिजित के साथ वह रहने लगती है । वह अपनी औरतपन को पूरा करने के लिए एक बच्चा भीचाहती है । लेकिन अभिजित उसके लिए तैयार नहीं होता । अपनी जिद के कारण ही वह गर्भवती होती है । वह अभिजित से कहती है "इस बात को लेकर हमारे बीच झगड़ा न हो तो

---

[158] सावित्री राजीवन -संचारिकालूडे तनुपोय वीडु - पृ 69

अच्छा रहेगा। तुम मुझे छोड़कर जाना चाहता है तो जाएँ। मुझे लेकर कोई कर्त्तव्यभाव मन में नहीं रखें। मेरी अपनी इच्छा ही मुझे आगे की ओर ले जाती है। प्यार क्या होता है मैं जान चुकी हूँ। अब माँ बनने की खुशी भी महसूस कर चुकी हूँ।"[159] बच्चे को लेकर दोनों की राय अलग था। इस विषय को लेकर दोनों के बीच लड़ाई भी होती है। एक-दूसरे की पसंद ना पसंद को एक दूसरे पर थोपने की प्रवृत्ति के पक्ष में वह नहीं है। इसीलिए तो उसने लिव इन रिलेशन को स्वीकारा था। लेकिन दोनों की पसंद अलग-अलग है यह जानकर वह अभिजित को अपनी जिन्दगी से अलग करना चाहती है। उन लोगों के बीच बचे-खुचे प्यार को वह गुलामी में बदलना नहीं चाहती।

3.3.4.6 समलैंगिकता

ताईपेई में घटित लेस्बियन आन्दोलन एक महत्वपूर्ण घटना है। ताइवान की राजधानी है ताईपेई। 1972 में प्रमुख बौद्धिक शिव लिएन लू के नेतृत्व में यहाँ का नारीवादी आंदोलन शुरू हुआ था। नारीवाद की नये दौर में उन्होंने स्त्री की पारंपरिक भूमिकाओं पर सवाल उठाया। यहउदारवादी विचारधारा से प्रभावित था। उसमें लेस्बियन बहस को भी शामिल किया गया था।स्त्री के दैहिक शोषण के खिलाफ ही इस समलिंगी विमर्श को तलाशा गया। स्त्रियाँ सेक्स की मुक्ति को अब सेक्स से मुक्ति की बात करने लगी हैं।

औरतों ने लेस्वियनिज़्म को दैहिक तादात्म्य से कहीं ऊपर की चीज़ माना है। ऐड्रीन रिच इसे 'लेस्वियन कॉन्टिन्यूअम' (सखी - भाव परिविस्तार) के रूप में देखती है। उन्होंने इसे विश्वभर की महिलाओं के अंतश्चेतनागत साहचर्य सेजोड़ा। विश्व भर में उनकी समस्याएँ प्रायः एक जैसी हैं। गृहकार्यादि में पुरुषों की साझेदारी का अभाव इसका प्रमुख कारण है। बलात्कार और अन्य यौन शोषण की यंत्रणा से बच निकलने के लिए, दहेज, प्रताड़ना से उभरने के लिए, पैतृक संपत्तिके

---

[159] वत्सला - मलयालतिले सुवर्णकथकल - पृ 61

संदर्भ में व्यावहारिक अड़चनों से एवं परस्पर अविश्वास से मुक्त होने के लिए,आत्मसम्मान और बराबरी के व्यवहार की माँग के लिए भी स्त्रियाँ समलैंगिकता को अपना रही है।

स्त्री-पुरुष के यौन-संबन्ध पर भी पुरुषवर्चस्व हावी रहा है।यौन संबन्धोंमेंभी पुरुष हिंसाव आक्रामकता से प्रेरित रहा है।यही पर हीसमलैंगिकता कासवाल आकर टिकता है। इनका मानना है कि इतरलिंगी संबन्ध का मतलब अन्ततः पुरुष के वर्चस्व को स्वीकारना है। लेखिका प्रभा खेतान का मानना है कि इस विचार से स्त्री की पुरुष पर निर्भरता में एक बदलाव ज़रूर आया है। लेकिन स्त्री-मुक्ति के लिए अनिवार्य रूप से समलैंगिक होने की आवश्यकता नहीं है। इसे व्यक्ति-स्वातंत्र्य के रूप में देखना है। समलैंगिकताको हम यौन-चयन की स्वतंत्रता के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। अब यह संबन्ध कानूननवैध है। सुप्रीम कोर्ट ने ऐतिहासिक जजमेंट में होमो सेक्शुअलिटी को अपराध बनानेवाले कानून (IPC की धारा 377) की संवैधानिक वैधता को बहाल कर दिया है। सुप्रीम कोर्ट ने दिल्ली डाईकोर्ट के उस फैसले को खारिज कर दिया है, जिसमें दो बालिगों द्वारा आपसी सहमति से समलैंगिक संबन्ध बनाने को अपराध की श्रेणी से बाहर कर दिया था। लेकिन सुप्रीम कोर्ट के 11 दिसम्बर 2013 के दिल्ली हाईकोर्ट के फैसले को खारिज कर दिया था, जिसमें आपसी सहमती से बनाए गए ऐसे संबन्धों को अपराध नहीं माना गया था।

समलैंगिकता को केन्द्र में रखकर लिखी गयी कहानी है 'जलत्तिलूडे नडक्कुन्न कन्यकमार'। यह कहानी मलयालम की लेखिका इन्दुमेनोन द्वारा लिखी गयी है। कहानी में अमुदा और रसिया एक दूसरे से प्यार करती हैं। पति के अत्याचारों को सहन न कर अमुदा, रसिया के साथ भाग जाती है। अमुदा के साथ उस वृद्ध की तीसरी शादी थी। वह उसके पिता का दोस्त था। उसे बचपन में वह पिताजी ही बुलाती थी। उस आदमी की बेटियाँ उससे भी बड़ी थीं। रसिया और अमुदा के प्यार के बारे में जानकर उसका पिताजी उसके लंबे बालों को काट देताहै। सिर मुण्डन

करके उसे कमरे में बन्द कर देता है। लेकिन अमुदा वहाँ से बचनिकलकर रसिया के पाँस पहुँचती है। अमुदा रसिया के बच्चे को जन्म देना चाहती है। इसलिए वे आस्पताल पहुँचती है। अण्डदान के लिए रसिया का ओपरेशन करवाते हैं। वहाँ पर आये पत्रकारों से अमुदा कहती है कि "मुझे वहाँ से प्यार नहीं मिला, एक पत्नी होने का दर्जा तक न मिला। मैं भी एक युवति हूँ। केवल मुझे सताते रहना उसकी रति थी। मेरा हाहाकार ही उसकी रतिमूर्च्छाएँथा।"[160]उसे पति को देखने पर पीले पड़े दाँत लिए खडे भूखे पागल सियार की याद आती है। अपने दाम्पत्य जीवन से नाखुश होकर ही अमुदाने यह कदम उठाया था।

वत्सला की 'दुष्यन्तनुम भीमनुमिल्लात्त लोकम्' कहानी में भी इस मुद्दे को उजागर किया गया है। कॉलेज के दिनों में वरदा, सरोजिनी से प्यार करती थी। लेकिन सरोजिनी की शादी माधवन नायर से होती है। शादी के बाद पता चलता है कि वह एक पागल था। पति की इलाज के लिए उसे वरदा के पिता के पास जाना पडता है। वहाँ फिर से वरदा से भेंट होती है। सरोजिनी की बदहालत देखकर वरदा को बहुत दुःख होता है। वरदा के प्यार को दुबारा पाकर वह सबकुछ भूल जाती है। पर दाम्पत्य जीवन के बोझ से मुक्त होकर अपनी चहेता वरदा के साथ आगे की ज़िन्दगी जीने का फैसला लेती है।

सी.एस. चन्द्रिका की 'कांजीपुरम' कहानी डॉ. अष्रक और देवी दोनों पति-पत्नी हैं। भिन्न भिन्न जाति के होने के कारण उन्हें घर से भागकर शादी करना पडाथा। शादी के बाद देवी संगीत में पी.एचडी की उपाधि प्राप्त करती है। लेकिन अपने पति के नाजायज संबन्ध के बारे में जानकर, अपनी बारह साल की बेटी को लेकर वह दिल्ली वापस आ जाती है। देवी के मन में जो पीड़ और दर्द रही थी वह उसके संगीत में अन्तरलीन था। इसे प्रोफेसर तारा ही पहचान पाई।वह उसकी

---

[160] इंदुमेनोन - कथकल - पृ 201

चोटों पर मरहम लगाने का प्रयास करती है। दोनों एक दूसरे के इतने निकट आ जाते हैं कि वे एक साथ रहने लगती हैं। दोनों मिलकर बेटी का पालन-पोषण करती है। वे एक प्यार भरी ज़िन्दगी गुज़ारने लगती है। अपने दाम्पत्य जीवन से निराश होकर ही देवी तारा के साथ रहने लगती है। क्योंकि वह पहचान जाती है कि तारा ही वह व्यक्ति है जो उसके दर्द को समझती है।

सितारा एस. की 'स्पर्शम' कहानी में माद्री, शादीशुदा और एक बेटी की माँ होने पर मरिया से प्यार करने लगती है। पति नंदन माद्री के विचारों को समझने की कोशिश नहीं करता पर मरिया उसे पूर्णरूप से पहचान लेती है। इसलिए माद्रीसमय मिलते ही मरय के पासजाती है।दोनों के प्यार के आगे नंदन हार जाताहै। अपने पुरुषत्व परवार करती मरियाको वह मार डालना चाहता है लेकिनउसके सामने नंदन का पुरुषार्थ हार जाता है।इस विषय को मलयालम की लेखिकाओं ने जितना दस साल के अन्तराल में केन्द्रीय मुद्दे के रूप में स्वीकार कर लिया है। उतना हिन्दी में नहीं मिलता। ज्यादातर मलयालम की कहानियोंमें इस मुद्दे के विभिन्न पहलुओं पर ज़ोर दिया गया है।

3.3.5 विधवा जीवन

विधवा जीवन अनेक सामाजिक रूढ़ियों से ग्रस्त है। इसके परे पितृसत्तात्मक समाज ने उसके ऊपर अनेक बन्धन भी लागू कर दिए है। उस समय समाज में हिन्दू स्त्री को जिन्दा जलाने एवं दफनाने की कुप्रथा (सती प्रथा) भी रही थी जो मानवीय संवेदना को उद्वेलित करने वाली थी। नवोत्थान के फलस्वरूप समाज सुधारकों ने समाज में व्याप्त कुप्रथाओं को खत्म करने की कोशिश किया था। राजाराम मोहनराय ने सती प्रथा को खत्म करने के लिए अधक प्रयास किया था। विधवाएँ यौनशोषण से भी त्रस्त थी। यह अवैध सन्तानोत्पत्ति एवं गर्भपात का कारण बना। इन स्त्रियों को समाज ने ही पतित एवं दुष्चरित्र घोषित किया। स्त्री शिक्षा की कमी और स्त्रियों में स्वावलंबन का अभाव इन्हें शोषित रखने का मुख्य कारण था।

मेहरुन्निसा परवेज़ की कहानी ‘जीवनमंथन’ में विधवा नंदिना के चरित्र को उभारा गया है। उसका पति अमित एक सड़क दुर्घटना में मारा जाता है। अचानक पति की मौत उसे अकेली, बेबस, चुप एवंबेजान बना देती है। उसके जीवन के बारे में लेखिका ने लिखा है "हाड़-माँस केपिंजरे में कैद आत्मा पक्षी कैसे फड़फड़ाया था, बाहर आने के लिए कितना तड़पा था। कैसे बाहर निकलने के लिए रास्ता ढूँढा था। सीखचों की एक-एक तीली को हिला-हिलाकर मार्ग ढूँढना चाहा था; पर द्वार नहीं मिला था। तब लाचार - बेबस होकर स्तब्ध रह गया था। धीरे-धीरे शरीर पत्थर बन गया था। बाहर की दुनिया से कटकर उसने बीर-बहूटी कीतरह अपने को सिकोड़ लिया था।"[161] बाहर की दुनिया से कटकर जीने के लिए मजबूर करती वैधव्य से वह बाहर निकलना चाहती थी। उसका यौवन उसे काटने लगा था। वह वहाँ से बच निकलने का रास्ता ढूँढ रही थी। न मिलने पर विधवा बनकर जीने के लिए वह विवश हो जाती है। पति के रहते पत्नी को जो सुख सुविधाएँ प्राप्त थी वे सब मिट्टी में मिल जाती हैं। अछूत सी उसके हाथों से सब कुछ छीन लिया जाता है। उसे शुभ कार्यों से वंचित रखा जाता है। उसके लिए श्रृंगार भी वर्जित था। वह सोचती है "औरत का भाग्य! एक के साथ सारा कुछ था, संसार था और उसके न रहने पर जैसे वह अछूत सी हो गयी। किसी पर अधिकार नहीं। उसकी अपनी कोई औकात नहीं थी। दूध में पड़ी मक्खी सी हो गई थी। सारा दूध विषैला हो गया था फेंकने के काबिल।"[162]

---

[161] मेहरुन्निसा परवेज़ – समर – पृ 62

[162162] वहीं पृ 72

इस प्रकार अपने साथ हो रहे अन्याय को वह पहचानने लगती है । नन्दिता का देस्त जो कॉलेज में उसका सहपाठी था, शादी करने के लिए राजी हो जाता है । नन्दिता अपने इस जड़ जीवन के फिर से हरा-भरा बनाने के लिए, शादी के लिए सहमति प्रकट करती है ।

लता शर्मा की ‘ मनी प्लांट ‘कहानी में विधवा सुमन चार छोटे-छोटे बच्चों को अपने दम पर पाल-पोसकर बड़ा करती है । उच्च पदों पर कार्यरत बच्चों को देखकर वह भगवान के प्रति धन्यवाद अदा करती है । बच्चे शादी के बाद दूर देशों में चले जाते हैं । सुमन खुशी-खुशी अपने पोते-पोतियों को पालती है । एक बार बच्चे उसे कुत्ते की परवरिश के लिए बुलाते हैं । यह सुनकर उसके अहं को ठेस पहुँचती है ।वह सोचती है "दोनों-बहुओं और दामादों के माँ-बाप हैं । पर हर आसन्न संकटमें उन्हें ही गुहारते हैं सब लोग । ऐसा क्यों? क्या उन्हें अपना कोई काम नहीं? याइसलिए कि वह विधवा है, यानि फालतू औरत। मुफ्त की नौकरानी। किसी के बच्चा हो तो माँ । कोई बीमार हो तो माँ ।कहीं बाहर जानाहो तो घर और बच्चों की चौकीदारी के लिए माँ। इस बार तो हद ही हो गई। कुत्ता रखने के लिए कुत्ताघर होते हैं। पर रिया को कुत्ताघर नहीं, केवल माँ पर भरोसा है... । “[163] वह अपने अस्तित्व को लेकर चिंतित है । एक दिन वह फिसल कर गिर जाती है । आस्पताल में अडमिट होने पर उसे देखने के लिए बच्चों को फुरसत नहीं मिलती । उस समय उसका दोस्त नलिन उसकी सेवा करता है । तब उसे एक साथी की ज़रूरत महसूस होती है । वह नलिन से शादी करती है ताकि अपने अकेलेपन को दूर कर सके और बच्चों के लिए बोझ न बने ।

मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानी ‘रंग-रूप-रस-गंध में’ दस बरस में जया की शादी हो जाती है और पन्द्रह लगते वह विधवा भी बन जाती है । ससुरालवालों की प्रताड़ना एवं देवर-जेठ की कुदृष्टियों का सहन न कर पाने से वह वहाँ से भागकर वृन्दावन चली जाती है । वह कहती हैं

---

[163] लता शर्मा - आंखिरी नाम अल्लाह का - पृ 54

"पाँच-साल ससुराल में जस-तस काटे, आधेपेट, सास की लातें - ससुर की गालियाँ खाते और रात को देवर - जेठ का आये दिन का वही घिनौना आग्रह सुनते-सुनते । मायके में कौन धरा था? माँ खुद भाई के आसरे ।"[164]पति के मरने के बाद ससुराल के सारे पुरुष विधवा जया कोअपना प्रैवट प्रोपर्टी समझ लेते हैं । उनके द्वारा घर में किसी भी समय उसका यौनशोषण होने की संभावना थी । लेकिन जया अपने शरीर को इन लोगों के सामने पेश करना नहीं चाहती थी । खुद अपनी जिन्दगी का फैसला करने का निर्णय उसके स्वाभिमान का परिचायक है ।

'धुंधली आँखों का जुगनू' कहानी में सुमति पति वियोग की जानलेवा व्यथा झेलकर अपने एकलौत बेटे को पालती है । पति के बिना बच्चे को पालना उसके लिए बहुत कठिन कार्य था । लोगों के समझाने के बावजूद भी वह बेटे की खातिर पुनर्विवाह न करने का निर्णय लेती है । बेटा बडा होकर विदेश में काम करना चाहता है और माँ को भी साथ लेकर जाना चाहता है ।लेकिन सुमति अपने पति की यादों से भरे उस घर को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थी । वह जाने से साफ-साफ इनकार कर देती है । अंत में वह अपने पति की याद एवं बच्चे की किलकारियों से भरे उस घर में अकेले रहकर अपना दम तोड़ देती है ।

नासिरा शर्मा की कहानी है 'शामी कागज़' । इसमें पाशा और मोहसिन पति-पत्नी हैं । दोनों में इतना प्यार था कि सारे सगे-संबन्धी देखते रह जाते हैं । लेकिन मोहसिन की अचानक मौत पाशा के जीवन को जड़ से हिलाकर रख देती है । कुछ महीनों बाद पाशा का रिश्तेदार महमूद, हमदर्दी के बहाने,उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखता है । यह सुनकर वह बहुत संभलकर बोलती है "मैं भी कोई शामी कागज़ थोडे ही हूँ कि जब ज़रूरत पडी उसे धोकर दूसरा फरमान लिख दिया मैं इन्सान हूँ और इन्सान के दिल पर लिखे हर्फ़े बार-बार धोए नहीं जा सके

[164] मनीषा कुलश्रेष्ट - कठपुतलियाँ - पृ 41

हैं ।मोहब्बत और हमदर्दी का फर्क तो तुम जानते हो न महमूद ।"[165]महमूद का प्रस्ताव वह इसलिए ठुकराती है कि उसके पति की यादों को वह खोना नहीं चाहती। यह फैसला उसका सपना था। वैधव्य जो उसके जीवन का सच है उस पर किसी की हमदर्दी उसे स्वीकार नहीं थी। भविष्य अंधकारमय दिखने पर आगे वह एक नर्सरी में काम करने लगती है। यों वह अपने दर्द से उभरने की हिम्मत जुटाती है।

मलयालम की लेखिका चन्द्रिका की 'मरुपडि प्रतीक्षिक्कुन्नु' कहानी में विधवा विमला अपनी बेटियों के साथ रहती है। उसकी शहर में अनेक सेक्स राकट्स हैं जो स्त्रियों को अपने चंगुल में फँसाने के लिए प्रयत्नरत हैं। ऐसे ही एक राकट्स के लोग विमला और उसकी बेटियों के पीछे पड़ जाते हैं। वे लोग रात में घर की घण्डी बजाकर एवं फोन करके उन्हें सताने लगते हैं। विमला पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करती है । लेकिन विधवा होने के नाते पुलिसवाले सीधे उसी पर शक करनेलगते हैं। रिपोर्ट दर्ज करने पर भी कानूनी तौर पर उनके पक्ष में कोई कारवाई नहीं होती। अंतमें वह मुख्यमंत्री को एक खत लिखती है। "मेरी और मेरी बेटियों के साथ किसी भी क्षण कुछ भी हो सकता है। हमारी सांस लेने तक की खबर उनको है। अब हम क्या करें?आपके जवाब के इन्तज़ार में हैं।"[166]अपने साथ हो रहे जुर्म को मुख्यमंत्री तक पहुँचाने की कोशिश उसके प्रतिरोधी चेतना का बयान है। यह प्रतिरोध समाज में स्त्रियों के साथ हो रहे शोषण के खिलाफ है। वह यह समझ चुकी थी कि ऐसा माहौल स्त्री को समाज में स्वतंत्र जीवन जीने के रास्ते में बाधक सिद्ध होगा।

कय्युम्मु की कहानी 'साफल्यम्' में विधवा सुहरा के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। सांसू माँ बेटे की मौत के लिए सुहरा को दोषी ठहराती है। सुहरा की इस दयनीय जिन्दगी को देखकर

---

[165] नासिरा शर्मा - शामी कागज़ - पृ 97

[166] चंद्रिका - मरुपड़ी प्रतीक्षिकुन्नु - पृ 36

रिश्तेदार मजीद उसके सामने शादी का प्रस्ताव रखता है। सुहरा सोचने लगती है यह प्रस्ताव को स्वीकारें तो जिन्दगी में नया मोड़ आने की संभावना है। लेकिन वह शादी से पहले मजीद से आगे की जिन्दगी के बारे में सोच-विचार कर, एक धारणा बनाना चाहती है। इस प्रकार दोनों आपस में बातचीत कर शादी करने का फैसला लेते हैं। उसकी रुकी हुई तनावग्रस्त ज़िन्दगी से यों सुहरा छुटकारा पाती है।

सितारा एस. की 'ओरु कण्णीरकणत्तिन्टे अवकाशम्' कहानी में अकेलेपन से ऊबने वाली मेरी मार्था के चरित्र की झांकी प्रस्तुत की गई है। उसका पति शराबी था। इसलिए उसको दाम्पत्य जीवन में बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। पति के मरने के बाद उसके दोनों बच्चे शादी करके अमेरिका चले जाते हैं। अकेलेपन से ग्रस्त उसकी ज़िन्दगी में पति का दोस्त नायर साहब आता है। एक दूसरे की उपस्थिति दोनों को राहत सी महसूस होती है। बहुत सोच-विचार कर मेरी मार्था नायर साहब से कहती है "मैं तुम्हें प्यार दे सकती हूँ। नायर साहब.... मैंतुम से दो-तीन साल से छोटी हूँ। फिर भी, तुमसे प्यार करने की शक्ति और ऊर्जा मुझमें है।" [167] दोनों प्यार की आवश्यकता को महसूस करने लगते हैं। मार्था को अपने पति से उसके हिस्से का प्यार कभी न मिला था।

पी. वत्सला की कहानी ' अरुन्धति करयुन्निल्ल' में अरुन्धति आस्त्मा से पीड़ित है। इसलिए पति उसे हमेशा कमरे में बन्द करके रखता है। कमरे की खिड़कियाँ तक खोलने नहीं देता। ऐसे में कमरे में उसका दम घुटने लगता है। पति के मरने के बाद अरुन्धती सबसे पहले कमरे की खिड़कियाँ खोल लेती है। तथा ताज़ी हवा को महसूसने लगती है। उसकी बच्चे विदेश चले गए थे। पिता के अंतिम कर्म के लिए भी बेटे नहीं आते। आगे बेटे माँ से घर की रखवाली करने को कहते हैं। तब माँ कहती है "घर! घर! आज तक यह घर मेरी रखवाली किया। अब मैं इसकी रखवाली

---

[167] सितारा एस - सहयात्रिका - पृ 83

करूँ क्यों? नहीं मैं इस घर को छोड़कर जा रही हूँ ।" [168]आज तक उसने दूसरों के लिए जिया था आगेवह अपनी इच्छाओं एवं आकांक्षाओं के अनुसार जीना चाहती है । केवल घर की नौकरानी ही उसे पहचान पायी थी । इसलिए वह उसके घर चली जाती है । दोनों इस उम्र में एक दूसरे का सहारा बनकर जीने का फैसला करती हैं ।इसप्रकार विधवाओं की संघर्ष को समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला कहानियों में, उजागर कियागया है ।

3.3.6 वृद्धजीवन

वृद्धावस्था ज़िन्दगी का वह मोड़ है जहाँ पर आकर परिवारवाले वृद्धों को अपने घर का फालतू सामान समझने लगते हैं । बच्चों का पालन पोषण करके,उनकी इच्छाओं को पूरा करके जिन्दगी के हर एक मोड़ पर उनका सहारा बनकर माँ-बाप ने अपनी ज़िन्दगी गुज़ारी थी । लेकिन जब उन्हें सहारे की ज़रूरत पड़ती है तब ये बच्चे उनकी कद्र नहीं करते । माँ-बाप घर का काम संभालकर परपोतों का ध्यान रखकर जीने के लिए मजबूर हो जाते हैं । वहाँ उनकी हैसित एक नौकर से कम नहीं । भारतीय संविधान में वृद्धों को कुछ खास अधिकारों से सुरक्षा प्रदान की गई है । उन्हें सामाजिक सुरक्षा, सहायता और संरक्षण के अधिकार भी हैं । अपने अधिकारों को समझते कुछ ऐसे वृद्ध भी हैं जिन्हें ऐसी ज़िन्दगी स्वीकार्य नहीं होता । वे घर छोड़कर वृद्धाश्रम में रहने लगते हैं । कुछ लोग ऐसे हैं जो सहारे की ज़रूरत पड़ने पर ज़िन्दगी के इस अन्तिम मोड़ में शादी भी करते हैं । जो भी हो यह वृद्धों का प्रतिरोध है, जो अपनी ज़िन्दगी अपनी इच्छा से गुज़ारना चाहते हैं । हिन्दी और मलयालम कहानियों में ऐसे वृद्धों को चित्रित किया गया है जो प्रतिरोध की आवाज़ को बुलन्द करते हैं ।

---

[168] पि वत्सला -मलयालतींते सुवर्ण कथकल - पृ 34

‘ कोई एक अभयारण्य’ कहानी में सरोज बच्चों के बडे होने के बाद पति द्वारा खींची गयी लक्ष्मण रेखा को पार करती है। वह घर छोड़कर कॉन्वेण्ट में जाकर रहने लगती है। उम्र के अंतिम पडाव में वह सोचती है कि बच्चे बडे हो जाने पर कॉन्वेण्ट से अपने घर ले जाएंगे। लेकिन उसका सपना चूर-चूर हो जाता है। वह बाकी की पूरी ज़िन्दगी कॉन्वेण्ड में बिताने का फैसला करती है। वह सरोज नाम बदलकर सिसिलिया बन जाती है। इस निर्णय के बारे में वह कहती है "यह निर्णय न उनकापलायन है, न पराजय, न प्रतिशोध। किसी आलीशान बँगले में पैबन्द की तरह चिपकाये जाने के लिए वह वापस नहीं जाएँगी, न पति के पास न बेटों के पास। जो लक्ष्मण रेखा उन्होंने पार की है, उसके बाद यही एक अभयारण्य है।"[169] आगे कीज़िन्दगी गुज़ारने के लिए वह किसी के सामने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाना नहीं चाहती। वह उन सारे संबन्धों को त्याज्य देती है जिसे उसने अपने यौवन में ढोया था। उसे लगता है कि एक हारी हुई स्त्री बनकर रहने से तो अच्छा है सिसिलिया बनकर समाज सेवा करना। इसलिए वह शेष जीवन अभयारण्य में बिताना चाहती है।

क्षमा शर्मा की ‘धूप है कि खिल उठी’ कहानी में मोना गांधी बुढापे में दूसरी शादी करती है। पति के साथ उसका संबन्ध निभ नहीं पा रहा था। फिर भी अपनी दोनों बेटियों के वास्ते वह जीती रही। बेटियों की शादी के बाद अपनी जिन्दगी को नई गति देने के लिए ही वह दूसरी शादी करती है। लेकिन समाज उसे गलत नज़रिए से देखने लगता है। आखिर इस उम्र में इस स्त्री को शादी करने की क्या पड़ी? कौन-सी इच्छा है जो इस उम्र में शेष रह जाती है? आदि सवालों का सामना उसे करना पड़ता है। तब वह कहती है "मैं कोई मि. गाँधी के साथ भागकर नहीं आयी। बाकायदा एडवरटाइसमेंट देकर शादी की थी। अपनी किसी जिम्मेदारी से मुँह मोड कर नहीं

---

[169] कविता - कोई भी दिन - पृ 56

पहले अपनी लड़कियों को सेटल किया ।"[170] मोना ने कोई पाप नहीं किया था । उसने अपनी जिन्दगी को अपनी शर्तों पर जीने की कोशिश की थी । बुढ़ापे की मंजिल को पार करने के लिए उसे एक साथी की ज़रूरत थी । शादी के बाद मोना अपना जीवन एन्ज्वाय करके जीती है ।

कविता की ‘ उलटबाँसी ‘ कहानी में अपूर्वा की माँ भी अपनी प्रौढ़ावस्था में अकेलेपन से ऊबकर दूसरी शादी करने का फैसला लेती है । उसकी बेटी अपूर्वामाँ का साथ देती है, लेकिन बेटे विरोध करते हैं । जिस उम्र में तीर्थ करने एवं भक्तिमें रमने की आवश्यकता थी, उसउम्रमें नाती-पोतों वाली माँ का ब्याह रचनाउनके लिए शर्म की बात थी । बच्चों का यह तेवर देखकर माँ कहती है कि नाटकनहीं है ये... मैंने एक निर्णय लिया है, पहली बार अपने लिए कोई निर्णय । और देखना है मेरे बच्चों में से कौन मेरे साथ आ खड़ा होता है । माँ स्थिर है,शान्तिचित्त... । वह अपने फैसले परअडिग रहती है । जो जिम्मेदारियाँ उसके ऊपर रही थी उन्हें सब निभाकर ही वह अपनी आगे की जिन्दगी के बारे में सोचती है । इसलिए उसे इसमें गलती का एहसास नहीं होता ।

लता शर्मा की ‘मनी प्लांट’ कहानी में विधवा सुमन के बच्चे पंख लगते ही अपनी-अपनी जिन्दगी को तलाश कर उड जाते हैं । घर में अकेली पडी एक दिन सुमन फिसलकर गिर पड़ती है । आस्पताल में अड़मिट होने पर भी उसकी सेवा करने के लिए चारों बच्चों में से किसी को भी फुरसत नहीं मिलता । उसे शौचालय जाने की इच्छा हुई तो ले जाने तक कोई नहीं था । शर्म के मारे तकिए में मुँह छिपाकर शतभर अपनी ही गंदगी में लिथड़ी पड़ी रहती है । उसे इससे अच्छी तो मौत लगती है । उसका दोस्त नलिन जब उसे देखने केलिए अस्पताल आता है तब सुमन की

---

[170] क्षमा शर्मा - लड़की जो देखनी पलटकर - पृ 134 -135

हालत उससे देखा नहीं गया और वह उसका परवरिश करता है। सुमन के ठीक हो जाने पर नलिन उसके सामने शादी का प्रस्ताव रखता है। दोनों शादी भी कर लेते हैं। बच्चे और रिश्तेदार उसके इस फैसले काखिलाफ हो जाते हैं। लेकिन सुमन बहुत खुश थी। वह अपनी सहेली से कहती है "नंदी, सच पूछो तो इस विवाह में क्या है? कुछ भी नहीं। पर रात को सोते समय यह अहसास कि हम अकेले नहीं है, कितनी सुरक्षा देता है। कभी-कभी हम घंटों, बिना बोले समुद्रतट पर चुपचाप सूर्यास्त देखते रहते थे। अनकहा सुख और शांति हमें तृप्त कर देता था। शायद बुढ़ापे में साथी की ज़रूरत और ज़्यादा महसूस होती है।" [171] शादी करके बुढापे की डगर को खुशी-खुशी पार करने का उसका फैसला सही साबित होता है। अपनी सारे गमों को भूलकर उसके साथ वह घूमती-फिरती है।

नीलम सिन्हा की 'अन्तिम घड़ी' कहानी में ज़िन्दगी की अन्तिम घड़ी में अकेली रहती वृद्ध स्त्री सोचती है " एक बर फिर बेसहारा हो गयी, आखिर क्यों? क्या इन्हीं तीन-चार में ज़िन्दगी घूमती है? और हाँ, तो इसे तो डगमगाना ही है - इससे सहारा कैसा? तीनों 'चार' रूपी पहिया से कुछ नहीं मिला - धोखा, छलावा, आँसू, अपमान के सिवा। न पिता-न-पति-न-पुत्र मेरीकिस्मत में पुंल्लिग शब्द से कुछ नहीं मिलना है।"[172] वह बुढ़ापे में सहारे की उम्मीद रखना छोड़ देती है। एक दिन "विश्व वृद्ध दिवस" पर बूढ़ों को सरकार की ओर से छड़ी, धोती दी जाती है। उन साधनों को लेकर जब वह बस में चढ़ती है तब छड़ी फिसल जाती है। तब वह सोचती है " जो जवानी में अकेले, प्रौढ़ावस्था में अकेले, बुढ़ापे मेंभी अकेले जीवन जी रहा हो उसे सरकार की छड़ी क्या सहारा देगी? अपने रक्त से निर्मित, सजीव सहारा बेसहारा कर गया तो यह निर्जीव छड़ी

---

[171] लता शर्मा - आंखिरी नाम अल्लाह का - पृ 63

[172] नीलम सिन्हा - धूप छाँह - पृ 94

मेरा क्या बनती सहारा? इसलिए गिर गयी... अच्छा ही हुआ ।" [173] इतना सोचकर अकेली ही जिन्दगी को आगे बढ़ाने कामन बनाकर डगमगाते पाँवों से वह चलने लगती है । बुढ़ापे में अकेले ही क्यों न हो वह जीने की हिम्मत जुटा लेती है ।

शिवानी की ‘दो सखियाँ’ कहानी में सखुबाई और आनन्दी दो वृद्ध सहेलियों के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है । सखुबाई प्रिंसिपल के पद से अवकाश ग्रहण कर स्वेच्छा से ‘आश्य’में रहने लगी थी । आनन्दी के अपने बच्चों ने ही उसे वहाँ पहुँचा दिया था । वह शरीर और मन दोनों से बुरी तरह टूट चुकी थी । मरने से पहले आनन्दी अपनी थैली से सोने के दो भारी गोखरू और एक पन्ना की हीरे-जड़ी अँगूठी अपनी सहेली के हाथ में सौंपकर उसे अपनी दोनों बेटियों को देने के लिए कहती है । बेटियाँ उसके मरने के बाद केवल धरोहर लेने के लिए आती है । उनकी अवज्ञा से सखुबाई का खून खौल उठता है । वह सहेली की संपत्ति उन्हें देने के लिए तैयार नहीं होती एवं उसे समुद्र में फेंक देती है । माँ के प्रति बेटियों का उपेक्षा भाव उसे ऐसा करने के लिए प्रेरणा देता है । "माफ करना डोकरी, तेरी अमानत तुझे ही लौटा रही हूँ । जिन हाथों ने तुझे ऐसी बेरहमी से अपने घरों से बाहर ढकेला, उन हाथों में मैं ये गोखरू नहीं पहना सकती । अँगूठीमेरी उँगली में है । पर यह तो तेरी उँगली है न, कैसे इसे छुडा दूँ । माफ करना डोकरी ।" [174] जो बच्चे जीवित रहते वक्त अपने माँ-बाप की देखभाल कर सके उन लोगों का उनकी संपत्ति पर कोई हक नहीं बनता ।

माधविक्कुट्टी की कहानी ‘चालियत्ति कुंजुवुम मकनुम’ में बूढ़ी औरत चालियत्ति कुंजु हर समय अपने को घर के कामों में व्यस्त रखती है । वह काम इसलिए करती है ताकि बेटे को ऐसा न लगे कि घर में बैठे-बैठे यों ही खा-पी रही है । बेटा उसको दवाई लेने तक के लिए पैसा नहीं

---

[173] वहीं - पृ 95

[174] शिवानी - दो सखियाँ - पृ 58

देता । वह अपने मन को सान्त्वना देने के वास्ते घर का काम करती है । वह सोचती है "बिना काम करके ही माँ यहाँ की खाती है यह विचार रहा है तो भाट में चली जाए । ...दवाई लाने के लिए कहूँ तो लेनेवाला कोई नहीं ।"[175] यहाँ पर एक बूढ़ी माँ का क्रन्दन सुनाई देता है । ज़िन्दगी के आखिरी पलों में जब उसे सान्त्वना एवं प्यार की ज़रूरत है तब उसे सान्त्वना देनेवाला कोई नहीं रहता । अपने ही घर में वह पराई बन जाती है । स्वाभिमानी होने के कारण वह किसी के सामने हार मानने के लिए तैयार नहीं होती ।

गीता हिरण्यन की 'विषुप्प' कहानी में एक वृद्ध औरत की दयनीय दशा का पर्दाफाश किया गया है । वह कहती है "कुत्ता सबको चाटता है बेटी । कुत्ते को कोई नहीं चाटता ।"[176] इस दयनीय स्थिति से उभरने के लिए उसके सामने एक ही रास्ता बचना है मौत । इसलिए उसकी ईश्वर से एक ही प्रार्थना है कि पलंग पर पड़ने से पहले उसकी आत्मा को उठा ले । वह अपनी मौत के इन्तज़ार में रहने लगती है ।वत्सला की कहानी 'प्रतिसन्धी' में वृद्ध राधा अपने बच्चों का अनैक्य देखकर आत्महत्या करती है । अपने जीते जी बच्चों के आपसी अलगाव, मिटते प्यार एवं एक दूसरे के दुश्मन बनते देखना एक माँ के लिए असहनीय था ।

गिरिजा के. मेनोन की ' स्वातंत्र्यत्तिन्टे निरभेदंगल ' कहानी में नौकरी से रिटयर्ड हो चुकी मिसिस तोमस की मानसिक उलझनों पर प्रकाश डाला गया है । रिटयर्ड होने के बाद उसे पूरा घर संभालना पडता है । रसोई का काम एवं पोते, पोतियों की देखभाल के बाद उसे अपने लिए कुछ करने की फुरसत ही नहीं मिलता । अपने कपड़ों से आ रहे मछली और गोश्त की बू से उसे ऊबकाई आती है । एक दिन अखबार में वह एक विज्ञापन देखती है कि 'अकेली वृद्ध स्त्रियों को ज्.ग्.क्.ऋ

---

[175] मधावीकुट्टी - पारितोषिकम - पृ 34

[176] गीता हिरण्य - गीता हिरण्य की कहानियाँ - पृ 137

में रहने की प्रावधान'। वह सोचती है "अपने लिए एक कमरा, टेपरेकार्डर, मारुतिकार नहीं तो भी परवाह नहीं अपने लिए कुछ पल तो मिलेगा। मछली, दूध और चीनी के झंझट से अलग कुछ समय।" [177]वह सभी रिश्ते नातों से छुटकारा पाकर आगे की ज़िन्दगी अपने लिए जीना चाहती है। ज़्.ग्.क्.ॠ जाकर वह चित्रकला एवं वयलिन सीखती है। अपनी सारी ज़िम्मेदारियों से निजाद पाकर अपने लिए आराम की जिन्दगी बिताने का फैसला उसकी प्रतिरोधी मानसिकता का बयान है।

चन्द्रिका की 'गोदोयेकात्त' कहानी में दादा और दादी अकेले रहते हैं। अपनी जिन्दगी की एकाकीपन से ऊबकर दादी-दादा से पूछ बैठती है " हम क्यों ऐसे जी रहे हैं? मैं क्यों इस घर की रखवाली करूँ? यहाँ पर कौन आता है? कौन हमारा इन्दज़ार करता है? यहाँ से हमें चले जाना चाहिए।"[178] वह समझ बैठती है कि वे लोग घर की रखवाली करने के लिए मात्र हैं। इतने बडे घर में अकेले रहनाउनके लिए कठिन हो जाते हैं। उनकी सेवा करने के लिए घर में कोई नहीं रहा। इसलिए दादी घर छोड़कर कहीं चले जाने के लिए दादा से अनुरोध करती है।मलयालम की लेखिका सुधर्मा की 'वेनलमष़ा' कहानी में घरवाले विधवा श्रीदेवी का तिरस्कार करते हैं। उसके लिए यह असहनीय बन जाता है। इस बात को समझकर श्रीदेवी को उसकी आगे की ज़िन्दगी पहरेदारी करते कुत्ते के समान लगने लगती है। ज़िन्दगी की इस अन्तिम घड़ी में वह शादी करती है ताकि वह अपने दुखों को बाँट सकें।आज के युवा वर्ग यह नहीं सोचता है कि उसे भी एक न एक दिन को पार करना ही पड़ेगा। अगर जीवन के इस मोड़ वे लोग इस बात को पहचानेंगे तो कभी भी अपने माँ-बाप से ऐसा व्यवहार नहीं करेंगे। हिन्दी महिला लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में

---

[177] गिरिजा के मेनॉन - अरुणायुड़े विशेषगल - पृ 75

[178] चंद्रिका - अन्नयूडे अत्ताषविरुन्नु - पृ 70

वृद्ध जीवन की वास्तविक उलझनों को दर्शाने का प्रयास किया है । इन उलझनों से उभरने के लिए उनकी स्त्री पात्र सक्षम है ।

3.3.7 बालिकाओं का यौन शोषण

आजकल बालिकाओं को सामाजिक सुरक्षा की सख्त ज़रूरत है । इनके प्रति घातक रूप में शोषण चल रही है, जिससे उनकी अधिकारों का उल्लंघन हो ही रहा है । हमारे देश का भविष्य बच्चों को संविधान द्वारा मानवाधिकार दिलवाकर उन्हें शोषण मुक्त करने की कोशिश किया जा रहा है । अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी इस मुद्दे को लेकर चर्चाएँ चल रहे हैं । समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला कहानीकारों ने अपनी कहानियों में कुछ बालिकाओं के चरित्र को उभारा है, जो अपने साथ हो रहे जुर्म को पहचान रही है । ये परिवार एवं समाज में अपने हक के लिए संघर्षरत है । इन पात्रों के ज़रिए लेखिकाएँ बालिकाओं में चेतना जगाने तथा समाज को सजग बनाने कीकोशिश में हैं ।समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला कहानीकारों ने अपनी कहानियों में कुछ बच्चियों के चरित्र को उभारा है जो अपने साथ हो रहे जुर्म पर प्रतिरोध जतातीहै । यह बच्चियाँ परिवार एवं समाज में अपने हक के लिए संघर्षरत है । इन पात्रों के ज़रिए लेखिकाएँ बच्चों में चेतना जगाने तथा समाज को सजग बनाने की कोशिश में है ।

नासिरा शर्मा की ‘फिर कभी’ कहानी में बच्चियों के एक झुण्ड को पाठकों के सामने रखा है जो तरह-तरह के कारणों से घर से भागकर आयी हैं और अपना एक झुण्ड बनाकर काम करने लगती हैं । वे अपनी रोज़ी रोटी के लिए रेल्वे स्टेशन पर खाली बोटल उठाकर बेचने का काम करती हैं । घर छोड़ने का कारण वे लोगबताती हैं । पहली कहती है " सौतेली माँ ताने देती थी कि तू टिपरी है । मुझे बुरा लगता था । मारती भी बहुत थी बस..... ।“[179] दूसरी का कहना है

[179] नासिरा शर्मा - मेरी प्रिय कहानियाँ - पृ 117

“यह बड़े लोगबात-बात पर इतना मारते क्यों हैं? मेरी मामी भी मुझे बहुत मारती थी सो मैं भाग आई ।.... वह मेरी आँखों को फोड़ने की बात कहने लगी थी । मुझे डर लगने लगाथा । उस दिन उसने अगरबत्ती जला रखी थी । कह रही थी कि आँखें दाग देगी । बस, मैं डरकर भागी और गाड़ी में बैठ गई ।" [180]अपने घर पर हो रहे अत्याचार से मुक्ति पाने के लिए ही वे घर से भागी थीं । समाज इन बच्चियों का यौन शोषण करने तक हिचकता नहीं । मीनाक्षी नाम की लड़की एक बार पुरुषकी इस कुत्सित प्रवृत्ति की शिकार भी बनती है ।वह आदमी दूसरी बार भी यहीहरकत करने केलिए उतारूहोजाता है पर मीनाक्षीउसके पेट पर सीधे लात मारतीहै और अपने दाँतों से उसके हाथ में पूरीताकत से काटतीहै । इस तरह ये बच्चियाँ बिनाबड़ों के साये अपनी जिन्दगी गुज़ारने एवं अपने पर हो रहे अत्याचार के खिलाफ लड़ने का मन बना लेती है ।

उर्मिला शिरीष की ‘हँसी’ कहानी में एक तलाकशुदा स्त्री अपने दम पर अपने दोनों बच्चों को पालती है । कोई भी रिश्तेदार उसकी ओर ध्यान नहीं देता । सब लोगों का मानना था कि आठवीं कक्षा में पढ़ती उसकी बेटी समझदार है, वह भी माँ के साथ खड़ी होकर घर की जिम्मेदारियाँ संभाल लेगी । एक दिन कुछ रिश्तेदार उसके घर में रहने के लिए आते हैं । रिश्तेदारों का बर्ताव माँ के प्रति अच्छा नहीं है यह देखकर वह माँ के पक्ष में बोलती है । तब वे लोग छोटे मुँह बड़ी बातवाली मुहावरे को लेकर बैठ जाते हैं । तब बेटी कहती है "इतनी बड़ी तो हो गई हूँ । जब सारी बातों में मुझसे समझदारी की, बड़े होने की, समझदार होने की.... सहनकरने की उम्मीद की जाती है तो... घर के निर्णय लेने वाली बातों में मेरी वही भूमिका क्यों नहीं होनी चाहिए? आठवीं कक्षा में पढ़ती हूँ.... जब इस घर में झगड़ेहोते थे, टेंशन होती थी, तब हम लोग ही तो

[180] नासिरा शर्मा - मेरी प्रिय कहानियाँ - पृ 117

रहते थे... तो फिर सारी बातों पर बात करना मेरा हक बनता है ।" [181]वह सबके सामने अपनी माँ का पक्ष लेती है और माँ को उन लोगों के सामने सिर झुकाने नहीं देती ।

ममता कालिया की 'मुन्नी' कहानी में मुन्नी चेचक बीमारी से पीड़ित है । इस वजह से वह ठीक से चल भी नहीं सकती थी । वह पढ़ने में होशियार थी । इसलिए माँ-बाप एक कॉण्वेंट स्कूल में उसका दाखिला करवाते हैं । लेकिन स्कूल की अध्यापिका एवं अन्य छात्राएँ उससे गलत बर्ताव करती हैं । वे हर समय उसे तमाचा उठाया करते हैं । एक बार मुन्नी एक बच्ची को डस्टर से मारती है । अध्यापिका उससे पूछताछ करती है और इस व्यवहार के लिए उसके परिवार को दोषी ठहराती है । तब वह कहती है " मदर आप मेरे परिवार को कोस रही है, इनलड़कियों के परिवार को भी देखें । क्यों, क्या इनके माँ-बाप यही सिखाते हैं कि दूसरी लड़कियों को अपने से नीचा समझो, उनकी हँसी उड़ाओ । मैं माफी नहीं माँगूंगी ।.... पहले येलड़कियाँ मुझसे माफी मांगें, ये क्यों हँसी थीं? मुझे ऐसे स्कूल में पढ़ना भी नहीं है जहाँ इतनी बेइन्साफी हो ।"[182] वह स्कूल उसे पढ़ने लायक महसूस नहीं होती । स्कूल में हो रहे भेदभाव पर मुन्नी प्रतिरोध जताती है ।

ललिता एस. की 'मुत्तश्शी' कहानी में एक वृद्ध औरत को अपने ही बच्चे हेय दृष्टि से देखते हैं । वे उनसे घर के पुराने फालतू सामान जैसा बरताव करते हैं । अपनी दादी से माँ-बाप का ऐसा बरताव पोते-पातियों से सहा नहीं जाता, क्योंकि दादी से वह बहुत प्यार करते थे । एक बार माँ-बाप का बर्ताव उनके बर्दाश्त के बाहर हो जाता है । बच्चे इस बात पर प्रतिरोध प्रकट करते हैं "नहीं, दादियाँ फालतू नहीं होती, अनमोल होती है । बहुत ज्ञान एवं अनुभवों से युक्त उनको मत

---

[181] उर्मिला शिरीश - लकीर तथा अन्या कहानियाँ - पृ 72

[182] ममता कालिया - निर्मोही - पृ 95

टुकराओं । उन्हें अपना सहारा देना है ।"[183] लेखिका ऐसी एक नई पीढ़ी की आशा में है जो बडों की इज्जत करें । वे अपने बूढे माँ-बाप को ठुकराती आज की युवा पीढ़ी के सामने, प्रतिरोध जताने हेतु तीसरी पीढ़ी को लाकर खड़ा कर दिया है, जो अपने दादा-दादियों को परिवार में सही स्थान दिलवाने के लिए संघर्षरत हैं ।

सितारा एस. की कहानी 'कवयित्रियुम् कृषिक्कारियुम' कहानी में फातिमा और ड्रीसा सहेलियाँ हैं । स्कूल से लौटते वक्त एक जीप इन बच्चियों का पीछा करता है । एक सुनसान जगह पर आकर जीप रुक जाता है । उसमें से दो आदमी निकलकर बच्चियों को पकड़कर ले जाते हैं । उनके बलिष्ठ हाथों के ज़ोर को झेलना बच्चियों लिए मुश्किल था । एकाएक फातिमा एक आदमी के यौनांग पर ज़ोर से धक्का मारती है और उस जानवर का हाथ छूट जाता है । फातिमा अपने दोनों हाथों से उस आदमी के जाँघों के बीच की कठोरता पर वार करती है । यह देखकर ड्रीसा भी अपने आपको बचाने की पूरी कोशिश करती है । दोनों पुरुष औंधे-मुँह गिरकर दर्द से कराह उठते हैं । यह दहशत के बीच भी दोनों बच्चियों का मनोबल दृढ़ रहता है ।जाते वक्त दोनों लड़कियाँ उन आदमियों के कपड़ों को नहारी में फेंकती हैं । मर्दों का बलात्कारी स्वैराचार लंपटता एवं दुष्टता छोटी बच्चियों कोतक नहीं छोड़ती । मासूम ये बच्चियाँ छोटी उम्र में ही सही हिम्मत जुटाकर अपने आप को बचाने केलिए बाध्य हो जाती है ।

दीपक शर्मा की 'पाश्र्व' कहानी में कामलोलुप पुरुष पात्र अपनी बेटी पर अत्याचार करता है । अल्पना मिश्र की कहानी 'कथा के गैरज़रूरी प्रदेश में' पाँचवीं कक्षा में पढ़नेवाली लड़की से अध्यापक बुरा व्यवहार करता है । मलयालम की लेखिका माधविक्कुट्टी की कहानी है 'चीत्तमामन्'। इस कहानी में पड़ोस का आदमी एक छोटी बच्ची का यौनशोषण करता है जिसे वह

---

[183] ललिता एस - उच्चावेईल - पृ 64

मामा बुलाती थी। इन तीनों कहानी में मासूम सी बच्चियाँ घरवालों से उनके साथ हो रहे अत्याचार को खुलकर बताने की हिम्मत जुटाती है। कहानीकारों ने इन कहानियों के ज़रिए यौनशोषण की शिकार बालिकाओं के मानसिक तनाव को प्रस्तुत किया है और इस सामाजिक कुरीति के प्रति अपना सख्त प्रतिरोध दर्ज किया है।

मलयालम की लेखिका बीना जोर्ज की कहानी ‘अन्जुविनु परयानुण्डायिरुन्नत्’ में पैसे के लालच में माँ-बाप अपनी इकलौती बेटी अंजु को मौसी के पास छोड़कर विदेश चले जाते हैं। लता लक्ष्मी मेनोन की कहानी ‘अवधिच्चित्रम्’ में एक माँ अपनी बेटी को कॉन्वेन्ट में डालकर दूसरी शादी करती है। दोनों कहानियों में माँ-बाप के प्यार से वंचित बालिकाओं के चरित्र पर लेखिकाओं ने प्रकाश डाला है। उनकी मानसिक उलझनों को दर्शाकर लेखिकाएँ उनके मन-मस्तिष्क को स्वच्छ रखने की आवश्यकता पर ज़ोर दे रही हैं।ललिता एस. की ‘उच्चवेयिल’ कहानी में भी एक बच्ची अपने सौतेले बाप के हाथ से बचने के लिए घर से भाग निकलती है, जो उस पर ज़बरदस्ती करने की कोशिश करता है।

3.3.7 शिक्षा प्रतिरोध की बुनियाद

हर प्रकार का ज्ञान प्राप्त करना ही शिक्षा का वास्तविक अर्थ है। बुद्धि का विकास, निर्णय लेने की क्षमता, तर्क-वितर्क की क्षमता, अर्थोपार्जन में मददगार सर्वोपरी यह मनुष्य के आत्मविश्वास को बढाने में काम आती है। इसलिए ही लड़कियों की शिक्षा को गंभीरता से लेने की आवश्यकता है। संविधान के अनुच्छेद 29 और 30 द्वारा भारत के सभी नागरिकों को समान रूप से शिक्षा संबन्धी अधिकार प्रदान किया गया है। समाज के विकास हेतु लड़की की शिक्षा एकमहत्वपूर्ण मुद्दा है। समाज में स्त्री को दबाने का जो कुसंस्कार व्याप्त है, इसका प्रतिरोध, शिक्षा के ज़रिए ही वह कर सकती है। स्त्री शिक्षा के बारे में तस्लीमा नसरीन का कहना है " शिक्षा ही

स्त्री की आर्थिक मुक्ति के रास्ते को समतल कर सकती है। स्त्री पर पुरुषों के आर्थिक, सामाजिक, और शारीरिक दबाव की जो प्रवणता है, उससे स्त्री यदि मुक्ति पाना चाहती है तो शिक्षा के अलावा और कोई रास्ता नहीं है। शिक्षा ही स्त्री को समाज में मौजूदा अपशक्ति का विरोध करने का साहस दे सकती है।"[184] स्त्री शिक्षित हो तभी तो वह अपने अधिकारों के प्रति सजग होगी। समाज में जो कुछ उसके हक में है उसे प्राप्त करने की शक्ति शिक्षा से ही वह हासिल कर सकेगी।

मीराकांत की 'गली दुल्हनवाली' कहानी में इस मुद्दे को उठाया गया है। कहानी की नायिका नगीना अपने बच्चों को पढ़ाना चाहती है। लेकिन उसका पति रज़्ज़ाक इसके लिए इज़ाजत नहीं देता। नगीना चोरी-छिपे लड़कियों को अपने पड़ोसी के घर भेजती है। रज़्ज़ाक की मर्ज़ी के खिलाफ अपने बेटे को स्कूल में दाखिल करती है। वह अपनी पडोसिन से कहती है "उस हरामी के तो हाथ-पाँव फड़कते ही रहते हैं, तो क्या करें? जीना तो नहीं छोड़ देंगे। पीटेगा तो पीटे। वैसे हम उसे बताएंगे ही क्यों? दीन का न दुनिया का। सुबह निकल जाता है, तो रात को शक्ल दिखाता है। ऐसे ही रहेंगे हम चुप।"[185] अपने बच्चों की जिन्दगी के बारे में खुद फैसला लेने की उसकी क्षमता गहरे सामाजिक बोध से उत्पन्न है।

मालती जोशी की 'पंख-तौलती चिड़िया' कहानी की नायिका शादी के बाद पढ़ना चाहती है। लेकिन अपने पति और बच्चे के वास्ते वह कुछ साल के लिए अपनी इस चाह को दर किनार कर देती है। गृहस्थी के झंझट से जब उसे राहत मिलती है तब वह अपनी अधूरी पढ़ाई को आगे ले जाने का फैसला लेती है। लेकिन तब तक पति का मन बदल चुका होता है। उसे पढ़ाने के लिए वह तैयारनहीं होता। वह उससे सब्र करने के लिए कहता है। तब पति से वह कहती है "मैं तो

---

[184] तसलीमा नसरीन -नष्ट लड़की -नष्ट गद्य - पृ 78

[185] मीराकान्त - गली दुलहनवाली - पृ 187

रुक जाऊँगी, पर मेरी उम्र तो नहीं रुकेगी न । वह तो मुट्ठी में पड़ी रेत की तरह फिसलती ही जाएगी । ...पूरे डेढ़ साल तक मैंने प्रतीक्षा की । जब आपने बात नहीं उठाई तो मुझे पहल करनी पड़ी ।"[186] इस तरह अपनी पढ़ाई को आगे ले जाने की चाहत उसकी समझदारी का अन्दाज़ा दिलाता है । अपनी पढ़ाई के खर्च के लिए पति के सामने हाथ पसारना नहीं चाहती । इसलिए वह नौकरी करने का मन बना लेती है ।

चित्रा मुद्गल की कहानी 'नतीजा' में समाज सेविका पूरबी दी की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है । देह व्यापार करती अभागियों को 'सेक्स वर्कर' के रूप में कानूनी मान्यतादिलवाने की सरकार की कूटनीति के खिलाफ वह संघर्षरत है । पूरबी दी देह व्यापार करने केलिए मजबूर स्त्रियों की सन्तानों को विशेषकर लड़कियों को उस नरक से बचाने की कोशिश करती है । इसलिए वह अपने घर को 'होम' में परिवर्तित करती है । उन्हें शिक्षा देकर विवेक संपन्न एवं आत्मनिर्भर स्त्री बनाने का अधक परिश्रम करती है ताकि वे अपने भविष्य को उज्ज्वल बनायें । लेकिन शुरू-शुरू में पढ़ाई में बच्चियों का मन नहीं लगता । वह मन ही मन सोचती है "पढ़ाई को लेकर लगन और लगाव जब तक बच्चियों में पैदा नहीं होगा, पैदा नहीं किया जाएगा, तब तक पढ़ना उनके लिए ज़रूरत नहीं बन पाएगा । फिर देश, समाज, विश्व की सूचनाओं से उन्हें वंचित कैसे किया जा सकता है । उनके लिए यह भी जानना अनिवार्य है कि उनकी असली दुनिया और समाज कौन सा है वह नहीं जो आँखें खोलते ही उन्होंने अपनी माँ के इर्द-गिर्द देखा पाया ।" [187]वह शिक्षा की आवश्यकता से उन्हें अवगत कराने की कोशिश करती हैं । वह उसी के संरक्षण में बच्चियों को पालती है एवं पढ़ाती है ताकि बच्चियाँ उसके नियंत्रण में रहे । देह व्यापार करती कुछ औरतें

---

[186] मालती जोशी - पिया पीर न जानी

[187] चित्रा मुदगल - लपेटें - पृ 53

स्वेच्छा से अपनी बेटियों को उसकी गोद में डाल देती है। उसके कठिन परिश्रम के बाद दो बच्चियाँ सभी विषयों में पास हो जाती हैं। जब उसके परिश्रम का फल सही निकलता है तब वह अपने आपको सफल समझती है। वह इस सामाजिक बुराई के खिलाफ अपना संघर्ष जीत लेती है।

नासिरा शर्मा की कहानी 'शर्त' में कथा वाचिका अपने घर की नौकरानी की बेटी को पढ़ाना चाहती है। वह अपना खाली समय में पार्वती को पढ़ाती है। वह कहती है कि " मैं स्लेट और चाक की मदद से उसको क ख ग लिखना सिखाने लगी। मन में खुशी थी। दिमाग में ख्याल चक्कर लगा रहा था कि पार्वती को अब कहीं कोई रोक नहीं पायेगा। इस अक्षर ज्ञान को वह सीख लेने के बाद ज़रूर किसी और को देगी और इस तरह एक न समाप्त होने वाला सिलसिला खामोशी के साथअपनी राह तय करता रहेगा।"[188] लड़की को पढ़ाते वक्त उसकी और आनेवाली पीढी के सुनहरे भविष्य के बारे में वह सोचने लगती है। वह अपने साथ, निम्न तबकेके लोगों को भी समाज में सिर उठाकर जीने की प्रेरणा देती है। लेकिन पढ़ाई में पार्वती का मन नहीं लगता। इसलिए कथावाचिका उसे पाक् कला सिखाती है। आगे वह उसकी जिन्दगी गुज़ारने का माध्यम बन जाता है। शादी के बाद पार्वती एक ढ़ाबा खोलती है। एक बार कथावाचिका उसके ढाबे में जाती है। वहाँ पर चौकी पर बठे पार्वती के दो बच्चों को मास्टर द्वारा पढ़ाते देखकर उसे बहुत खुशी होती है। पार्वती अपने बच्चों को बचपन से ही पढ़ा रही थी ताकि पढ़ाई में उनका मन लग जाएँ। लौटते वक्त कथावाचिका सोचती है कि उसका प्रयत्न निष्फल नहीं हुआ वह कहीं पर तो शर्त जीत गयी। इसप्रकार समकालीन लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में शिक्षा के महत्व को पहचानती नारीपात्रों का निर्माण किया है जो अपने साथ पूरे समाज को शिक्षित करना चाहती है।

3.4 सांस्कृतिक प्रतिरोध

[188] नासिरा शर्मा - मेरी प्रिय कहानियाँ पृ 128

संस्कृति के निर्माण की प्रक्रिया में मातृसत्तात्मक समाज के टूटने पर पितृसत्तात्मक समाज ने जो कार्य किया है, इसके तहत स्त्री जाति को कमतर व्यक्ति माना गया । उसमें स्वतंत्रता, स्वायत्तता, तर्क, अतिक्रमण की क्षमता आदि गुणों को पुरुषोचित माना गया । जबकि पारस्परिकता, संबन्धता, देह-बोध, शांति को स्त्रियोचित गुण बताये गये और बाद में पुरुषोचित गुणों का महिमा-मंडन किया गया । प्रभा खेतान सवाल करती है "क्या वजह है कि संस्कृति हमेशाउत्पीड़ित स्त्री को विनम्र बने रहने, क्षमा करने व अहिंसा मार्ग पर चलने का उपदेश देती है? आखिर क्यों मानवीय मूल्यों की प्रतीक स्त्री ही बनी रहती है? संस्कृति स्त्री के नारी-गुणों पर बल देती है और घुमा फिराकर पुरानी पितृसत्तात्मक मान्यताओं को ही स्थापित करती है ।"[189] सांस्कृतिक वर्चस्ववाद के जरिए आज तक स्त्रियों को हशिए पर ही रखा गया । इसकी जबर्दस्त कोशिश रही कि स्त्रियाँ सदा उपनिवेशी रहे । नैतिकता स्त्री को घर में रहते हुए सबसे लगाव रखना सिखाती है । इससे बच्चे बूढे और बीमार की देखरेख करना, खाना बनाना, सफाई करना आदि सभी काम स्त्रियों के जिम्मे डाल दिया । नीतिशास्त्रों ने तो इसे स्त्रियों का निजी क्षेत्र घोषित किया । ऐसे एक समाज में कहीं पर भी स्त्री के व्यक्तित्व को रूपायित करने का कोई मार्ग नहीं रहा ।

पितृसत्ता के मूल्यों ने सदियों से औरतों को रीतिरिवाज़ों, परंपराओं के नाम पर अपने ढाँचे में जकड़ रका है । धर्माचार्यों, दार्शनिक एवं चिन्तकों ने स्त्री के प्रति बहुत ही नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया था । कहा भी गया है कि स्त्री माया है इससे दूर रहो । अतीत से लेकर इस असमानता को स्त्री झेलती आई है । सांस्कृतिक वर्चस्व की सैद्धांतिकी के तौर पर पितृसत्तात्मक समाज ने ऐसे

---

[189]प्रभा खेतान - उपनिवेश में स्त्री - पृ. 82

कानून, नियम, अनुशासन बनाया जिनसे स्त्री हमेशा उसका उपनिवेश बनी रहे । वह कभी भी स्त्री के समान अधिकारों के प्रति सजग नहीं था । आज भी स्त्री की अपमानजनक अवस्था यही दर्शाती है कि हमारी परंपराएँ स्त्री विरोधी हैं । सांस्कृतिक वर्चस्व केमूल में छिपा नारी का यह ज़बरदस्त शोषण, सूक्ष्म और प्रचंड दोनों रूपों में दिखाई देता है ।

समकालीन स्वतंत्रचेता नारियों ने इस वर्चस्व के अंतर्विरोधों पर कडी आलोचना की है । वे अपने लिए अलग विमर्श बना रही है । स्त्रियों के पहनावे में परिवर्तन, धार्मिक प्रतीकों में परिवर्तन हमारी संस्कृति के गहनतम परिवर्तन के द्योतक हैं । किन्तु इसे परिवर्तन से ज़्यादा विकास ही मानना होगा । लता शर्मा कहती है "वह मानवी के रूप में प्रतिष्ठित होना चाहती है । नहीं चाहिए पूजा अर्चना और घंटे-घडियाल । यह सब वेदी पर बैठाकर बलि करने का षड्यंत्र है ।...स्त्रियों के लिए ड्रस कोड बनाना या सुरक्षा के लिए नीति-नियम निर्धारित करना वैसा ही है, जैसे चोरों के डर से सज्जनों को जेल में बंद कर देना । भला जेल से सुरक्षित जगह और कौन-सी होगी ।"[190] आज विज्ञान के विकास के साथ धार्मिक दुराचारों एवं कुरीतियों का ह्रास होता जा रहा है । इसके तहत् स्त्री की चेतना में भी परिवर्तन होता चला आ रहा है ।स्वतंत्रचेता नारियों ने अपनी हालत को सुधारने के लिए प्रतिरोध को हथियार के रूप में अख्तियार कर लिया है । उनका यह प्रतिरोध समाज के वर्चस्ववादी अंतर्विरोधों को सामने लाकर स्त्री मुक्ति के लिए नया रास्ता खोल रहा है । फलस्वरूप संस्कृति की जड़ में जो पुरुषवर्चस्व है डगमगाने लगा है ।

3.4.1 लिंग भेद की शिकार

---

[190]लता शर्मा - औरत अपने लिए - पृ. 126

चित्रा मुद्गल की ‘दूध’ कहानी में परिवार में बच्चों के बीच, लड़का-लड़की में भेदभाव करते बडों की मानसिक विकृति का चित्रण किया गया है । कहानी में जो बच्ची है उसके घर में केवल मर्द दूध पीते है लड़कियाँ नहीं । मर्दों को दूध ले जाकर देने का काम लड़कियों का है । कहानी में बच्ची रोज़ दूध के सोंधे गिलास को सूँघती है । उसकी दूध पीने की इच्छा इतनी बलवती होती है कि घर में माँ और दादी के अभाव में वह चोरी-चुपके दूध पीने की कोशिश करती है । यह देखकर माँ दूध के गिलास को दूर फेंकती है । तब वह छोटी सी बच्ची माँ से पूछती है "मैं जनमी तो दूध उतरा था तुम्हारी छातियों में?... तो मेरे हिस्से का छातियों का दूध भी क्या तुमने घर के मर्दों को पिला दिया था ।"[191] घर के इस भेदभाव भरी दृष्टिकोण एक मासूम बच्ची के ज़रिए कहानी में पेश किया गया है, जो पाठकों के मन को हिलाकर रख देता है ।

ऋता शुक्ल की ‘रामो गति देहु सुमति’.... कहानी की नायिका चंपावती के घर में बचपन से ही लड़का लड़की में भेदभाव प्रकट था। लड़के सारा दिन खेल-खूद में मस्ती लेते एवं अराम करते रहते थे । लेकिन घर की बेटियाँ पूरे दिन घर के कामों में उलझी रहती थीं । जब माँ, बाबू का कलेवा दूकान पर ले जाकर देनेके लिएचंपवती से कहती है तब वह टूटकर उसका विरोध करती है । वह कहती है " नहीं अम्मा सरूप और किसन दिन भर बड़का टोले के लड़कों के साथ खेलते रहते हैं । तुम उनसे कहो न... । बाबू से पिटवाकर पेट नहीं भरता तो पहले तू ही मार ले, दादी; लेकिन कान खोलकर सुन ले, हमने एक बार जो कह दिया कह दिया । सो कह दिया ।"[192] एक बच्ची के मुँह से यह सब उगलवाकर लेखिका ने समाज की उन सडी गली मान्यताओं पर प्रहार किया है जो लड़कियों को दूसरे दर्जे का बनाये रखती हैं । खानपान में भेदभाव की दृष्टि पर भी वह अपना प्रतिरोध प्रकट करती है । वह कहती है "स्वरूप भइया को गेहूँ की रोटी, अरवा चावल का भात और हमारे लिए मकई का टिक्कड़! हम ऐसा खाना नहीं

---

[191]चित्रा मुद्गल - बयान - पृ. 83

[192]ऋता शुक्ल - मानुस तन - पृ.31

खाएँगे, अम्मा, कहे देती हैं। सुरसती दिदिया, तुम भी मत खाना.... ।"[193] परिवार में हो रही इस असमानता को मिटाने के लिए वह संघर्ष करती है । अपनी दीदी को संघर्ष करने के लिए प्रेरित भी करती है ।

स्त्री और पुरुष के लिए निर्मित खास ढाँचों को बदलने की ज़रूरत है । समाज में उन दोनों के लिए व्यवहार के कायदे भी अलग अलग है । अगर बेटा पैदा नहीं होता तो लोगों काविचार है कि पितृ - ऋण सर पर चढ़ा है । आगे पितरों को पानी कौन देगा? नीलम सिंहा की 'वंश' कहानी की स्त्री पात्र, अपने वंश को आगे बढ़ाने के लिए बेटा चाहनेवाले पुरुषवर्चस्ववादी समाज की मानसिकता पर प्रहार करती है । "वंश के लिए इतनी उछल-कूद क्यों? पर क्यों का उत्तर कहाँ है? जिधर देखो वंश, खानदान, पीढ़ी आगे क्या होगा? सवालों से घिरे लोग । ....उसे अपना नाम, अपनीविरासत जैसे-तैसे जोड़ी गयी मेहनत की कमाई को देखनेवाला चाहिए । यह सब बातें कमज़ोर लोग गढ देते हैं स्त्रियों पर, पर वास्तविकता यह है कि वंशज के लिएलालायित पुरुष एक के बाद एक शादी करते जाते हैं, जो माँ नहीं बन सकती, घर से निकाली जाती है, परित्यक्ता बनती है । क्या किसी स्त्री ने वंश के लिए दूसरी शादी की है?"[194]

नासिरा शर्मा की 'अपनी कोख' कहानी की नायिका को बेटे की चाह रखनेवाले परिवार में तीन बार अबोर्शन करवाना पड़ता है । इस बीच उसे दो बेटियाँ पैदा भी होती हैं । एक बार जाँच करवाने पर उसे पता चलता है कि बच्चा लड़का है । अपनी बेटियों के खातिर वह उस भ्रूण को खतम करने केलिए तैयार हो जाती है ।अगर वह जन्मा तो दोनों बेटियों को उस घर में कोई स्थान

---

[193] वही - पृ. 31

[194]नीलम सिन्हा - धूप-छाँह - पृ. 122-123

न मिलेगा । जिन्दगी भर वे दूसरी स्तर पर ही रहेगी । इसलिए उसने ऐसा किया । कहानी की नायिकाएँ घर में अपने ही बच्चों में भेदभाव को मिटाना चाहती हैं । कहानियों में समाज की भिन्न-भिन्न पद्धतियों के अनुपालन हेतु लड़का और लड़की को पालने के अलग ढंग का विरोध किया गया है । जन्म से लेकर स्त्री पर व्यवहार में, रीति - नीति में समाज भिन्नता बरतता है । यही स्त्री को एक खास ढाँचे में ढलने केलिए बाद्य करता है ।

3.4.1 नवउपनिवेशवादी संस्कृति

नव उपनिवेश ने स्त्री को एक पण्य वस्तु में बदल दिया है । बाज़ारी तंत्र द्वारा स्त्री देह का गलत इस्तेमाल किया जा रहा है । उपनिवेश के प्रारंभिक दौर में स्त्री जागरण से जो कुछ हासिल किया था उसको नव उपनिवेशवाद ने स्त्री को मॉडल बनाकर, उसकी देह को बेचकर नष्ट कर दिया है । आज मीडिया, विज्ञापन, फैशन इंटस्ट्री, बाज़ार आदि के सहयोग के तहत स्त्री शरीर बिकाऊ माल बन गया है । फाशन इंटस्ट्री में स्त्री शरीर को सजाकर स्त्री देह को सिर्फ व्यावसायिकता के लिएइस्तेमाल किया जा रहा है । इसके कुतंत्र को समझना आसान कार्य नहीं है । इस खतरनाक षड्यंत्र से समाज को अवगत कराने की कोशिश में है समकालीन लेखिकाएँ ।

3.4.1.1 सौंदर्य प्रतियोगिता

उर्मिला शिरीष की ‘उसका अपना रास्ता’ कहानी में वृन्दा सौंदर्य प्रतियोगिता में भाग लेना चाहती है । वह मिस इण्ड्या बनने का ख्वाब देखती है । उसके हाव भाव एवं रंग-ढंग को देखकर उसकी बहन अनु इस प्रतियोगिता के नकारात्मक पक्ष को समझाती है । वह कहती है "तुम सुन्दर हो,तो क्या उसका प्रदर्शन करना ही चाहिए? स्टेज और मार्केट की चीज़ बना लिया है तुमने अपनी सुन्दरता को । और जीवन में पाखण्ड वैसा ही, जैसे विश्व सुन्दरी बनने से पहले हर हिन्दुस्तानी लड़की को मदर टेरेसा विश्व की सबसे खूबसूरत औरत लगती हो । और वायदे समाज सेवा को

पहला धर्म बताती है । कितनी खोखली लगती है उनके मुँह से ये बातें ।...लेकिन बाद में इन सुन्दरियों द्वारा किया गया सेवा संकल्प न जाने कहाँ हवा हो जाता है । बाद में फिल्मों और मॉडलिंग से ही फुरसत नहीं मिलती । वे हैं तुम्हारी आदर्श और उनके रास्ते पर चलने के लिए तुम इतनी उतावली हुई जा रही हो ।"[195] मॉडल बन जाने के बाद सेवा तो दूर की बात रह जाती है । जिनको सेवा की ज़रूरत है उन्हें हेय दृष्टि से देखने लगती हैं । कहानी में अनु इस तरह की प्रतियोगिताओं के पीछे छिपे खोखलेपन एवं आदर्शहीनता का पर्दाफाश करती है ।लेखिकाएँ स्त्रियों के शरीर को पण्य वस्तु में बदलती ऐसी संस्कृति का डट कर विरोध करती है ।

3.4.1.2 ब्राण्ड संस्कृति

क्षमा शर्मा की कहानी "आवाजें" में एक माँ भूमण्डलीकरण के दौर में ब्राण्ड के नाम पर फैल रही अपसंस्कृति के खिलाफ आवाज़ उठाती है । उसके अपने ही बच्चे ब्राण्ड के नाम पर शोर मचाते हैं । यह बात उसको अच्छी नहीं लगती । वह बच्चों से कहती है कि रात-दिन मेहनत हम करें और उस मेहनत को स्टेटस का सपना दिखाकर कुछ कम्पनियाँ बटोर लेजायें यह कहाँ की समझदारी है । ये कम्पनियाँ विज्ञापन करके अपने कूडे को भी हमें महँगे दामों पर बेच देती हैं । कमाएँ हम और फालतू स्टेटस के नाम पर गँवाएँ भी हम ही । वह बाज़ारवादीअपसंस्कृति के खिलाफ खड़ी होकर बाज़ार के कुतंत्र में न फँसने की सलाह आनेवाली पीढ़ी को देती है ।

3.5 धार्मिक प्रतिरोध

धर्म का मानव-संस्कृति में अद्वितीय स्थान है । इसका प्रभाव मानव-समुदाय पर हमेशा रहा है । धर्म एक मूल्यबोध है, जिसमें लोकभावना या जगत् भावना ही प्रमुख है । "धर्म जीवन से

---

[195]उर्मिला शिरीष - निर्वासन - पृ. 122-123

बाहर ले जाने का मार्ग नहीं है अपितु जीवन की ओर ले जानेवाले मार्ग है ।"[196] इसप्रकार धार्मिक मूल्यों के बलबूते पर ही मानव अपनी ज़िन्दगी में भौतिक विकास हासिल करता है ।

आज धर्म के नाम पर अनेक समस्याएँ व्याप्त है । समाज में व्याप्त धर्म की असहिष्णु प्रकृति विश्व-ऐक्य में बाधा डालता है । इसमें स्त्री सबसे ज़्यादा पिसती है । धर्म का व्यक्ति जीवन में प्रवेश स्त्री को ही ज्यादा भोगना पडता है ।पितृसत्तात्मक समाज द्वारा स्त्री को कमतर व्यक्ति माना गया तो स्वाभाविक था कि धर्म के माध्यम से भी स्त्री को पुरुष से कमतर समझा गया । इसलिए नैतिक और आध्यात्मिक स्तर पर अनेक पाबन्दियाँ स्त्रियों पर लगायी गयी । धार्मिक नैतिकता घर में रहकर सबसे लगाव रखना सिखाती है । परंपरा द्वारा रीति रिवाज़ खान-पान एवं वेश-भूषा आदि के नाम पर स्त्रियों को बेडियों में बंद करके रखा जा रहा है । लेकिन आज स्त्री अपने ऊपर थोपे गये इन छद्म मानसिकता का विरोध करने लगी है । नये समाज में हमें प्रेम,जागरूगता,करुणा, प्रज्ञा, सत्य एवं स्नेह से भरपूर नूतन सार्वदेशिक धर्म की आवश्यकता है । धर्म की संकीर्णता दूर होने पर ही ऐसा संभव हो पाएगा । धार्मिक परिवर्तन भी आज मानव के भाइचारे का आडे आ जाता है । अन्य जातवाले से शादी करने पर भी रोक लगा दी जाती है । इस पर भी लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में प्रकाश डाला है ।

3.5.1 परंपरा

व्यक्ति चाहे कोई भी हो उसका नाम उसकी पहचान है । उसकी सारी कारवाइयाँ नाम से जुड़ी हुई है । अल्पना मिश्र की 'भीतर का वक्त' कहानी में शादी के बाद औरत के नाम बदलने के रिवाज़ की निरर्थकता पर प्रकाश डाला गया है । कहानी की नायिका कावेरी का नाम शादी के बाद सिमरन रखा जाता है । यह रस्म उसको पचता नहीं है । एकाएक नाम बदलने का रिवाज़

---

[196]राधाकृष्णन - भारतीय संस्कृति कुछ विचार (आमुख)

उसे जड़ से हिला देताहै । दूसरा नाम रखने से वह अपने आपको अजनबी महसूस करने लगती है । वह कहती है "सिमरन नाम है मेरा । सिमरन नाम नहीं है मेरा । सिमरन बुलाओ तो लगता है किसी और को आवाज़ दे रहे हैं । कई बार मैंने खुद को बुलाकर देखा है । 'सिमरन', 'सिमरन' कहकर, आवाज़ देकर कई बार अकेले में मैंने अभ्यास भी किया है ।.... कावेरी नाम था है । माँ-बाप का दिया । शादी के बाद पूजा करवाकरमेरा नाम बदल दिया गया । सिमरन । मेरे सर्टिफिकेट नहीं बदले गए । मेरा कोई समान नहीं बदला गया । सोफा को कुछ और नहीं कहा गया । पलंग, चादरें, साडी... सब कुछ का नाम वही रहा । मेरा नहीं रहा ।"[197]इस रीति-रिवाज़ से औरत के मन पर क्या गुज़रती है इसका एक स्पष्ट चित्र इस कहानी में लेखिका ने खींचा है । कावेरी अपने साथ हो रहे इस अन्याय के प्रति चिंतित है । अपनी खोते हुए असली व्यक्तित्व को वह पहचानने लगती है । यह पहचान उसे प्रतिरोध के दरवाजे तक ला खड़ा करती है ।

मंजुल भगत की 'अजूबा' कहानी में शादी के बाद कुंवारी रहने के लिए मजबूर नेहा सोचती है कि अग्नि को साक्षी मानकर परिवार वालों के समक्ष्य उन दोनों ने एक दूसरे की खुशी के लिए आजीवन साथ रहने का वचन लिया था । लेकिन शादी के चार साल बाद भी निशीथ ने उस वचन को पूरा नहीं किया । शादी शुदा होने पर भी कुँवारी ही रहने के लिए बाध्य नेहा के बारे में जानकर परिवारवाले कचहरी चलकर तलाक देने के लिए कहते हैं । तब नेहा शादी के नाम पर किए गयेसारे रिवाज़ों के खोखलेपन पर वार करती है । वह कहती है " तो यही कि तलाकके लिए अब फिर से वेदी पर आग जलानी होगी । वर-पक्ष और कन्या-पक्ष को इकट्ठा करना होगा । पण्डित को बुलाना होगा । निशीथ को मेरा हाथ पुनः पिताजी को सौंपते हुए शपथ तोड़नी होगी । हमें पण्डित के पीछे-पीछे दोहराना होगा, एक-एक वचन जो हम तोड़ना चाहते हैं । तभी होगा विधिपूर्वक

---

[197]अल्पना मिश्र - भीतर का वक्त - पृ. 14-15

तलाक ।"[198] शादी के लिएबनाये गए उन परंपरागत नियमों को वह चुनौती देती है जो सिर्फ शादी करने पर मात्र प्रयोग में आते हैं तलाक लेने पर नहीं । तलाक के लिए भी ऐसे ही रिवाजें बनाना चाहिए ताकि सब लोग यह जान सके कि किसने दिए हुए वचनों को तोड़ा ।नहीं तो एक तलाकशुदा नारी पर समाज में कई अपवाद फैल जाएँगे । वह समाज की इस स्त्री विरोधी दृष्टि में सुधार लाने के लिए अपनी आवाज़ बुलन्द करती है ।

चन्द्रकान्ता की 'न सोहणी न हीर' कहानी में उर्वशी मुसलमान यूसुफ से शादी करना चाहती है । लेकिन घर में पिता अपने सनातन संस्कारों और थोथे अहंकारों से बुजुर्गों के बनाये नियमों के तहत् एक विधर्मी से शादी नहीं करने देता । पिता अमीर-गरीब, खानदान-वानदान को नहीं मानता । लेकिन यह धर्म का मामला था तो वह परिवारवालों के सामने अपनी नाक कटवाना नहीं चाहता था । पिता केइस फैसले पर उर्वशी ने चुप्पी साध ली । माँ के लिए वह एक खत छोड़ती है "मैं जा रही हूँमम्मा । यूसुफ मेरे साथ है । मुझेढूँढ़ना मत । जाना ज़रूरी था क्योंकि मैं जान गईथी कि आप चाहकर भी यूसुफको अपना नहीं पाएँगी । ....पर मैं बलि का बकरानहीं बनना चाहती । दुःख तो कई है माँ, आप दोनों ने मुझे वक्त के साथ चलने के काबिल बनाया अपने फैसले ले सकने की कुव्वत दी, पर भूल गए कि मेरे फैसले आपकी सोच से अलग भी हो सकते हैं ।"[199] परंपरा के नाम पर वह अपनी पसंद को नष्ट करना नहीं चाहती । अगर उसे धर्म के नाम पर कोई परेशानी नहीं है तोपरिवारवालों को उसका साथ देना चाहिए । लेकिन पिता के

---

[198]मंजुल भगत - अंतिम बयान - पृ. 42

[199]चन्द्रकान्ता - बदलते हालात में - पृ. 61

फैसलेने उसे अपना मत प्रकट करने का अवसर नहीं दिया । इसलिए उसने यह फैसला लिया क्योंकि साथ जीना उसको था । इसप्रकार वह अपनी शर्तों पर जीने का फैसला लेती है ।

मालती जोशी की 'मुक्ति पर्व' कहानी में रंजना अलग धर्मवाले अपने दोस्त से शादी करना चाहती है । लेकिन घरवाले इस शादी के लिए मंजूर नहीं होते । उसकी दादी रंजना की पसंद जानकर अपने बेटे से कहती है "मैं यह कह रही थी अगर तुम्हारा मन कभी गवाही दे कि रंजना का चुनाव सही है तो मेरा संकोच मत करना । वही करना जिसे तुम्हारा मन ठीक समझता हो । ....हाँ बेटा! यह मैंही कह रही हूँ । मुझे अब कितना जीना है । दो बरस कि चार बरस, पर लड़की के सामने तो पूरी ज़िन्दगी पड़ी है । उसके साथ अन्याय क्यों हो । मेरे नेम-धरम की चिंता मत करो । वह तो अब मेरे साथ ही जाएँगे, पर मैंने तुम्हें आज़ाद कर दिया है ।"[200] दादी तो अपने बचपन से लेकर पारंपरिक रूढ़ियों का पालन करती आयी थी । लेकिन उसे वह अपने पोते-पोतियों पर ज़बरदस्ती थोपना नहीं चाहती, उन विश्वासों को अपने साथ ही खत्म करना चाहती है । दादी पोतों को उनके इच्छानुसार जीने का स्वातंत्र्य देती है । जिन पुरातन पारंपरिक विश्वासों का पालन वह करती थी, उससे अपने आगे की पीढ़ी को आज़ाद करती है । लेखिका का यह विचार सही निकलता है क्योंकि जब धर्म के नाम जूठी परंपराओं से समाज मुक्त हो जायेगा तभी समाज प्रगति पा सकता है ।

3.5.2 धार्मिक रूढ़ियाँ

समकालीन लेखिकाएँ धर्म के नाम पर प्रचलित रूढ़ियों पर प्रहार करती है । जया जादवानी की 'मुक्ति' कहानी में खुद को ईश्वर समझकर ढ़ोंग कर रहे बाबाओं के चरित्र का पर्दाफाश किया

---

[200]मालती जोशी - पिया पीर न जानी - पृ. 73

गया है। गुरु महाराज 'अनुराग' नाम से एक ट्रस्ट चलाता है। वहाँ की औरतें सफेद वस्त्र पहनकर सिर्फ उसकी भक्ति में जिन्दगी बिताती है। एक दिन ट्रस्ट सन्दर्शन के दौरान वहाँ पर एक पढ़ी लिखी लड़की आती है। वह महात्मजी से कई सवाल पूछती है। जिनका उत्तर देने के लिए वह असमर्थ होता है। "आप मानव को जो ईश्वर प्रेम दिखा रहे है यह एकदम से कैसे मुमकिन है? अगर मानव-मानव से प्रेम नहीं करता तो यह किस तरह सम्भव है कि वह एकाएक ईश्वर से प्रेम करने लगे? यह ढ़ोंग है? आप पहले मानव को मानव से प्रेम करना सिखाएँ। दुनिया में इतना झूठ, इतनी नफरत, इतना अन्याय है और आप किस तरह उस सबसे पलायन कर यहाँ आ बैठे हैं? आप बाहर निकले, मैं आपको बताती हूँ, कर्म-प्रधान जीवन में ईश्वर से रूबरु किस तरह हुआ जाता है।"[201] वह धर्म और ईश्वर के नाम पर दुनिया की वास्तविकता से अलग होकर जीने की प्रवृत्ति पर प्रहार करती है। इस दुनिया में कायम अन्याय एवं अत्याचारों से अज्ञात अपने में केन्द्रित होकर जीना एक प्रकार से पलायन है।

जया जादवानी की 'फिर-फिर लौटेगा' कहानी में तनु का पति ज़िन्दगी से विरक्त होकर मुक्ति के रास्ते पर चलने लगता है। वह शान्ति पाने के लिए बनी-बनायी गृहस्थी को ठुकरा देता है और घर छोड़ने का फैसला लेता है। साधु बनकर एक दिन वह लौट आता है और तनु से कहता है कि बहुत दिन भटकने के बावजूद भी वह आधे रास्ते पर है। तब तनु कहती है "तू बड़ा स्वामि हो गया है न। जिन प्रश्नों के उत्तर के लिए तू भटका करता था, उनके उत्तर मिल गए होंगे। आज मेरे एक सवाल का जवाब भी देता जा - तुम लोग औरत को हमेशा एक रोड़ा क्यूँ समझते हो? संसार में उसे साथ लेकर चलने में सार्थकता पाते हो। जब संसार से विचलित हुए तो सबसे पहले उसे छोडा। पूछ सकती हूँ क्यूँ? औरत क्या सिर्फ सोने के काम आती है; तुम्हारे देवपुरुषों ने औरत

---

[201]जया जादवानी - अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है - पृ. 39

जब तक चाही, साथ रखी, फिर अनचाही समझ किनारा कर लिया। हम नींव के पत्थर हैं। जिस कोख पर पैर रखकर खड़े होते हो तुम, उसी को उजाडते हो - यही कहता है तुम्हारा धर्म?"[202] अपने घर परिवार को छोडकर मुक्ति का रास्ता तलाशने वाले ये पुरुष कभी भी यह नहीं सोचते हैं कि अकेली एक स्त्री घर की सारी ज़िम्मेदारियों को कैसे निभायेगी। लेकिन कहानी में तनु पति के जाने के बाद सारी ज़िम्मेदारियों को संभालती है। ज़िन्दगी के पग-पग पर उसे जिन-जिन कठिनाईयों का सामना करना पड़ा खुलकर बताकर वह अपना प्रतिरोध प्रकट करती है। जिन्दगी में वह अकेली ही सही हार नहीं मानती।

'एक नास्तिक की आस्था' कहानी में अध्यापिका मालती कॉलिज में सरस्वति पूजा के नाम पर चन्दा इकट्ठा करने की प्रवृत्ति पर प्रतिरोध जताती है। लड़कियाँ चन्दा देने की हैसियत न होने वालों से भी जबरदस्ती चन्दा लेती हैं। पूजा के नाम पर हो रहे इस दिखावे के खिलाफ वह आवाज़ उठाती है। वह कहती है "देखो बात समझने की कोशिश करो, पूजा, पूजा की तरह करो, पूजा में श्रद्धा होनी चाहिए, सादगी होनी चाहिए, पूजा में हंगामा करने की क्या ज़रूरत है? विद्या के लिए जिनकी पूजा कर रही हो उन्हें लाउडस्पीकर लगाकर फिल्मी गीत सुनाना तुम लोगों को उचित लगता है।"[203] पूजा के नाम पर, धार्मिक आचार के नाम पर आज कल सिर्फ दिखावे ही हो रहे हैं। इसमें श्रद्धा जैसी चीज़ का कोई महत्व नहीं। धर्म के नाम पर, गरीबों पर भावनात्मक दबाव डालकर, उनसे अर्थ की वसूली करने की कुप्रवृत्ति पर मालती जबरदस्त विरोध प्रकट करती है। लेखिका ने धर्म के नाम पर होने वाले शोषण तथा आडम्बरों पर विरोध प्रकट किया है।

---

[202] वहीं - पृ. 103

[203] कोई भी दिन - पृ. 67

मालती सजग नारी के रूप में कहानी में प्रस्तुत है । जो शिक्षित एवं विवेकशाली है । उसकी राय में धर्म आखिर व्यक्ति के मन के श्रद्धा भाव से संबद्ध है न कोई जश्न मनाने की चीज़ ।

3.5.3 खान-पान

ममता कालिया की 'खानपान' कहानी की नायिका मीनाक्षी चतुर्वेदी परिवार की है जो एक पत्रकार है । उसके घरवाले शाकाहारी थे । एक बार उसकी तबीयत खराब हो जाने पर डॉक्टर उसे रोज़ फल एवं अंडे ज़रूर खाने की सलाह देते हैं । परिवारवालों से बिना बताये वह पडोस में जाकर ऑमलेट खाती है । वहाँ के अंकल से वह कहती है "मेरा खयाल है अंकल अंडे की भी कैपसूल आनी चाहिए । मुझे याद है हमें बचपन में माँ कैसे कॉडलिवर ऑयल चम्मच भर-भर कर पिलायाकरती थीं । उसमें उनका ब्रह्मणत्व खंडित नहीं होता था । दादी भी उसे दवा मानती थीं । दवा के नाम पर हम लोग शेर का कलेजा भी खा सकते हैं पर सच्ची अंकल है हम सब गीदड़ ही ।"[204] उनके परिवारवालों का गीदड़ की तरह का व्यवहार उसे नहीं पचता । मीनाक्षी खानपान में इस तरह पाप-पुण्य के पंडिताऊपन को मानती नहीं । धर्म का व्यक्ति की आवश्यकताओं पर अनधिकार प्रवेश प्रस्तुत कहानी में पेश किया गया है ।

3.5.4 वेश-भूषा बदलती नैतिक दृष्टि

मलयालम की लेखिका निर्मला की कहानी की वाचिका एक सैकाट्रिस्ट को खत लिखती है । उसमें हमारे सनातन सांस्कृतिक मूल्यों का खिल्ली उठाती है । वह सवाल करती है "आपस में केवल बात करने से, पसंद एवं नापसंद में समानता होने से, स्त्री के प्रति पुरुषों को प्यार उमड़ना क्या हमारे संस्कृति का हिस्सा है? इसलिए तो आज की लड़कियाँ लंबे बाल एवं लंबे स्कर्ट की

---

[204]ममता कालिया - निर्मोही - पृ. 91

शालीनता को नष्ट करके पुरुषों जैसे बाल बनाकर एवं जीन्स पहनकर चलती होंगी। कैसे भी हो चोट पहुँचानेवाली पत्ता बनने से तो अच्छा है मजबूत पत्थर बनना जो काँटे की नोक को तोड़ सकें हैं ना?"[205] स्त्रियाँ आज सख्त-से सख्त दिखना चाहती है ताकि उनके प्रति समाज में हो रहे अत्याचार समाप्त हो जाएँ।

सितारा एस. की वेयिल कहानी में धर्मावलंबी पुलिसवाले दो युवतियों को, मुँह न ढकने के कारण गालियाँ देते हैं। युवतियों से यह सहा नहीं जाता। वे पुलिसको धक्का देती है और उन्हें मारती भी हैं। वस्त्र पहनना उनकी अपनी स्वतंत्रता की परिधि में आता है, यह समझ उन युवतियों को थी। जबरदस्ती उनके ऊपर बन्धन लादने की कोशिश पर वे अपना प्रतिरोध प्रकट करती हैं।

3.5.5 हक की माँग

इस्लाम धर्म में शादी को कानूनी तौरपर वैध मानने के लिए चार चीज़ोंका होना ज़रूरी है - पहला लड़की की मरजीपूछना,दूसरा दो,दो गवहियों का होना,तीसरा निकाह सबके सामने होना ये सबज़रूरी है। मेहर वह ‘ टोकन मनी’ है जो शौहर की तरफ से पूरी ज़िन्दगी औरत की देखभाल के लिए दिया जाता है। नासिरा शर्मा की ‘ खुदा की वापसी ‘ कहानी में जुबैर सुहाग रात को अपनी पत्नी से मेहर माफ करवाता है। फरज़ाना ने अज्ञातवश मेहर माफ किया था। एक ऐसा नियम जो औरत के हक में जाता है माफ करने से उसे चैन नहीं मिलता। वह उस कानून की तह तक जाने एवं समझने की कोशिश करती है। उसे पता चलता है कि पुरुष द्वारा स्त्री को खुद कमाकर खिलाने की गारण्डी देती मेहर पर सिर्फ स्त्रियों का अधिकार है। इसके बिना शादी अवैध मानी जाती है। यह जानकर फरज़ाना के मन को सदमा लगता है क्योंकि जुबैर ने उसकी

---

[205]निर्मला - निंगलेन्ने फेमिनिस्टाक्की - पृ. 53

मासूमियत का फायदा उठाया था। अपने हक के लिए वह आवाज़ उठाती है "बलात्कार से उपजे बच्चों को मैं जन्म नहीं दूँगी, चाहे बाँझ ही क्यों न कहलाऊँ.... जो मोहब्बत के नाम पर सत्ता कापरचम लहराये, जो औरत के अधिकार को अपनी चालाकी से छीन ले और उसे निहत्था बनाकर अपनी जीती ज़मीन का एलान करे... वह ज़मीन अंकुर नहींफोडेगी, कभी नहीं। ....नियम और कानून से बँधी ज़िन्दगी को कुबूल करके उसमेंसे नियमों को छाँटना, जो तुम्हारे लाभ में जाते हैं, क्या यह गुनाह नहीं है?.... अबहोश में आयी हूँ, नींद से जागी हूँ।"[206] वह समाज की मानसिक विकलांगता परकुठाराघात करती है। औरतों को अपने अधीनया अपने पैरों की जूती बनाने केलिए उन धार्मिक नियमों को भी तोड़ने-मरोड़नेतक उतारू हो जाते हैं। जिस घरमें खुदा का दिया हुआ हक तक औरतों को नहीं मिलता है तो बाकि का क्या होगायह सोचकर फरज़ाना घर छोड़कर चली जातीहै। इस कहानी में नासिरा शर्मा नेएक आत्मसजग स्त्री छवि का गढ़न किया है।

मलयालम की लेखिका सुहरा की कहानी ‘ अवले नरकाग्नियिल एरिक्कुविन ‘ कहानी की नायिका संतान विहीन है। इसलिए पति दूसरी शादी करना चाहता है। लेकिन इस्लाम धर्म में पहली बीवी की अनुमति के बिना दूसरा ब्याह वैध नहीं माना जाता। पति की यह इच्छा सुनकर वह कहती है "औरतों को दुःख देने के लिए कोई भी धर्म इजाज़त नहीं देता। पुरुष धार्मिक नियमों को तोड़-मरोड़ कर अपने अनुकूल बनाता है। स्त्रियों को कहीं भी न्याय नहीं मिलता।"[207] यहाँ पत्नी की कमी की वजह से बच्चा नहीं होता। अगर यह उल्टा हुआ होता तो पत्नी कभी भी अपने पति को नहीं छोडेगी। लेकिन पुरुष इतना स्वार्थ हो जाता है कि अपने स्वार्थलाभ के लिए धार्मिक नियमों को उलटने-पलटने में उतारू हो जाता है। धर्म में ऐसे कई नियमहै जो औरतों के हिस्से में

---

[206]नासिरा शर्मा - खुदा की वापसी - पृ. 29-30

[207]बी.एम. सुहरा - कुहू कुहू - पृ. 69

जाते हैं । लेकिन पुरुषवर्चस्ववादी व्यवस्था ने स्त्रियों को इससे अज्ञात बनाकर सारे नियमों को अपने अनुकूल बना दिया है ।

3.5.6 धर्म परिवर्तन

मलयालम की लेखिका चन्द्रमती की 'इम्मानुअल मनोहरन मनसुतुरक्कुन्नु' कहानी में मनोहरन सपरिवार धर्म परिवर्तन करता है । बेकारी एवं गरीबी से पीड़ित मनोहरन अपना घर बेचकर दूर जाकर रहने लगता है । एक क्रिस्त्यन चर्च उसे पनाह देता है । वहाँ रहने के बाद ही वह धर्म परिवर्तन करता है । उसके धर्म परिवर्तन की बात सुनकर सगेसंबन्धी हलचल मचाने लगते हैं । यह देखकर मनोहरन की पत्नी कमलम कहती है "गरीबी से पीडित रहने पर सब लोग कहाँ थे? मेरा छोटा लड़का एवं लड़की के भागने पर तुम लोगों ने क्या किया था? ये आदमी शराब के नशे में धुत मुझे पीटने पर ये लोग क्या कर रहे थे? अब बातक करने के लिए आ रहे हैं, आने दीजिए, मैं उनसे बात करूँगी ।"[208] गरीबी से तंग रहने पर यह धर्मावलंबी उनकी हालत जानने के लिए नहीं आए थे । धर्म परिवर्तन की बात सुनकर सब लोगों का खून खौल उठता है । उनकी दुरवस्था में जिस धर्म ने उन्हें पनाह दिया आजीवन उस धर्म का होकर रहने का फैसला उनका अपना है । इसलिए उन सारे धर्मावलंबी लोगों से लड़ने का मन वह बना लेती है ।

सितारा एस. की कहानी 'दैवविलि' में हरि और षेरली प्रेम विवाह करते हैं ।विवाहोपरान्त षेरली, सीता बन जाती है । लेकिन सीता बनना और सिन्दूर लगानाऐसे कार्यों से वह समझौता नहीं कर पाती । उसे उसकी अस्मिता का सवाल जीने नहीं देता । लेकिन हरि से ज़्यादा उसका दोस्त मुहम्मद उसकी परेशानियों को समझने लगता है । अपनी ज़िन्दगी के इस दौर से गुज़रना षेरली के लिए मुश्किल बन जाता है । किसी और की अज्ञाकारिणी बनकर रहना

---

[208]चन्द्रमती - अन्नयुडे अत्ताष़विरुन्न - पृ.16

उसके लिए नामुमकिन बन जाता है। वह फिर से षेरली बनना चाहती है। मुहम्मद इस कार्य में उसका साथ देता है। वह फोन पर हरि से कहती है कि वह एक और बार धर्म बदलने का फैसला ले चुकी हूँ। अपने अस्तित्व को स्वीकारने वाले मुहम्मद के साथ वह आगे की जिन्दगी गुज़ारने लगती है। अपने नाम को हासिल करके वह अपने प्रतिरोध को नया आयाम देती है।

निष्कर्ष

हर व्यक्ति को समाज में जीने के लिए कुछ अधिकार प्राप्त है । इसके बिना मानव जीवन का विकास नहीं होगा । लेकिन एक व्यक्ति के रूप में विशेषरूप से स्त्रियों के अधिकारों का पालन नहीं किया जाता । सामाजिक धार्मिक संस्कृतिक एवं आर्थिक, सभी क्षेत्र स्त्री विरोधी नज़र आते हैं । हमें यह समझ लेना चाहिए कि पुरुष की तरह स्त्री भी एक सामाजिक प्राणी है । प्रत्येक विषय पर उसकी अपनी सोच है । लेकिन स्त्री आज भी सामाजिक बेडियों में जकडी हुई है । समाज में आज स्त्रियों के साथ होने वाले कुछ जुल्म विरासत में चले आए है और साथ ही कुछ नई समस्याएं भी पैदा हुई है जैसे सहजीवन, समलैंगिकता, खासकर स्त्रियों के प्रति हिंसा, छेड़खानी, बलात्कार एवं अपमानजनक प्रवृत्तियों की तेज़ी से वृद्धि हुई है । स्त्री का प्रतिरोध स्त्री के प्रति होनेवाली सभी समस्याओं के खिलाफ है जिन कहानियों कीचर्चा हुई है सभी में स्त्री की अनुभूति हैं । इनमें स्त्री के अनुभवों को केन्द्रीय महत्व दिया गया है । स्त्री-प्रतिरोध को उजागर करती यह कहानियाँ समाज में व्यक्ति के रूप में अपने को स्थापित करती, संवेदनाओं, भावों एवं विचारों को अभिव्यक्ति देती स्त्री पात्रों से भरपूर है । स्त्री की इस वक्तृता से पितृसत्तात्मक समाज कमज़ोर पड़ता दिखाई देता है । अपने अस्तित्व के खयाल को लेकर ये कथानायिकाएँ दोषी समाज पर उँगली उठाती है एवं गहन आत्मालोचना करती हैं । साथ ही गहन आत्मदृष्टि के साथ प्रतिरोध के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि भी तैयार करती हैं । स्त्री अपने लिए एक ऐसा समाज चाहती है जिसमें उसकी बराबर की साझेदारी हो । इन कहानियों के ज़रिए लेखिकाएँ इस बात पर ज़ोर देती हैं कि स्त्री वस्तु नहीं, मनुष्य है । समाज में स्त्री और पुरुष सहभागी है, स्वामी या दासी नहीं । इसलिए स्त्रियों के प्रति समाज को अपनी मानसिकता बदलनी होगी । आज स्त्री को व्यापक दृष्टिकोण से देखने की आवश्यकता है । साथ ही महिलाओं को भी अपने साथ हो रहे ज़्यादती के प्रति सचेत होना होगा

। औरतों को अपनी दयनीय स्थिति को सुधारने की कोशिश स्वयं करनी होगी। इसलिए स्त्रियों ने प्रतिरोध को आज़मा लिया है। प्रतिरोध के ज़रिए औरतें सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक क्षेत्र में हो रहे समस्याओं को पहचान रही हैं और वे अपने अधिकार के प्रति पहले से अधिक सजग हो रही हैं। स्त्री प्रतिरोध को उजागर करती हिन्दी और मलयालम की ये कहानियाँ स्त्री की मानसिकता और शारीरिकता से जुडे पहलुओं को बारीकी से परखती है। इन कहानियों की स्वत्वबोध से युक्त नायिकाएँ चाहे वे किसी भी धर्म की हो या किसी भी जाति से संबन्ध क्यों न रखती हों, प्रतिरोध करने की शक्ति अपने अंदर जिलाएहुए हैं। उनका प्रतिरोध पहले शब्दों के माध्यम से उभरता है और बाद में यही प्रतिरोध समाज में प्रतिफलित होता हुआ दिखाई देता है। हिन्दी और मलयालम की लेखिकाओं ने इन प्रतिरोधों को पहचाना और उन्हें अपनी कलम से उकेर कर, संपूर्ण स्त्री समाज के विरुद्ध बरकरार शोषण के खिलाफ अपना मोर्चा तैयार किया हैं।

चौथा अध्याय

समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला कहानियों में स्त्री प्रतिरोध : आर्थिक एवं राजनीतिक संदर्भ में

4.1 स्त्री जीवन का आर्थिक सन्दर्भ

आज के पूँजीवादी युग ने स्त्रियों के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के दरवाज़े खोल दिए हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने अपनी तमाम अच्छाइयों, बुराइयों सहित सभी वर्गों की स्त्रियों को बाहर निकलने के अवसर दिए हैं। स्त्रियों ने रोज़गार के वर्जित क्षेत्रों में भी अपनी दावेदारी प्रमाणित की हैं। यों आर्थिक स्वावलंबन ने कई अर्थों में स्त्रियों को बदलने में मदद की है।

आर्थिक स्वावलंबन स्वाभिमान पैदा करता है। जन स्वाभिमान जागृत हुआ तो वह चेतना संपन्न हो गयी। यह चेतना उनके सामथ्र्य का निर्माण करने लगी। इस संदर्भ में रमणिका गुप्ता जी का कथन है "स्त्री अगर आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी हो तो उस पर जुल्म नहीं होंगे और यदि होंगे भी तो कम होंगे। स्वावलंबी होने से औरत का स्वाभिमान बढ़ता है और उसका आत्मसम्मान भी। साथ ही वह प्रतिकूल परिस्थितियों और प्रतिबन्धों को नकारने की क्षमता हासिल कर लेती है। वह समाज की संकीर्ण परंपराओं से परे मुक्ति की राह पर चल सकती है।"[209] आर्थिक रूप से सक्षम होने पर उन्हें गैर-बराबरी और घरेलू हिंसा से जूझना थोड़ा-सा आसान हो जाता है। मानसिक गुलामी से मुक्त हो जाने के साथ-साथ उनके सामने चुनाव की सुविधाएँ और जीने के विकल्प अधिक होते हैं।

मौलिक अधिकारों के (14,15 (1), (2), 16 (2) और 21) के तहत् भारतीय संविधान द्वारा स्त्रियों को समानता का अधिकार प्राप्त है। समान पारिश्रमिक अधिनियम-1976 भी स्त्री एवं पुरुष को एक जैसे काम के लिए समान वेतन मिलने के उद्देश्य से ही बनाया है। कानून में प्रत्येक व्यक्ति चाहे स्त्री हो या पुरुष, समान अधिकार का प्रावधान है। इसप्रकार नौकरीपेशा

---

[209] रमणिका गुप्ता- स्त्री विमर्श कलम और कुदाल के बहाने, पृ.15

नारियों के अधिकार संरक्षण के लिए कानून बनाने के बावजूद भी दिन प्रतिदिन उनकी स्थिति बदतर होती जा रही है ।

4.1.1 पुरुष केन्द्रित अर्थ व्यवस्था

आर्थिक आत्मनिर्भरता के बावजूद मध्यवर्गीय ढ़ाँचे में श्रम के जो लैंगिक विभाजन है उसमें कोई अंतर नहीं आया है । औरत ने अपनी योग्यता और प्रतिभा से बाहर के कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप किया है और प्रतिष्ठा भी अर्जित की है, पर घरेलू मोर्चे पर उसके दायित्वों में कोई कटौती नहीं हुई । बाहर काम करने के बावजूद घर में उसकी ज़िम्मेदारियाँ जहाँ की तहां है । आज वह दोनों स्तरों पर भीषण संघर्ष कर रही है । उसे बाहर नौकरी करने के साथ-साथ घर आकर बच्चे एवं परिवार को संभालना पड़ता है । नौकरी करने के बावजूद भी उसकी मुख्य भूमिका घरेलू ही मानी जाती है । अतः कमाऊ होने पर भी स्त्री को पुरुष के बराबर दर्जा नहीं मिलता । स्त्री के हिस्से में सदा परवशता ही आती है बल्कि पुरुष के हिस्से में स्वच्छंद आत्मनिर्भरता ।

पैसा कमाने के लिए घर से बाहर निकलती स्त्री को अक्सर विरोधी परिवेश का सामना करना पड़ता है । पुरुषों की कामुक दृष्टि, चेष्टाएँ यहाँ तक कि यौनशोषण का भी शिकार उसे होना पड़ता है । वह अपने समान अधिकारों की अनिवार्यता पर ज़ोर देने एवं बदलाव की क्रांतिकारी मुहिम छोड़ने लगती है तो उसके रास्ते में तमाम बाधाएँ उत्पन्न हो जाती है । सच तो यह है कि आर्थिक शक्ति संपन्न स्त्री को और ज़्यादा शक और तिरस्कार की नज़रों से देखा जाता है ।

कहना ही होगा कि स्त्रियों को स्वतंत्रता हासिल करने के लिए आर्थिक स्वतंत्रता मात्र काफी नहीं है । यह एक त्रासद सच्चाई है कि कामकाजी महिलाएँ हर समय घेरे में बंद दिखती हैं । स्त्री का आत्मनिर्भर एवं स्वावलंबी होना पुरुषसत्तात्मक समाज को हजम नहीं होता । एक स्त्री को स्त्री होने के नाते, एक पत्नी होने के नाते अपनी आत्मनिर्भरता की माँग की बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है ।

4.1.1.2 निर्णय की क्षमता

समाज और परिवार में संतुलन और सामंजस्य की संभावनाएँ तलाशने की ज़रूरत पर स्त्री आज ज़ोर दे रही है। समान भावभूमि पर सोचने की पहल करती स्त्री को आर्थिक स्वावलंबन ने वह आधार प्रदान किया जिसके बल पर वह प्रतिरोध की ओर कदम व आवाज़ उठाने लगी है। ऐसी कई नारी पात्रों को समकालीन हिन्दी और मलयालम लेखिकाओं ने पेश किया है।

'कोई एक अभयारण्य' कहानी की नायिका सरोज एक गृहिणी है। उसका पति कर्नल है। पति के सख्त स्वभाव ने पत्नी को एक मशीनी ज़िन्दगी जीने के लिए मजबूर किया। अपने बच्चों के वास्ते चुप्पी को वह कवच बना लेती है। जब बच्चे बडे होकर होस्टल चले जाते हैं तब वह अकेलेपन से ऊब जाती है। वह अपने पति के विचारों के खिलाफ जाकर एक कॉन्वण्ट में नौकरी करने का फैसला लेती है जिससे पति को सदमा लगता है। पति उससे नौकरी छोड़ने के लिए कहता है लेकिन सरोज अपने फैसले पर अडिग रहती है। यह नौकरी उसे पति के कायदे के खिलाफ जाने एवं अपने पैरों पर खड़े होकर जीने की हिम्मत दिलाती है।

मालती जोशी की 'पीर पर्वत हो गई' कहानी में निर्मल का पति अपने भाई के मरने के बाद जेठानी के साथ नाजायज़ संबन्ध में बंधा हुआ था। लेकिन एक बच्चे को जन्म देने के बाद ही निर्मल को इसका पता चला था। निर्मल एक समझदार औरत थी। अपनी विधवा जेठानी को एक इज़्ज़त की जिन्दगी देने के वास्ते वह अपने पति को तलाक देने के लिए तैयार हो जाती है। "मेरी चिंता करने की ज़रूरत नहीं है। मेरा बी.एड पूरा होने वाला है। अगले सत्र में मुझे कहीं न कहीं नौकरी मिल ही जाएगी। रजत की पढ़ाई की समस्या नहीं रहेगी, तो मैं वज्र देहात में भी रह लूँगी। तो यह मेरा प्रस्ताव है। ठंडे दिमाग से इस पर सोचकर मुझे जवाब दीजिएगा।"[210] वह अपने बेटे को भी पति को दे देती है, क्योंकि अपनी छोटी सी नौकरी से वह सिर्फ अपना खर्च ही उठा सकती

---

[210] मालती जोशी- औरत एक रात है, पृ.110

थी। फिर भी वह नौकरी उसे अकेले रहने की ताकत और अपने पक्ष में निर्णय लेने की क्षमता देती है।

दीपक शर्मा की 'माँ का दमा' कहानी में कार्तिकी पति और बुआ की शिकायत से बच निकलने के लिए कारखाने की नौकरी को आज़मा लेती है। वह दमे की मरीज है। कारखाने में कपड़े की ब्लीचिंग में तरल क्लोरिन का प्रयोग होता है, जो दमे की मरीज़ के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। फिर भी वह घर की हालत से तंग आकर इस काम को स्वीकारती है। उसकी जेठानी ने कार्तिकी के पति को अपने वश में कर लिया था। इसलिए घर में उसका कोई स्थान नहीं था। घर से बाहर जाकर काम करने से कार्तिकी खुश थी। वह कारखाने की औरतों से अपने दुःख-दर्द बाँट सकती थी। इससे उसका मन हलका हो जाता था। उसे अपना घर नरक एवं कारखाना स्वर्ग लगने लगता है। वह कारखाने में काम करती अपनी सहेली से कहती है "लेकिन अब वह नरक मैंने औधा दिया है, वह नरक अब मेरा नहीं है। उसका है। मेरा यह कारखाना है, मेरा स्वर्ग।"[211] इस काम के बहाने वह बाहर की ताज़ी हवा खा सकती थी। यह उसका रोग निवारण का कारण बना। वह खुश रहने एवं हँसने-बतियाने लगती है। इसलिए वह अपना काम न छोड़ने का फैसला लेती है।

मलयालम की लेखिका पी. वत्सला की 'नीलम्मा' कहानी में नीलम्मा का पति अमीर बनने के लिए गाँव की सरकारी नौकरी से लंबी छुट्टी लेकर पत्नी एवं बच्चों को छोड़कर विदेश चला जाता है। उस वक्त नीलम्मा गर्भवती थी। अपने बेटे का मुँह तक देखने की फुरसत पति को नहीं थी। पति के चले जाने के बाद वह कपड़े की फैक्टरी में मैनेजर की नौकरी करने लगती है। सालों बाद छुट्टी के दिनों बच्चों को साथ लेकर विदेश चलने के लिए पति का बुलावा आता है। वह नीलम्मा उस खत को फाड़कर दूर फेंकती है। वह पति को लिखती है "उस रेगिस्थान में मेरे लिए

[211] दीपक शर्मा- घोड़ा एक पैर, पृ.28

कुछ नहीं है, बच्चे बडे होकर जब खुद आने के योग्य हो जाएँगे तब भेज दूँगी ।"[212] वह उस निर्दयी एवं लालच पति का मुँह देखना नहीं चाहती । कई कठिनाइयों को झेलकर अपनी ज़िन्दगी को लडगड़ाने से उसने बचा लिया था । इसलिए पति के साथ न जाने का फैसला लेने के लिए वह तैयार हो जाती है ।

अषिता की 'आत्मगतंगल' कहानी में राजलक्ष्मी का पति काम पर नहीं जाता । इस निकम्मे पति से छुटकारा पाने के लिए पहले वह आत्महत्या करने की सोचती है । बाद में इस सोच को छोड़कर वह छोटे-मोटे काम करने जाती है । ऐसी जिन्दगी में वह एक बच्चे को जन्म देना भी नहीं चाहती । इसके बारे में वह कहती है "नहीं चाहिए बच्चे किराया एवं खर्च के लिए मात्र रह गया वेतन । एक रुपया तक नहीं बचता । ऐसी ज़िन्दगी में बच्चे किसलिए।"[213] उसे मालूम है कि अगर एक बच्चा उसकी ज़िन्दगी में आ जाए तो वह अपना जीवन नहीं संभाल पाएगी । अपनी कठिनाइयों से भरे जीवन में एक बच्चे को लाकर उसकी जिन्दगी बरबाद करने को वह नहीं चाहती ।

सोबिया की कहानी 'धर्मसंकडम्' की नायिका एक अध्यापिका है । उसका पति दूसरी औरत के साथ भाग जाता है । एक कामकाजी औरत होने के नाते अपने दोनों बच्चों के साथ ज़िन्दगी की बागडोर संभालने में वह कामयाब निकलती है । वह पडोसिन से कहती है "यह नौकरी रहने से हम लोग बच गये थे । नौकरी स्त्रियों को आत्मबल प्रदान करता है । उसे पाने की कोशिश करना । इस नौकरी की वजह से ही सुरेश और सरिता को आज तक कोई कमी के बजाई में पाल रही हूँ ।"[214] अपने बच्चों के भविष्य के बारे में फैसला लेने की क्षमता इस नौकरी से ही उसे मिली थी । एक औरत के लिए अर्थ की आवश्यकता कितनी है इस पर वह ज़ोर देती है साथ ही आने वाली

---

[212] पी. वत्सला- मलयालत्तिंटे सुवर्ण कथकल, पृ.21

[213] अषिता- अम्मा एन्नोडु परंच नुणकल, पृ.

[214] सेबिया- सेबिययुड़े कथकल, पृ.31-32

पीढ़ी को नौकरी प्राप्त करने की सलाह भी देती है, ताकि अपनी जिन्दगी का फैसला वे खुद ले सकें ।

सुहरा की 'आत्महत्ययुडे पोरुल तेडरुत' कहानी का पुरुष पात्र शराबी है । काम करके जो पैसा कमाता है उससे या तो वह शराब पीता है नहीं तो दोस्तों की सहायता करता है । घर के खर्च के लिए कुछ नहीं बचता। इसलिए पत्नी बहुत मेहनत करके एक सरकारी नौकरी पा लेती है । शराबी पति पत्नी से काम छोड़ने के लिए कहता है । तब वह कहती है "आपकी हाथ लगती वेतन शराब पीने एवं दोस्तों की सहायता करने के लिए ही बचता है। बिना शुल्क के मिला हुआ काम है । वह छोड़ने का सवाल ही नहीं उठता ।"[215] पति के कहने पर वह नौकरी नहीं छोड़ती । ऐसे आवारा पति के अधीन रहने से भी अच्छा है खुद की कमाई पर खर्च चलाना । खुद काम करने से पति के सामने हाथ पसारने की नौबत नहीं आएगी । यह पहचान पति की इच्छा के विरुद्ध निर्णय लेने के लिए उसे क्षमता प्रदान करती है ।

लता शर्मा की 'रिमोट कंट्रोल' कहानी भी इस संदर्भ में महत्व रखती है । कहानी की नायिका छाया एक प्राध्यापिका है । उसका पति एक अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कम्पनी के ऊँचे अफसर है । छाया का नौकरी पर जाना पति को पसंद नहीं है । इसलिए घर में मेहमान आए या बच्चे बीमार हैं, ऐसी वजहों पर छाया को ही छुट्टी लेनी पड़ती है । अपनी नौकरी के प्रति उसका पति बहुत निष्ठावान है साथ ही अपने अधीनस्त अफसरों से भी इसकी अपेक्षा रखता हैं । लेकिन उसका यह सिद्धांत पत्नी की नौकरी पर लागू नहीं होता। पच्चीस साल तक छाया नौकरी एवं गृहस्थी के बीच जूझती रही । फिर भी वह अपनी नौकरी नहीं छोड़ी । एक बार छाया को पदोन्नति मिलती है और उसका स्थानांतरण एक छोटे से कस्बानुमा नगर में हो जाता है। यह सुनकर पति त्यागपत्र देने की बात कहता है । छाया उसे समझाने की कोशिश करती है कि उसने यह नौकरी तेईस साल से करती आ रही है अब सिर्फ दो साल ही बचे हैं । फिर वह पेंशन की अधिकारिणी हो

---

[215] सुहरा- कुहू कुहू, पृ.74

जायेगी। वह पति की मर्जी के बिना उस नगर में छोटे-से मकान में अकेली रहने लगती है। वहाँ जाकर विश्वविद्यालय की प्राचार्य पद का कार्य भार संभालकर उसे लगता है कि उसके जीवन का नवीन आयाम सामने है जहाँ वह अपनी क्षमता प्रतिभा और बुद्धि का सर्वश्रेष्ठ उपयोग कर सकती है।

पति फिर से त्यागपत्र देने के लिए कहता है तो वह पलटकर जवाब देती है "नहीं माने नहीं ! मैं त्यागपत्र नहीं दूँगी। ...नौकरी करना न करना मेरा अपना सिरदर्द है। आप क्यों व्यर्थ में परेशान होते हैं ? त्यागपत्र नहीं दूँगी मैं। अभी औरन बाद में।"[216] छाया की नौकरी से आर्थिक सुरक्षा पूरे परिवार को मिलती थी। लेकिन नौकरी के सिरदर्द उसके अपने थे। फिर भी नौकरी उसके लिए अपने जान से प्यारी थी। इसकी वजह से दुनिया का थोड़ा-सा हिस्सा नितांत उसका अपना बन गया था। इन्हीं कुछ समय पर केवल उसका अपना अधिकार था। जिसके नियंत्रण-सूत्र उसके अपने हाथ में थे। इसलिए वह नौकरी न छोडने का फैसला करती है और अकेली रहने लगती है।

4.1.1.3 आजीविका के लिए वेश्यावृत्ति

आज की स्त्री यह जानती है कि समाज में आश्रिता के रूप को छोड़कर स्वतंत्र जीवन बिताने के लिए अर्थ अनिवार्य है। इसलिए शिक्षित स्त्रियाँ किसी भी मोल पर नौकरी हासिल कर लेती है तो अशिक्षित नारी भी अपने पैरों पर खडे होने के लिए छोटी मोटी नौकरी करना चाहती है यहाँ तक कि वेश्यावृत्ति को भी अपनाने के लिए वे हिचकती नहीं। उनके लिए वेश्यावृत्ति सिर्फ जीवन का आधार है न कि कामवासना की तृप्ति। पति के छोड़ने पर, पति की मृत्यु होने पर, जब घर परिवार को संभालने के लिए वह मज़बूर हो जाती है तो वह धंधा करने लगती है। बच्चों की भूख

---

[216] लता शर्मा- आख़िरी नाम अल्लाह का, पृ.80

उसके सामने एक समस्या बन जाती है तो पैसा कमाने के लिए वह कुछ भी करने को तैयार होती है ।

तनूजा एस. भट्टतिरि की 'तात्रिक्कुट्टी - 2-भाग' कहानी का नायक हरीन्द्रन अपनी पत्नी यामिनी को पसंद नहीं करता । वह दूसरी औरत के साथ नाजायज़ रिश्ता बनाता है । अचानक पति के चले जाने पर वह उस परिवार को संभाल नहीं पाती क्योंकि घर की आर्थिक स्थिति कमज़ोर थी । उसके पति ने यह भी नहीं सोचा था कि यामिनी उसके चले जाने के बाद परिवार को कैसे संभाल पाएगी । यामिनी के सामने बेचने के लिए एवं पैसा कमाने के लिए सिर्फ उसका शरीर ही बचा था । एक दिन उससे मिलने के लिए हरीन्द्रन आता है तब वह कहती है "मुझे छूना मत, मार डालूँगी मैं । यहाँ पर मैं रहूँगी । मुझे जो पसंद है सबकुछ करूँगी । मेरी कमाई से तुम्हारी माँ और बेटी की परवरिश करूँगी । बेहतर यह होगा कि तुम यहाँ से चले जाओ ।"[217] आर्थिक तंगी उसे शरीर बेचने के लिए विवश करा देती है । उसने अपना शरीर बेचकर इससे मिले हुए पैसे से अपनी बेटी और सास को पालती है ।

के.आर. मल्लिका की 'नुणा' कहानी में पति पैसा कमाने के लिए पत्नी को अपने दोस्तों के सामने पेश करता है । पति के इस नाइन्साफी से तंग आकर वह मायके चली आती है । मायके की आर्थिक हालत उसे मायूस कर देती है । आर्थिक तंगी से बचने के लिए वह अन्य पुरुषों के पास जाती है । पहले उसकी कमाई पति रखता था अब वह खुद रखने लगती है । वेश्यावृत्ति को नौकरी के रूप में लेनेवाली और उससे जीवनोपार्जन करनेवाली स्त्री ही इस कहानी में है ।

सी.एस. चन्द्रिका की 'विरुन्न' कहानी में पति के मरने के बाद नायिका अपनी बच्ची के साथ जीने के लिए मजबूर हो जाती है । उन्हें गौरियम्मा नाम की स्त्री पनाह देती है । पैसा कमाने के

---

[217] तनूजा एस. भट्टतिरी- सेलेस्टियन प्लेन, पृ.36

लिए गौरियम्मा उसे अपना पुश्तैनी धंधा सिखाती है। एक बार नौ पुरुष मिलकर उसका शारीरिक शोषण करते हैं। जबरदस्ती में उसकी जान निकल जाने की संभावना थी। इसलिए वह एक आदमी को चाकू से मार डालती है और वहाँ से बच निकलती है। भूख मिटाने के लिए एवं अपनी बेटी को पालने के लिए ही इस धंधे में उतरने के लिए वह मजबूर हुई थी। इस प्रकार आर्थिक तंगी से विवश होकर ही कभी कभी स्त्री को अपने शरीर को बेचकर जीने का निर्णय लेना पड़ता है। पुरुषवर्चस्ववादी समाज उसकी इस मजबूरी का फायदा उठाना चाहता है।

के.आर. मीरा की 'मालाखयुडे मरुकुकल' कहानी में एयन्जला और अलक्सान्डर चार साल तक प्रेम करने के बाद शादी करते हैं। लेकिन रुपये की ज़रूरत बढ़ने पर अलक्सान्डर अपनी पत्नी को दोस्त के सामने पेश करता है। इस पर एयन्जला चुप नहीं रहती पुलिस में रिपार्ट लिखवाती है और पति को सज़ा भुगतनी पड़ती है। एयन्जला अपनी बच्ची के परवरिश के लिए एक कम्पनी में रिसप्षनिस्ट का काम करती है। बाद में वह बोस के साथ रहने लगती है उस रिश्ते में एक बच्ची भी पैदा होती है। "मुझे काम की सख्त ज़रूरत है, जिसका मूल्य कुछ भी हो.... बच्चों को पालना है.... बड़ा करना है.... उसके लिए रुपया चाहिए।...जब मेरी आवश्यकतानुसार रुपया इकट्ठा हो जाएगा तब मैं कन्यास्त्री बनूँगी....।"[218] रिसप्षनिस्ट के रूप में काम करने से उसे जो रुपया मिलता था उससे उसकी ज़रूरत की पूर्ति नहीं हो पाती थी। बॉस के साथ रहने से उसे कुछ और पैसा मिलता था। जिससे वह अपनी बच्चियों को अच्छे स्कूल में भेज सकती थी। इस संदर्भ में सोचने की है बच्चों के पेट पालने एवं पढाने के लिए स्त्री कुछ भी करने के लिए तैयार हो जाती है। समकालीन लेखिकाएँ इसको अनैतिकता के रूप में नहीं देखती। उस सामाजिक, आर्थिक एवं वैयक्तिक माहौल को आंकने का प्रयास किया है जहाँ स्त्री को इस काम के लिए बाध्य होना पड़ता है।

---

[218] के.आर. मीरा- कथकल, पृ.20

4.1.1.4 कामुक दृष्टि के प्रति सजग नारी

घर से बाहर निकलती औरतों को अनेक प्रकार की कामुक इशारेबाजियों का सामना करना पड़ता है। सड़क पर हो, बस में हो या ऑंफिस में कामुक हरकतों को झेलना उनके लिए असह्य हो गया है। फिर भी आर्थिक स्वावलंबन आज उनके लिए ज़रूरी होने के कारण वे इन कामुक दृष्टियों के प्रति सजग होकर प्रतिरोध प्रकट करने लगी हैं।

अल्पना मिश्र की 'मुक्ति प्रसंग' कहानी की नायिका मीनू सरकारी नौकरी करती है। उसका काम पर जाना पति डॉक्टर साहब को पसंद नहीं है। पत्नी ने जब अपने बलबूते पर नौकरी प्राप्त की है तो वह मना भी नहीं कर पाया। ऑफिस जाते वक्त मीना को बस में छोडछाड सहनी पड़ती है। इसके बारे में वह पति से नहीं कहती क्योंकि इस वजह से उसकी नौकरी छूट जाने की संभावना थी। बस में छेडछाड़ होने पर वह उनका प्रतिरोध करती है "क्या समझ रखा है? जिसकी बगल में बैठो, उसी की अनन्त जिज्ञासाएँ जाग जाती है। पूछना शुरू हो जाता है - कहाँ जाएँगी, कब लौटेंगी ? आपकी बीवियाँ नौकरी नहीं करतीं ? कहीं आती-जाती नहीं ? दूसरे लोग उनके साथ ऐसा ही व्यवहार करते होंगे कभी सोचा आप लोगों ने....।"[219] कामकाजी महिलाओं के साथ हो रहे बर्बरता पूर्ण, अमानवीय व्यवहार पर कहानी की नायिका विरोध प्रकट करती है।

लता शर्मा की 'प्रमेय' कहानी भी इस तथ्य की ओर इशारा करती है। कहानी की नायिका श्रेया को सारे दिन उसके सहकर्मी की कुचेष्टाओं का सामना करना पड़ता है। तंग आकर अपना प्रतिरोध यों प्रकट करती है कि वह उस आदमी के पुरुषत्व पर वार करती है जिस पर उसको इतना रोब था। वह कहती है "समस्या यह है कि मैं एक बोतल बीयर में ही 'टुन्न' हो जाती हूँ। खतरनाक रूमानी मूड में आ जाती हूँ और तब मुझे एक अदद मर्द चाहिए ही।"[220] यह हिम्मत

---

[219] अल्पना मिश्र- छावनी में बेघर, पृ.19

उसने ज़िन्दगी के तजुर्बे से हासिल की थी । यह आर्थिक स्वावलंबन के तहत् संभव हुआ । उसके सपनों का पुरुष उस आदमी के जैसा नहीं है यह खुलकर कह देना उसके प्रतिरोधी स्वर का बयान है। वह ऐसा वार करती है कि उससे उसके पौरुष का दंभ चकनाचूर हो जाता है।

नासिरा शर्मा की 'आबे-तौबा' कहानी में सूसन एक नौकरीपेशा नारी है । उसके साथ काम करने वाले सारे पुरुष औरत की क्षमता और बुद्धि से ज़्यादा औरतपन से रुचि रखते हैं । सूसन जीवन में पवित्रता, स्पष्टता व सत्यता को पसंद करती है । हर रोज़ मीटिंग के तहत् उसे नये पुरुषों से मिलना पड़ता है । बातें करते-करते ये कापुरुष उसकी जन्मजात माँग पर आने लगते हैं । लेकिन वह उनके व्यवहार एवं इशारों का मतलब न समझने का नाटक करती है । वह अपने आप कहती है "फड़फड़ाने दो । इस समुद्र पर कोई नहीं टिक सकता है । और फिर ये कोई इश्क के परिन्दे थोड़े ही है जो सर पटक कर मर जायेंगे ? ये तो वो मौसमी परिन्दे है जो मौसम के साथ आते हैं और मौसम के बदलते ही लौट जाते हैं । दरवाज़े पर लगे हर बन्द ताले को चोंच से खोलने की इनकी व्यर्थ की चेष्टा और फिर दूसरी दिशा की ओर इनकी उड़ान । इनका इतिहास केवल दो शब्दों का है आना और जाना । इनकी न कोई संस्कृति है, न सभ्यता । ब, स्वतंत्रता के पूजारी हैं । हर चीज़ पर चोंच मारना इनका धर्म है । न यह इश्क पहचानते हैं और न इरफान ! ये केवल ईमान खराब करते हैं - अपना भी और दूसरों का भी ।"[221] सूसन सुशिक्षित, सुन्दर और सभ्य औरत है जो इन लंबडों को समझने में सक्षम है । समय के तेज़ी से बदलने के साथ रिश्तों में भी बदलाव हो रहा है । इस अवसर पर स्त्री को सचेत रहना है । यह तथ्य सूसन को ताकत प्रदान करता है ।

---

[220] लता शर्मा- आख़िरी नाम अल्लाह का, पृ.41

[221] नासिरा शर्मा- शामी कागज़, पृ.114

मलयालम की लेखिका ललिता एस. की 'तुलभारम्' कहानी में कावेरी नौकरी पेशा नारी है। उसका पति विदेश में काम करता है। यह जानकर उसका बोस उसके साथ गलत हरकतें एवं अश्लील बातें कहने लगता है। यह उसके लिए असह्य हो जाता है। इस तरह की अपमानजनक बातों को सुनने के लिए वह तैयार नहीं थी। इसलिए वह नौकरी से इस्तीफा ले लेती है।

रेखा. के 'ओरु सेन्सेषणल अभिमुखम' में 'विलासिनी' नामक चरित्र को पेश करती है। नायिका विलासिनी नाटक की अभिनेत्री है। नाटक से जुडे हुए लोग उसको गलत इरादे से यहाँ वहाँ छूने की कोशिश करते हैं। लेकिन आर्थिक तंगी ने उसे इतना मजबूर कर दिया था कि इन इरादों को समझने पर भी वह अनदेखा कर देती है। एक दिन गोपालन नायर उसके साथ जबरदस्ती करता है तो उससे वह सहा नहीं गया। विलासिनी उसे खींच कर थप्पड़ मारती है। अर्थोपार्जन के लिए काम में जुडी औरतों के प्रति समाज का नज़रिया और पुरुष मानसिकता सीधी कभी नहीं रही इस पर विलासिनी प्रतिरोध प्रकट करती हैं। कामकाजी महिलाओं को पुरुषवर्चस्ववादी समाज पण्य वस्तु के रूप में देखता है। इससे वाकिफ लेखिकाएँ चाहे हिन्दी की हो या मलयालम की अपनी कहानियों में ऐसे पात्रों को जन्म देती है जो अपने ऊपर होते जुल्म और अत्याचार के प्रति सचेत हैं।

4.1.1.5 आत्मनिर्भर होने का प्रयत्न

समकालीन लेखिकाएँ अपनी कहानियों के ज़रिए ऐसे स्त्री पात्रों को हमारे सामने रखती हैं जो अकेलेपन से ऊबकर, पति के काम पर न जाने पर, या परिवार की आर्थिक तंगी की वजह से काम पाने की कोशिश करती है और उसमें सफल भी हो जाती हैं।

चन्द्रकांता की 'लगातार युद्ध' कहानी में बलवीर, गुरप्रीत नामक कस्बाई युवती से शादी करता है। शादी के बाद बलवीर, उसके दोषों की लिस्ट बनाना शुरू करता है। शादी के बाद जल्द से जल्द दो बच्चे हो जाना, बलवीर को अपने करियर में रुकावट नज़र आती है। इसके लिए वह

गुरप्रीत को दोषी ठहराता है । पति को आर्थिक सहायता देने के लिए वह दोनों बच्चों को डे केयर सेन्टर में रखकर एक स्टोर में काम करने लगती है । लेकिन काम से लौटते वक्त देर हो गयी तो बलवीर उसे खरी-घोटी सुनाने लगता है । इस घुटन भरी ज़िन्दगी से ऊबकर वह दोनों बच्चों के साथ घर से निकलती है । यह फैसला उसके लिए आसान नहीं था, क्योंकि परदेस में दोनों बच्चों के साथ कोई ठौर-ठिकाने के बिना उसे घर छोड़ना था । लेकिन उसके दोस्त उसके सम्बल बन गये थे । उसने दिन-रात एक करके कोर्स पर कोर्स किया । बलवीर को गलत साबित करने के लिए और अपने बच्चों के लिए उसे कुछ बनना ही था । वह वक्त से आगे दौड़ रही थी और आखिर एक वेटिनरी डॉक्टर बन जाती है । वह अपने ही कदमों के बल पर खडी होकर उसकी बेइज़्ज़ती का बदला लेती है दोनों बच्चों को अपने पास रखकर उनकी परवरिश भी वह अच्छी तरह से करती है । दस वर्ष की कामयाब ज़िन्दगी जीने के बाद भी बलवीर के ज़हरीले वाक्यों को वह भूलती नहीं । आखिर युद्ध तो वह जीत ही जाती है ।

चन्द्रकांता की 'तफरीह उर्फ चकई चक्करघिन्नी' कहानी में नायिका निशी घर और ऑफिस के बीच चक्कर लगाते रहने के लिए मजबूर है । उसका वैवाहिक जीवन बहुत सामान्य चल रहा था । अचानक एक दिन उसका पति निलय का एक्सडेण्ट हो जाता है। ऑपरेशन और बढ़ते खर्चों से तंग आकर निशी काम पर जाने लगती है । नयी नौकरी उसे सचमुच फिरकी बना देती है । ऑफिस से देर से लौटने पर पति, पत्नी को शक करने लगता है । वह पत्नी से कहता भी है कि घर के झंझटों से थोड़ी राहत पाने के लिए ही औरत नौकरी करती है । किसी न किसी रूप में घर के खर्च एवं पति की दवाई के लिए रुपया कमाने के लिए बेजोड़ मेहनत करती निशी यह सुनकर कहती है "तुम ठीक कह रहे हो, मैं तफरीह के लिए नौकरी कर रही हूँ ।"[222] निलय के कथन में इतना व्यंग्य छिपा हुआ था कि निशी अपने आपको रोक न पाई । घर और ऑफिस के बीच एक यांत्रिक जीवन जीने वाली निशी कभी भी अपनी खुशियों के बारे में नहीं सोचती थी । निलय

---

[222] चन्द्रकान्ता- अब्बू ने कहा था, पृ.83

द्वारा लगाये गये इल्ज़ामों को वह इसीलिए स्वीकारती है क्योंकि इससे पति के मन को चोट पहुँचे और वह फिर से इल्ज़ाम लगाना बन्द कर दें।

सुधा अरोड़ा की 'सत्ता-संवाद' कहानी में कथावाचिका खुद पैसा कमाकर घर चलाती है। ऑफिस से लौटने पर पति और बेटा दोनों मिलकर घर की हालत ऐसे बना लेते हैं मानो वह भीतर और बाहर काम करनेवाली कोई मशीन हो। यह देखकर वह अपने आपको रोक नहीं पाती। वह कहती है "आ गए? यह लो, खाली हाथ झुलाते चले आए। ....अब मैं बाहर भी करूँ और घर का सारा जंजाल भी संभालूँ। ...चप्पलें अन्दर कहाँ लिए जा रहे हो ? सारी दुनिया की धूल-मिट्टी कमरे में फैला दी। चप्पलें दरवाज़े पर उतारी नहीं जाती ? ...हर काम के लिए मैं ही मरती-खपती रहूँ...।"[223] यह एक ऐसी औरत की चीख है जो घर के काम एवं गर संभालने के लिए बाहर के काम पर जाने के लिए मजबूर है। पति और बेटा खा-पीकर मौज मस्ती करते फिरते हैं। घर के लिए आवश्यक सामान खरीदने के लिए भी उनके पास वक्त नहीं है। निशी को मात्र घर की चिंता सताती है। यह सिर्फ निशी का यथार्थ न होकर समूची स्त्री समाज के अस्तित्व और अस्मिता के संघर्ष का दहकता हुआ सवाल है। आर्थिक आत्मनिर्भर होने का प्रयत्न स्त्री करती रहती है लेकिन पुरुषवर्चस्ववादी समाज उसका साथ नहीं देता।

जया जादवानी की 'पलाश का फूल' कहानी की नायिका 'अपूर्वा' नौकरीपेशा युवती है। उसकी शादी रोहित से होती है। रोहित की यह दूसरी शादी थी। रोहित के घरवाले परंपरावादी थे। घर में रोहित के दोनों बच्चे पहले से मौजूद थे। सभी अपूर्वा को हेय दृष्टि से देखते हैं। घर का यह वातावरण उसे कचोटने लगता है। आत्मनिर्भरता की जिस स्थिति में वह आज तक रहती आई थी शादी के बाद इसके बिना जीना उसके लिए मुश्किल हो जाता है। तीन साल तक वह इन्तज़ार करती रही कि घर का माहौल शायद बदल जाए। लेकिन अपने आपको इस कदर मार डालना

---

[223] सुधा अरोड़ा- काल शुक्रवार, पृ.107

उसके लिए इतना आसान नहीं था। यह बोध उसके वैवाहिक जीवन में धधकती ज्वालामुखी बनकर फूटती है। वह रोहित को समझाने-मनाने की कोशिश करती है। रोहित न माना तो वह घर छोड़ने का फैसला लेती है। वह फिर से काम पर जाना चाहती है पैसों के लिए नहीं, सिर्फ अपने लिए, अपनी स्वतंत्रता की खातिर। अपूर्वा रोहित से कहती है "रोहित में कुछ करना चाहती हूँ, कुछ ऐसा जो सिर्फ मेरा हो, मेरा अपना। मेरे अस्तित्व की निरर्थकता मुझे खा रही है। इस घर की दरो-दीवारों से मुझे पराएपन की बू आती है.... मन भाग उठने को व्याकुल है।....संस्कारों के धागो से जकड़ा हुआ। पर धागे तो धागे हैं आखिर कितनी देर नहीं टूटेंगे.... जब टूटेंगे क्या तुम रोक सकोगे ? क्या कोई भी रोक सकेगा ? मैं हवा हूँ... मकानों की दीवारों से सिर पटकती। किवाड़ों की दरारों से भाग निकलने को आतुर.... मैं तो सांस हूँ। तुम्हारे अन्दर और बाहर होती हुई... तुम बहुत देर मुझे अपने में नहीं रख सकते, बाहर आना मेरी अनिवार्यता है... छोड़ना तुम्हारी नियति।"[224] वह अपनी आर्थिक स्वतंत्रता के लिए उन सभी जिम्मेदारियों से मुक्ति चाहती है जो परंपरावादियों ने औरत का कर्तव्य बताकर उस पर थोप दिए है। वह समझ जाती है कि जहाँ प्यार नहीं है, वहाँ केवल विरक्ति ही रहती है। इसलिए वह सबसे मुक्त होकर अपनी संभावनाओं, सपनों और आरज़ुओं का द्वार खोल देती है।

जया जादवानी की कहानी 'परिदृश्य' का पुरुष पात्र मि. गोयल अपनी पत्नी माधवी को एक गृहस्थिन ही बनाये रखना चाहता है। लेकिन अपने दोस्तों की बीवियों के गुण बताकर वह माधवी को हमेशा नीचा दिखाने की कोशिश करता है। अपने पति एवं बच्चों की ज़िम्मेदारियों को सम्भालकर रहनेवाली माधवी को पति की बातें चुभने लगती है। वह पढ़ाई करती है, नाच सीखती है, फेशनबल कपड़े पहनने लगती है और नौकरी की तलाश भी करने लगती है। अचानक

---

[224] जया जादवानी- अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है, पृ.18

पत्नी में यह बदलाव पति को हज़म नहीं होता । उसका मानना है कि आत्मनिर्भर स्त्रियाँ दूसरों की बीवी ठहरें यही अच्छा है अपने लिए तो वह घर का काम संभालती स्त्री ही चाहता है । लेकिन माधवी काम पर जाने लगती है । वह पति से कहती है "एक बात कहूँ । जीती हुई औरत कभी घर नहीं लौट सकती । हमारे समाज में घर एक राहत की सांस लेने की जगह नहीं, जाने कितनी दुविधाओं, मुश्किलों, चिन्ताओं, परेशानियों, कुंठाओं का अजायबघर है । यह पाँव की ऐसी बेडी है, जिससे एक बार छुटने के बाद कोई वापस नहीं आना चाहेगा । यहाँ सिर्फ हारी हुई औरतें पनाह लेती है क्योंकि फिर वे इसके सिवा कहाँ जाएँगी ?"[225] माधवी अपने को हारी हुई औरत नहीं बनाना चाहती । इसलिए वह घर से मुक्ति चाहती है । नौकरी करके अपनी स्वतंत्रता को बचाये रखना चाहती है ।

मलयालम की लेखिका गिरिजा के मेनोन की कहानी 'वनवासम् क्षिन्जप्पोल' में पार्वती का पति अनन्तन कोई भी काम नहीं करता । वह घर में बैठकर पुरखों के जायजाद बेचकर खाता है एवं घर का खर्च चलाता है । लेकिन पत्नी को पति का यह व्यवहार ठीक नहीं लगता । घर की इस तंगहाली के बीच भी पार्वती घ्.च्.क् की परीक्षा लिखती है और उसे काम भी मिलता है । लेकिन पति उसका काम पर जाने से इनकार करता है । तब वह सोचती है "इस समय मुझे काम की सख्त ज़रूरत है । इस घर का भविष्य अंधेरे में है । रह गयी ज़मीन एवं बडे-बडे पौधों को भी उसने बेच लिया है ।"[226] काम की आवश्यकता उसे महसूस होती है एवं वह काम करने को ठान लेती है । वह स्वयं अपनी दयनीय स्थिति को सुधारने की कोशिश करती है । अपने आप पर भरोसा एवं परिवार को पालने का फैसला करना स्वयं निर्णय लेने की स्त्री की क्षमता दर्ज करती है ।

---

[225] जया जादवानी- अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है, पृ.60

[226] गिरिजा के. मेनोन- अरुणयुड़े विशेषंगल, पृ.22

सी.एस. चन्द्रिका की 'चारनिरम्' कहानी में सीता लक्ष्मी को घर चलाने के लिए पति के सामने हाथ फैलाना पड़ता है। हर बात के लिए पति के सामने गिड़गिड़ाना उसे स्वीकार नहीं था। इसलिए वह पड़ोस के बच्चों को ट्यूशन लेती है और खुद कमाई करने लगती है। अपनी कमाई को आवश्यकतानुसार खर्च करने की स्वतंत्रता उसको नहीं मिलती। अपनी माँ को दवाई लेने के लिए तक रुपया वह दे नहीं पाती। इस स्नेहशून्य वातावरण में जीना उसके लिए दूभर हो जाता है। इसलिए वह अपने दोनों बच्चों को लेकर अपने गाँव लौट आती है। वह सोचती है "गन्दी, पुरानी निचले वस्त्र के बदले नया खरीदने के लिए स्थाई नौकरी से रहित आदमी के सामने हाथ पसारने की नौबत, एक शिक्षित, नौकरी करने योग्य सीतालक्ष्मी को नहीं है। समय मिलने पर अशोक खुद यहाँ आ सकता है। अपने वृद्ध माँ की सहारा बनकर मैं यहाँ रहूँगी।"[227] कुछ भी नहीं कमानेवाले पति के साथ जीने के बजाय वह अपने पैरों पर खड़े होकर स्वतंत्र जीवन बिताना चाहती है। बच्चों को अच्छी तरह पढ़ाने एवं अपनी माँ का संबल बनने के लिए वह नौकरी करने लगती है। अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए ये स्त्रियाँ आत्मनिर्भर बनने का प्रयास करती हैं।

4.1.1.6 संपत्ति में हिस्सेदारी

अपने पैतृक संपत्ति में पुरुष के समान स्त्री का भी समान हक बनता है। स्त्रियों के लिए उत्तराधिकार संबन्धी विधि में पहला क्रान्तिकारी कदम था 'हिन्दु स्त्री संपत्ति पर अधिकार' अधिनियम-1937। यह अधिनियम संपत्ति में स्त्रियों का उत्तराधिकार संबन्धी अधिकार स्थापित करने हेतु बनाया गया था। आज औरतों को कानूनी तौर पर पैतृक संपत्ति में ही नहीं पति की संपत्ति में भी अधिकार ज़रूर मिला है। लेकिन समाज इसे मानता नहीं। सब कहीं इस अधिकार का उल्लंघन ही होता है। महिलाओं का संपत्ति में समान अधिकार मिलने पर समाज में दहेज के

---

[227] सी.ए. चन्द्रिका- मरुपड़ी प्रतीक्षिक्कुन्नु, पृ.82-83

नाम पर व्याप्त शोषण, हत्यायें, आत्महत्याएँ काफी हद तक कम होने की गुंजाइश है । स्त्री को अपने पाँव पर खडे रहने के लिए संपत्ति में समान अधिकार मिलना ही चाहिए । इसमें उसका हक बनता है । पुरखों की संपत्ति में उसका उतना ही अधिकार होना चाहिए जितना पुरुषों का । स्त्री-विमर्श की चर्चा से पहले ही महादेवी वर्मा ने स्त्री की आत्मनिर्भरता व आत्मसम्मान के लिए संपत्ति में उसके समान अधिकार को अनिवार्य ठहराया था। तब से लेकर इस विषय पर कहानियाँ भी लिखी जाती रही ।

ऊर्मिला शिरीष की 'लकीर' कहानी में ऐसी एक स्त्री चरित्र पर प्रकाश डाला गया है जो अपने पिता की संपत्ति में हक मिलने के लिए कोर्ट में अपील करती है । नायिका बी.ए. के बाद आगे की पढ़ाई स्थगित करके अपने पैतृक व्यवसाय में पूरी तरह से स्वयं को लगा देती है, ताकि बुढ़ापे में पिता को कुछ सहायता मिल जाए । उसकी शादी के बाद पिता को व्यवसाय में लगातार घाटा हो जाता है । पिता बेटी को घर बुलाता है । बेटी अपने पिता की सहायता करने के लिए परिवार समेत आ जाती है । कुछ साल बाद पिता में प्रतिस्पर्द्धा की भावना जाग जाती है । बेटी और उसका परिवार आगे न निकल जाएँ यह सोचकर पिता साढ़े तीन माह की बच्ची समेत पूरे परिवार को घर से निकाल देता है । पिता का यह व्यवहार उससे सहा नहीं गया क्योंकि उसने अपनी पढ़ाई इस व्यवसाय के खातिर छोड़ दी थी । शादी के बाद भी अपनी खुशियों तथा ज़िम्मेदारियों को दरकिनार कर पिता का भार हल्का करने के लिए वह अपने घर आया-जाया करती थी । बाद में अपने ससुरालवालों को घर तथा शहर छोड़ ने के लिए राज़ी भी करवाया था । इसलिए वह पिता से अपना हक माँगती है "मैं हार नहीं मानूँगी । अपनों द्वारा किसी आदमी का कैरियर बर्बाद होते देख दिल जलता है । मैं धोखेबाज नहीं हूँ, न मम्मी-पापा की विरोधी । फिर भी मैं अपने अस्तित्व और आत्मसम्मान के लिए अंतिम समय तक लडूँगी । यह मेरा अपना सत्य है.... मेरा संघर्ष है.... मेरी लड़ाई है....उसका अंत क्या होगा, हार या जीत....?"[228] इस

---

[228] ऊर्मिला शिरीष- लकीर तथा अन्य कहानियां, पृ.127

प्रकार वह अपनी लड़ाई जारी रखती है। अपनी खुद की दूकान बनवाती है। इस पर वह गर्व का अनुभव करती है। प्रतिभा में अपनी पहचान एवं आत्मनिर्भर होने का अभिमान झलकने लगता है।

नासिरा शर्मा की 'नयी हुकूमत' कहानी में अधेड़ उम्र की हाजरा शोहर केघर से मायके वापस चली आती है, क्योंकि उसके पति ने दूसरा ब्याह किया था। बेटी की यूँ खाली हाथ लौटते देखकर माँ उससे कहती है "बात चलने की नहीं है बल्कि फायदे की है। तुमने अपना हक क्यों न लिया ? जब तलाक ली थी तो फिर छाती पर चढ़कर गुज़ारा भी तो लेती।....खुला मैदान छोड़ आयी ? तुम लड़कियाँ भी अजीब हो ! जहाँ हक बनता है वह लेती नहीं हो, जहाँ लड़ना होता है वहाँ खामोश रह जाती हो, और जहाँ कुछ भी नहीं करना होता है वहाँ तूफान उठा देती हो....? कभी-कभी तो लगता है कि जैसे तुमने ही मर्दों को बिगाड़कर रख दिया है अपनी हेकड़ी में....।"[229] एक लड़की की माँ शादियाँ करके इस तरह तलाक देकर पहली को बेसहारा बना देनेवाली हरकत पर प्रतिरोध जताती है। पति की नाइन्साफी के बदले तलाक देकर खाली हाथ लौटने के बजाय अपना गुजारा भत्ता के लिए संघर्ष करने की बात पर लेखिका जोर देती है।

नासिरा शर्मा की 'दूसरा कबूतर' कहानी में बरकत नाम बदलकर दो शादियाँ करता है। जब सदिया और रुकइया को यह खबर लगती है तब दोनों मिलकर बरकत से अपना हक माँगती है। बरकत के हाथ में बहुत दौलत है इसलिए उसको इतना घमण्ड है। दोनों सोचती है कि अगर दौलत ही न रह जाए तो वह तीसरी शादी कैसा करेगा। रुकइया अपना हक लेकर उसे

---

[229] नासिरा शर्मा- खुदा की वापसी, पृ.163

तलाक दे देती है । सदिया अपना हक लेकर मायके चली जाती है और दूसरी शादी करती है । इसतरह वह दोनों बरकत को अपनी बेइज्ज़ती का सबक सिखाती हैं ।

4.2 स्त्री जीवन का राजनीतिक संदर्भ

राजनीति की मुख्यधारा से स्त्रियाँ हमेशा उपेक्षित रही हैं । राजनीति का वर्चस्वशील तंत्र पुरुष-व्यवस्था द्वारा संचालित है । यह स्त्री अस्मिता एवं स्वतंत्रता का कट्टर विरोधी है । आज भी संसद में जब तैंतीस प्रतिशत की बात उठती है तो तमाम पितृसत्तात्मक शक्तियाँ उसका विरोध करती हैं । तथाकथित व्यवस्था अपना राजनीतिक वर्चस्व एवं प्रभुत्व को खोना नहीं चाहती । वह स्त्री की प्रभुता एवं उनकी राजनीतिक नेतृत्व की क्षमता को विकसित करना नहीं चाहती ।

भारतीय संविधान के 73वें एवं 74वें संविधान द्वारा महिलाओं को देश भर की पंचायतों व जिला परिषदों में 33 प्रतिशत सीटें आरक्षित करने का प्रावधान किया गया है । जिसके ज़रिए भारतीय संस्थाओं में महिलाओं की राजनीतिक क्रियाशीलता को बढ़ाने की तरफ एक सराहनीय कदम उठाया गया है ।

आज स्त्रियाँ पितृसत्तात्मक सामाजिक अन्तर्विरोधों को एक-एक करके पहचानने लगी हैं ।अब राजनीतिक क्षेत्र में अपने समानाधिकारों स्वत्वाधिकारों के प्रति वे सचेत हैं । वे न्याय के लिए संघर्षरत हैं । महादेवी वर्मा कहती है "शासन व्यवस्था में भी उन्हें स्थान न मिलने से आधा नागरिक समाज प्रतिनिधि हीन रह जाएगा, कारण अपने स्वत्वों के रूप तथा आवश्यकताओं से स्त्रियाँ जितनी परिचित हो सकती है उतने पुरुष नहीं ।"[230] मतलब यह है कि यदि महिलाएँ राजनीति में नेतृत्वशील भूमिका निभायेंगी तो स्त्री समाज पर बढ़ते जा रही हिंसा, अमानवीयता, सब कुछ कम हो जाएगा । जागरूक स्त्रियाँ उनकी पीड़ा को वहाँ तक पहुँचायेंगी । तभी इस

---

[230] महादेवी वर्मा- श्रृंखला की कड़ियाँ, पृ.23

दमनचक्र के खिलाफ आवाज़ उठेगी । समाज का सही नेतृत्व करनेवाली कर्मठ, संवेदनशील, ईमानदार, जागरूक स्त्रियों का राजनीति में आ जाने पर पुरुष के वर्चस्व को धक्का लगेगा । आज तक स्त्री समाज की स्थिति में कोई बेहतर परिवर्तन इसलिए नहीं आया है कि राजनीतिक परिदृश्य में पुॅल्लगी विमर्श हावी है ।

सत्ता की विभिन्न संस्थाओं के शीर्ष पर स्त्रियाँ न्यूनतम है । स्त्री जानने लगी है कि राजनीति में या सत्ता में आए बिना वे किसी भी स्तर पर व्यापक राजनीतिक, सामाजिक हितों की रक्षा नहीं कर सकेंगी । आज निर्णायक पदों पर स्त्री का होना अनिवार्य है । समकालीन हिन्दी-मलयालम लेखिकाएं अपनी रचनाओं के ज़रिए निर्णायक पदों पर स्त्री की आवश्यकता पर ज़ोर देती हैं । सत्ता में रहकर या सत्ता के बाहर खडे होकर वह इस व्यवस्था के षड्यंत्र पर प्रश्न चिह्न लगा रही है ।

4.2.1 स्त्री : सजग नागरिक

शरद सिंह की 'मरद' कहानी में गाँव का मुखिया सरपंच वहाँ की औरतों के पीछे लट्टू बना फिरता है । अकेले हाथ लगने पर लुगाइयों की इज्ज़त लूटना उसकी आदत सी हो गयी है । गाँव के मुखिया होने से उसके इस अत्याचार पर कोई आवाज़ नहीं उठाता था । गाँव में किसी के भी घर पर शौच के लिए इंतज़ाम न था । इसलिए सभी लुगाइयाँ सवेरे ही झाड़ियों की ओट लेकर शौच करती थी । इसी अवसर पर सरपंच उनकी इज्ज़त लूटता था । एक दिन रमेसर की पत्नी सुन्दरा की इज्ज़त लूट ली जाती है । लेकिन पति और साँस दोनों मिलकर घर की इज्ज़त की दुहाई देकर उसे चुप कर देते हैं । वह थाने में रिपोर्ट लिखना चाहती थी लेकिन सास मना करती है । इस घटना के बाद सुन्दरा पति और सास की उपेक्षा करने लगी । उसकी बेटी 10 साल की होने पर वह घर में अंग्रेज़ी शौचालय बनाने के लिए कहती है । उस समय गाँव में केवल सरपंच के यहाँ अंग्रेज़ी शौचालय था । रमेसर सरपंच जी की बराबरी करना नहीं चाहता था ।

ऐसे ही एक दिन सरपंच सुन्दरा की बेटी चमेली को चूडियाँ खरीदकर देता है। यह देखकर सुन्दरा दहाड उठती है और पति से कहती है "आहा, हा ! स्कूल जाना छुडवा दे। स्कूल नहीं जाएगी और शौच के लिए ? मैं कोई अमरिन चख के आई हूँ ? इस बुढ़िया जैसे मैंने भी किसी दिन खाट पकड ली तो कौन जाएगा चमेली के साथ सुबह-शाम ? फिर तुम्हें क्या, तुम तो चमेली को भी समझा दोगे कि चुप करके बैठ। नामरद कहीं के, खूब समझती हूँ, तेरे को भी और तेरे सरपंच को भी। वो भी नामरद, तू भी नामरद। एक को झाड़ियों की ओट चाहिए तो एक को कमरे की ओट.... तभी दिखती है तुम लोगों की मरदानगी। तेरे से कुछ नहीं होगा....तू तो सो रह अपनी बुढ़िया के साथ....जो करना है मैं बनवाऊँगी, करूँगी। लुगाई भी मैं ही हूँ और मरद भी मैं ही।"[231] वह समझ लेती है कि अगर घर में एक शौचालय होगा तो इस अत्याचार से मुक्ति संभव है। भरणकर्ता ही ऐसा करते फिरेंगे तो आम जनता क्या करेंगी ? अपनी बेटी के लिए वह सरपंच से भी भिड़ने का मन बना लेती है। सरपंच के शासन में व्याप्त अन्याय को मिटाने का पहला कदम वह उठाती है।

जया जादवानी की 'कयामत का दिन उर्फ कब्र से बाहर' कहानी में पुरुष सत्ता द्वारा स्त्री के लिए निर्मित कब्र से मुक्ति चाहनेवाली औरत का जिक्र किया है। राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को पहचानती यह औरत व्यवस्था के खिलाफ अपना प्रतिरोध जताती है। एक मंच पर भाषण देते मंत्री को परे धकेलकर वह सदस्यों से कहती है "भाइयों और बहनो, अगर तुम्हें सुनना है तो सिर्फ अपनी सुनना....यह व्यवस्था....यह लोग....तुम्हें कभी अपने जैसा नहीं होने देंगे।"[232] मतलब यह है कि सत्ता को हासिल करने के लिए नेता लोग साधारण जनता को कई वायदे देते हैं

---

[231] शरद सिंह- तीली तीली आग, पृ.18

[232] जया जादवानी- अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है, पृ.31

। लेकिन सत्ता हाथ में लगने से वे अपने वायदों से मुकर जाते हैं । यदि हमें कुछ हासिल करना है तो खुद अपने दम पर करें। इस झूठी, कपटी नेताओं के सामने हाथ फैलाने से कुछ नहीं होगा । इस कहानी में भ्रष्ट व्यवस्था के आन्तरिक खोखलेपन का पर्दाफाश किया गया है । कहानी की नायिका सुमित्रा एक दिन बिना किसी डर, दबाव और जिम्मेदारी के जीने के लिए घर से निकली थी। लेकिन बाहर के वातावरण को इनसान ने अपने हाथों से इतना तबाह कर दिया है कि अब दुनिया में मनुष्य बनकर एक दिन भी जी नहीं पायेगा ।

मलयालम की लेखिका इन्दुमेनोन की '1975 पोस्ट चेरत ओरु कथा' इन्दिरागान्धी के शासनकाल को आधार बनाकर लिखी गयी है । कहानी में गुलामनबी और मुन्नी एक दूसरे से प्यार करते हैं । आपातकाल के समय में जनसंख्या वृद्धि रोकने के लिए पुरुषों का वन्ध्याकरण किया जाता है । मना करनेवाले पुरुषों को सैनिकों द्वारा जबरदस्ती केंप में ले जाते हैं । फिर गर्भवती स्त्रियों को ले जाकर भ्रूणहत्या करते हैं। इसके साथ ही साथ खेती से मिले बीजों को बाहर ले जाकर बेचते हैं । मुन्नी, गुलाबनबी और चुंकुदादु को जब यह खबर मिलती है तो वे तीनों मिलकर इन्दिराजी को खत लिखते हैं । यह जानकर सैनिक चुंकुदादु को मार डालते हैं और गुलामनबी, जिसकी शादी तक नहीं हुई थी उसका वन्ध्याकरण करते हैं । फिर मुन्नी को कैंप में ले जाकर सभी सैनिक बारी-बारी से उसका बलात्कार करते हैं । आम लोगों के साथ इतनी नाइन्साफी पर कुछ कारवायी न करने वाली सत्ता के प्रति मुन्नि के मन में क्रोध एवं घृणा है मुन्नी मरते दम तक इन्दिरागान्धी मुर्दाबाद कहकर अपना प्रतिरोध कायम रखती है ।

'आरुडेयो ओरु सखाव' कहानी में कुमारेटन ने पार्टी के लिए अपना जीवन अर्पित किया था । उसकी बेटी भी अपने बाप के रास्ते चलती है । मंत्री के खिलाफ नुक्कड नाटक खेलती है । तब पुलिसवाले उसकी कमर पर लात मारते हैं और वह खून से लहुलुहान हो जाती है । इस घटना के बाद उसकी कमर दर्द कम नहीं होता । पार्टीवालों को तन्दुरुस्त कॉम्रेड ही चाहिए था बीमार नहीं

। इसलिए उसको पार्टी से निकालने की कोशिश की जाती है । यह जानकर वह कहती है "बुराइयों को खोज निकालकर नफरत करने से भी सरल है, नफरत करने के लिए बुराइयाँ ढूँढ निकालना पार्टी के लिए हो या मानव के लिए ।"[233] क्योंकि वह अपने स्वाभिमान को नष्ट करना नहीं चाहती । पार्टी के लिए ही उसने अपना जीवन समर्पित किया एवं बीमार बनी । लेकिन यह तथ्य समझनेवाला वहाँ कोई भी नहीं था । इसलिए पार्टी छोड़कर वह अपना गाँव अन्तिक्काट्टु में आ जाती है । आगे वह एक साधारण-सी जिन्दगी व्यतीत कर वहाँ के लोगों की प्रगति के लिए काम करनेवाली समाज सेविका बन जाती है ।

डॉ. सरस्वती शर्मा की 'मरियम' कहानी की नायिका मरियम एक वेश्या है । उसके पास एक दिन एक नेता आता है । मरियम ने कुछ शर्तें बनायी है जिसके तहत् ही यह ग्राहकों को अपने पास रखती थी । लेकिन नेता इन शर्तों को तोडने की कोशिश करता है । तब वह कहती है "अरे नेता, काम में ईमानदारी, जो मेरे लिए ज़रूरी है । विश्वास का पालन करो । तुम्हारे पास से न मिलनेवाला भी वही है ।"[234] मरियम इस तरह की कपटी नेताओं की पोल खोल देती है । आम आदमी को इन पर जो विश्वास है उस विश्वास का कोई मूल्य नहीं । वे बाहर से केवल ढ़ोंग करते फिरते हैं । लेखिका इस बात को मरियम के ज़रिए पाठकों के सामने रखती है और प्रतिरोध करने के लिए उकसाती है ।

माधविक्कुट्टी की कहानी 'जानुवम्मय्क्कुम विधवा पेंशन' में एक वृद्ध औरत जानुवम्मा सत्ता के खिलाफ अपनी आवाज़ दर्ज करती है । उसका कहना है "मुझे कोई पार्टी नहीं है । किसी भी पार्टी के बिना आज तक जीती रही.... मुझसे मंत्रियों को देखा नहीं जाता मारा मारी देखने

---

[233] रेखा के.- रखा की कहानियां, पृ.86

[234] डॉ. सरस्वति शर्मा- तषप्पायिलोरुरक्कम, पृ.44

पर भी वह अपने महल से बाहर नहीं निकलेंगे। चोर कहीं के। वोट माँगकर मेरे पास आए सभी आज मंत्री है। इससे क्या मिला ? वे मेरी ओर मुडकर भी नहीं देखते। मैं यहाँ जिन्दा हूँ क्या यह ख्याल उनको हैं ?"[235] वोट माँगने के लिए यह नेता लोग वृद्धों के पास आते हैं। उन्हें कई वायदे देते हैं। उनका घर बनवा देंगे, पेंशन ठीक करवादेंगे आदि। लेकिन जब ये जीत जाते हैं तो इन वेसहारों की ओर ध्यान तक नहीं देते। ऐसे झूठी, कपटी नेताओं की इस नाइन्साफी के खिलाफ जानुवम्मा अपनी आवाज़ बुलन्द करती है।

सारा जोसफ की 'कान्तातारकम्' कहानी में उन्होंने रामायण की कहानी की नई तरह से व्याख्या प्रस्तुत की है। इसमें लक्ष्मण की माँ सुमित्रा कहती है "किसी भी तरह के राक्षस निग्रह करने के लिए उपयुक्त तपशक्ति ऋषिमुनियों के पास है ना। फिर वे बच्चों से क्यों कत्ल करवाते हैं।"[236] समकालीन संदर्भ में सुमित्रा के मुँह से यह कहलवाने के पीछे लेखिका का उद्देश्य आज के बिगड़ते परिदृश्य को समाज के सामने रखना है बड़े बड़े नेता लोग अपनी रणनीति को चलाने के लिए आम आदमी को पार्टी में सदस्य बनाते हैं और सभी कार्य जैसे मारकाट एवं धरणा सभी इन लोगों से करवाते हैं। पुलिस की मार भी ये लोग खाते हैं और जेल भी ये लोग चले जाते हैं। ये लोग सिर्फ उन नेताओं के हाथ की कठपुतली हैं। मिथकीय चरित्रों के द्वारा लेखिका ने यहाँ राजनीतिज्ञों के षड्यंत्रों से वाकिफ नारी को पेश किया है और साथ ही साथ अत्याचार और अमानवीय हरकतों को प्रोत्साहन देनेवाली स्वार्थलोलुप सत्ता के विरुद्ध आवाज़ उठायी है। राजनीति में प्यार और ममता नहीं है। राजनीतिज्ञ हमेशा मारकट को बढ़ावा देते रहते हैं। इस कहानी में माँ की तरफ से लेखिका ने मारकट को देखने की कोशिश की है। प्यार और ममता से भरी माँ की आवाज ही गुंजायमान है। कहानी के ज़रिए लेखिका यह कहने की कोशिश करती है

---

[235] माधविक्कुट्टी- समकालिक केरलम, 2003.

[236] सारा जोसफ- पुतुरामायण कथकल, पृ.39

कि आनेवाले पीढ़ी की औरतें सतर्क रहें और सत्ता हासिल करें। सत्ता में औरतों के आने पर ही वे अपने हक एवं आवाज़ को बुलन्द कर सकती है।

राक्षसों के निग्रह करने के लिए जब राम निकल पडता है। सीता उससे कहती है "आप देश को त्यागकर अगर सन्यास स्वीकार करलें तो.... मैं आशा करती हूँ।"[237] लेखिका यहाँ पर राक्षसों को हाशिएकृत लोगों की कोटी में रखती है। ये राक्षस दण्डकारण्य के मूल निवासी हैं। इसलिए उन लोगों को वहाँ से भगाना नीचकार्य है। यह बात सीता राम को समझाती है। लेकिन राम इस युद्ध को देश धर्म कह कर उसकी बातों को टाल देता है। अपने देश के लिए ही क्यों न हो ऐसे हाशिएकृत लोगों को विस्थापित करने की नीच प्रवृत्ति जो सत्ता हथिया लेती है, उसके खिलाफ सीता अपना प्रतिरोध दर्ज करती है। आज भी शासन तंत्र नए आसूत्रणों के तहत् आम लोगों को उनके मूल स्थान से विस्थापित करने की कोशिश करता है। इसके पीछे सिर्फ उन लोगों का स्वार्थ ही छिपा रहता है।

सी.एस. चन्द्रिका की 'कांजीपुरम्' कहानी में तारा कॉलेज की विभागाध्यक्षा है। वह इस अध्यापनजीवन को बहुत प्यार करती थी। उसके शिष्यगण भी उसे बहुत चाहते थे। एक दिन मंत्री उसे बुलाकर दो फेल हुए बच्चों को मेरिट सीट में एडमिशन देने के लिए कहता है। इस बात को तारा साफ-साफ इनकार कर देती है, क्योंकि वह जानती थी कि उसका ऐसा करने से दो और होशियार बच्चों का अवसर नष्ट हो जाएगा। अगले दिन अखबार में यह खबर छपती है कि जो लिस्ट डॉ. तारा ने छपवाई उसमें गलतियाँ हैं। तारा के भ्रष्टाचार के बारे में खोज करने वाला मंत्री का आदेश भी साथ में था। तारा को मेमो भेज दिया जाता है। लेकिन इस पर वह तनिक भी घबराती नहीं। वह विमन्स सेल में कंपलेंट देती है। लेकिन वे उसकी सहायता नहीं करती। कोई भी स्त्री संगठन उसका साथ देने के लिए तैयार नहीं होता। तारा के दुःश्शासन को बन्द करवाने के लिए कॉलेज में कोलाहल मचाया जाता है। इनके आक्रमण से तारा को बचाने के लिए

---

[237] वही, पृ.43

उसके अपने विद्यार्थी लोग उसके साथ खडे हो जाते हैं। कॉलेज के अधिकारी वालन्डरी रिटयार्मेन्ट लेने के लिए कहते हैं। इन सब के बावजूद वह अपने मनोबल को खोये बिना और सिर नीचा किए बिना खड़ी रहती है। लंबे 4 सालों के बाद तारा के हिस्से में सुप्रींकोर्ट फैसला सुनाता है। फैसले में यह कहा गया था कि विश्वविद्यालय की ओर से उसे चार सालों के वेतन तथा अदालती खर्च दोनों दिया जाए। फैसला सुनकर तारा कहती है "फैसले से संतुष्ट हूँ। फिर भी नष्ट हुए अनेक बातों की गिनती कोई भी नहीं कर सकता।"[238] आखिर तारा यह युद्ध जीत जाती है। अपनी पसन्दीदा अध्यापन वृत्ति में जुड़ने से अपने ही विद्यार्थियों के खिलाफ जाने के लिए वह तैयार नहीं थी। वह निडर और स्वाभिमानी थी इसलिए वह अपने संघर्ष में कामयाब हुई।

4.2.2 सत्ताधारी स्त्री

राजनीति में अगर स्त्री को बराबरी का हक मिल जाए तो वह सत्ता का उपयोग जनता के लिए करेगी यह निर्विवाद है। लेकिन समाज इसके लिए तैयार नहीं होता। शिक्षित एवं काबिल स्त्री को भी राजनीति में ज्यादा जगह नहीं मिलती। आज तक राजनीति में जो महिलाएँ आयी है वे किसी राजनेता के परिवार से ही जुडी हुई है। राजनीति में महिलाओं की हिम्मेदारी बढ़ाने के लिए आरक्षण आज अनिवार्य बन गया है। संसद और विधान सभाओं में 33 फीसदी आरक्षण स्त्रियों के देने का प्रावधान सहज रूप से स्वीकारने के लिए पुरुषवर्चस्ववादी समाज तैयार नहीं होता। "आरक्षण का प्रावधान न तो तोहफा है और न विशेषाधिकार। यह एक पहला कदम और अंतरिम प्रावधान भर है जिससे महिलाओं को एक ऐसी लोकतांत्रिक व्यवस्था की राजनीतिक मुख्यधारा में शामिल किया जा सकेगा जिसका संविधान जाति, नस्ल, वर्ग और लिंग के भेदभावों से ऊपर उठकर अपने सभी नागरिकों के लिए समान सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक अधिकारों और अवसरों की गारंटी देता है।"[239] मतलब है संविधान द्वारा राजनीति में स्त्रियों के लिए जगह

---

[238] सी.एस. चंद्रिका, कांजीपुरम, मातृभूमि, 2011 जून

[239] सं. साधना आर्य, निवेदिता मेनन- नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दे, पृ.348

मिला है। अगर ऐसा हुआ तो स्त्रियों के प्रति आज समाज में व्याप्त अत्याचारों में कमी दिखाई देगा। क्योंकि इसके खिलाफ जल्द से जल्द कार्यवाही करने की कोशिश स्त्री करेगी।

मैत्रेयी पुष्पा की कहानी है 'फैसला' जिसमें वसुमती गाँव की प्रधानी होने पर भी पुरुषवर्चस्व वादी समाज उसे अपने हाथ का खिलौना बनाकर रखना चाहता है। उसका पति रनवीर ही सारे मामलों पर अपना फैसला सुनाता था। लेकिन धीरे-धीरे वसुमति अपने अधिकारों को पहचानने लगती है। गाँव की रामकिसन नाम का एक आदमी छत बनाने के लिए अपने बैल को बनी सिंग को बेचता है। बनीसिंह अपनी आवश्यकता की पूर्ति के बाद बैल को वापस रामकिसन को देने के लिए आता है और उससे पैसा लौटा देने के लिए कहता है। उस समय वसुमति अपने अधिकार के बल पर रामकिसन की सहायता करती है। गाँव में इरदोई नामक एक स्त्री आत्महत्या करती है, क्योंकि अपने पिता के छल के वजह से वह अपने पति के पास जा नहीं सकती थी। लेकिन पुलिस और गाँव के सत्ताधारियाँ मिलकर केस को पलट देते हैं। वे झूठी कहानी गढते है कि दहेज लोभी पति के क्रूरताओं का सहन न करके ही इरदोई ने आत्महत्या की थी। गाँव की प्रधानिन वसुमती इनके चाल को समझ जाती है और इस षड्यंत्र के विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद करती है। "कचहरी करने का इतना शोक था तो बाप से कहकर वकालत पढ़ ली होती।"[240] अपनी अधिकार को पहचानती वसुमति राजनीतिज्ञों द्वारा किए जा रहे कुतंत्रों पर प्रहार करती है साथ ही गाँव के गरीब लोगों की सहायता भी करती है। एक स्त्री होने के नाते वह स्त्रियों पर हो रहे अत्याचारों के तह तक जाकर उन्हें न्याय दिलवाने की कोशिश करती है।

मेहरुन्निसा परवेज़ की 'जगार' कहानी में सरकार की ओर से यह आदेश आता है कि स्त्री के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण दिया जाएगा। इसलिए कहानी की पात्र गोमती हरिजन सरपंच बनती है। राजनीति में प्रवेश करते ही वह अपने अधिकारों को समझने लगती है। जब गाँव में एक

---

[240] मैत्रेयी पुष्पा- ललमनियाँ, पृ.14

युवति पर बलात्कार होता है तब वह अत्याचारियों को सज़ा दिलवाने के लिए जल्द से जल्द प्रयास करती है। गोमती स्वयं बलात्कार की शिकार हुई थी इसलिए वह उस स्त्री की पीड़ा को समझ सकती थी। जब गोमती पर यह जानवरपन हुआ तब वह कुछ भी नहीं कर पायी। लेकिन आज उसके पास अधिकार है। वह यह पहचान गयी थी कि इस अधिकार के तहत् वह न्याय के लिए खडी हो सकती है। इसलिए बलात्कार से पीड़ित युवति के पति से वह कहती है "इस बार तो हम ज़रूर आएँगे, हमारे जी में भी कल नहीं पड़ रहा है। न्याय तो होना ही है, आज रायती मरी, कल कोई और मरेगी।"[241] वह भरी सभा में न्याय माँगकर अपने अधिकार का उपयोग करती है। उसकी जिजीविषा, संघर्ष की शक्ति, धैर्य, राजनीतिक रणनीति एवं कार्यनीति उसे अपनी मुकाम तक पहुँचा देती है और साथ ही समाज की स्त्री विरोधी मानसिकता को चुनौती देती हैं।

आम जनता की हैसियत से हो या सत्ताधारी बनकर हो समकालीन हिन्दी और मलयालम की लेखिकाएँ ऐसी नारी पात्रों को हमारे सामने खडा करती है जो अपने अधिकारों से वाकिफ है तथा सत्ता के कुशासन के खिलाफ संघर्ष करने में पीछे नहीं हटती। ये कहानियाँ स्त्री के भविष्य की ओर आंकने का प्रयास करती है। इन कहानियों में सत्ता पर बैठकर लोगों के साथ होनेवाले अमानवीय हरकतों को समझनेवाली और उसके प्रति निडर होकर लड़ने का साहस दिखानेवाली नारी पात्रों को दिखाया गया है।

4.2.3 कानून

प्रत्येक देश में कानून जनता के हित के लिए बनाया जाता है। स्त्री के लिए भी कई कानून बनाए गए है जैसे कि स्वतंत्रता व सम्मान तथा अधिकारों में समानता का अधिकार, विधि के

[241] मेहरुन्निसा परवेज़- समर, पृ.48

समान संरक्षण अधिकार, गोपनीयता, एकांत, घर व प्रतिष्ठा में हस्तक्षेप से संरक्षण का अधिकार, विवाह करने व परिवार बनाने का अधिकार, स्वेच्छा से नौकरी करने का अधिकार, स्वास्थ्य का अधिकार, मातृत्व का अधिकार एवं समान शिक्षा का अधिकार आदि। स्त्रियों को सशक्त बनाने के लिए इन अधिकारों की अहं भूमिका है। लेकिन सत्ता समाज में कभी भी इसे लागू नहीं होने देती, क्योंकि कानून अब सत्ता के हित का उपकरण बन गया है। इसलिए स्त्री को कभी भी न्याय नहीं मिलता। आज की स्त्री इस कुतंत्र को जानने - पहचाननेवाली है। इसलिए वह इस अन्याय के प्रति प्रतिरोध जताती है समकालीन हिन्दी और मलयालम की लेखिकाएँ इस ओर दृष्टि डालती है।

चित्रा मुद्गल की 'बयान' कहानी में बलात्कार की शिकार अपनी बेटी को माँ न्याय दिलवाने की कोशिश करती है। इस जघन्य अपराध को अप्रमाणित घोषित करने के लिए अदालत में दारोगा झूठी कहानी गढ़कर सुनाता है। यह सुनकर कानून पर माँ को जो विश्वास रहा था वह नष्ट हो जाता है। वह दारोगा से कहती है "ठहरिए दारोगा जी, हमारे मुँह में भी जुबान है। क्यों, आपके घर में बेटी नहीं है ? ....वे मेरी बेटी है... मेरी बेटी की चलती फिरती लाश। घर जाइए दारोगा साहब और उस बच्ची को गौर से देखिए। मेरी बेटी बरामद हो जाएगी।"[242] कानून उसके बयान के गलत स्थापित करने की कोशिश करता है। उसकी बेटी को सब सन्देह की नज़र से देखते हैं। कानून द्वारा न्याय न मिलने पर उस पीड़ित लड़की की छवि कलंकित हो जाती है। माँ के बयान को अदालत प्रामाणिक नहीं मानता क्योंकि बलात्कार की शिकार उसकी अपनी बेटी है। इस कहानी की माँ अपनी बेटी के लिए कानून से न्याय माँगती है। यह सशक्त पात्र समाज के सामने चुनौती बनकर खडा हो जाता है।

---

[242] चित्रा मुद्गल- बयान, पृ.20-21

लता शर्मा की कहानी 'बदला हुआ बयान' भी इसी तथ्य पर आधारित है । कथावाचिका को कुछ लोग काम दिलवाने के लालच में ले जाकर उसका यौनशोषण करते हैं । कई महीनों तक यह सिलसिला जारी रहता है । एक बार वह हिम्मत जुटाकर 'नारी संघ' और 'नारी मुक्ति आन्दोलन' चलाती कमला जी से यह बात कहती है । दोनों मिलकर पुलिस थाने जाकर एफ.आई.आर दर्ज करवाती है । सब लोगों के नाम पता आदि लिखकर देती है जिसमें यूनिवर्सिटी के छात्र, प्रोफेसर, वकील, डॉक्टर, पुलिसवाले, सरकारी अफसर और नेता लोग मौजूद थे । लेकिन अगले दिन से वे लोग उसको धमकियाँ देना शुरू कर देते हैं । वे लोग फिर से उसको किड़नाप करते हैं और जानवरों की तरह इस्तेमाल करते हैं और अधमरी लाश बनने पर उसे छोड़ देते हैं । माँ पर तेज़ाब फेंकने एवं भाई को हिजड़ा बनाने की धमकी देते हैं । वह पुलिस थाने जाकर बयान बदलती है, क्योंकि कानून ने उसके साथ न्याय नहीं किया था । उसका साथ नहीं दिया था । इसलिए दुबारा उसको यह सब सहना पड़ा था । कानून पर उसे जो विश्वास था वह चकनाचूर हो जाता है । वह अपना प्रतिरोध इसप्रकार प्रकट करती है "आप मेरे बयान के पीछे क्यों पडे हैं ? आप उनका बयान क्यों नहीं लेते जिनके नाम, पते मैंने अपनी एफ.आई.आर में दर्ज करवाये थे ? भंवरी देवी के साथ भी यही हुआ । ....उन अभियुक्तों के बयान में किसी की कोई दिलचस्पी नहीं जिन पर बलात्कार का आरोप है । 'हिमानी कांड' में भी आज जले चेहरेवाली हिमानी को केन्द्र में रखकर अपने रिपोर्ताज बुन रहे हैं । उन राजकुमारों का बयान क्यों नहीं लिया जिन पर तेज़ाब फेंक हिमानी को जलाने का आरोप है ?"[243] वह इसलिए एफ.आई.आर दर्ज करवाई थी कि कानून उचित कारवाई कर उन लोगों को सज़ा दिलवा दे और इज्ज़त की जिन्दगी जीने का मौका दे । लेकिन कानून उसके हिस्से कोई कारवाई नहीं करता । धमकियों के बारे में भी बयान दिया गया फिर भी कोई उचित फैसला नहीं हुआ । इसलिए उसे बयान बदलना पड़ता है । इस कहानी के द्वारा लेखिका यह बताना चाहती है कि यदि कोई लड़की हिम्मत जुटाकर अत्याचार का प्रतिरोध

[243] लता शर्मा- आख़िरी नाम अल्लाह का, पृ.45

करती है तो समाज एवं कानून उसके हित में कोई फैसला नहीं सुनाते। इसलिए वह अपना बयान बदलने के लिए मजबूर हो जाती है।

लता शर्मा की कहानी में माँ अपनी बेटी एवं बेटे को घर में बराबरी का दर्जा देकर पालती है। माँ का यह अन्दाज़ परिवारवालों को पसंद नहीं आता। फिर भी वह दोनों के बीच भेदभाव नहीं करती। बेटी जब बडी हो जाती है तो वह उसकी शादी करवाती है। लेकिन पति के घर में बेटी को एक और परिवेश का सामना करना पड़ता है पति उसे घर से बाहर निकलने नहीं देता। वह जबरदस्ती निकलना चाहती तो पति उसे मार डालता है। इतना सबकुछ होने के बावजूद कानून उसकी बेटी के पक्ष में कोई उचित कारवाई नहीं करता। तब माँ उस कानून की आलोचना करती है।वह कहती है "इस देश का कानून नहीं बदल सकते। न वे बन सकते हैं, फाँसी का फन्दा, जो तेरे हत्यारे के गले में डाला जा सके।"[244] लड़कियों के खिलाफ परिवार में या समाज में हो रहे अत्याचारों पर सख्त कानून की आवश्यकता है। इस तथ्य को माँ हमारे सामने रखती है। समाज उसके पक्ष में खडा नहीं होता और कानून भी उसके अनुकूल निर्णय लेने में हिचकता है। स्त्री और पुरुष के प्रति समाज का जो विभिन्न रवैया है उसकी कटु आलोचना माँ करती है। लेखिका का मंतव्य यह है कि जब तक समाज व कानून स्त्री को न्याय मिलने के लिए कदम न उठाते तब तक स्त्री को लोकतंत्र में अपना हक प्राप्त नहीं होगा।

मलयालम की लेखिका शारदा चुलूर की कहानी 'कस्तूरी' की पात्र कस्तूरी पर बलात्कार करने की कोशिश की जाती है। अपने आपको बचाने की छटपटाहट में वह आदमी उसके हाथों मर जाता है। कटघरे में खड़ी कस्तूरी भरी अदालत से पूछती है "मेरे इन शब्दों को माननीय अदालत को गलत लगता है तो मुझसे क्षमा करो। क्या मैं एक बात पूछूँ ? ऐसी परिस्थिति में मैं

[244] लता शर्मा- आख़िरी नाम अल्लाह का, पृ.131

और क्या कर सकती थी ? क्या मैं अपने आपको उस आदमी के मृगीय तृष्णा के हवाले कर समाज की नज़रों में गिर जाऊँ ? इस बेइमानी की बोझ को ढोते-ढोते क्या मुझे सूली पे चढ़ जाना चाहिए था ?"[245] वह केवल अपने लिए ही नहीं उन सभी लड़कियों को न्याय दिलवाने के लिए संघर्षरत है, जो उसी के समान पुरुषों के अत्याचार की शिकार हो चुकी है। अदालत में गाँधीजी की फोटो दिखाकर वह कहती है "युवर ओनर, मुझ जैसी निरालंब लड़कियों से बापूजी ने क्या कहा था ? यदि एक पुरुष बलात् तुम्हारी पवित्रता को भंग करने पर उतारू हो जाए तो आप किसी भी हथियार का इस्तेमाल कर सकती है। उस मौके पर एक स्त्री के हाथों से हुआ कत्ल पाप एवं गुनाह नहीं माना जा सकता ।"[246] कस्तूरी का चरित्र आधुनिक युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है । उसने अपने अस्तित्व एवं अस्मिता को बनाए रखने की खातिर उस अत्याचारी का कत्ल किया था । उसका यह प्रतिरोध उसे टूटने से बचाता है । स्त्री विरोधी समाज एवं नियमों पर वे उँगली उठाती है ।

श्रीकुमारी रामचन्द्रन की ‘अमृतवर्षिणी’ कहानी में पन्द्रह साल की लड़की पर बलात्कार किया जाता है। उस लड़की को किडनापेर्स अठारह महीने तक अनेक बडे-बडे लोगों के सामने पेश करते रहे। वह लड़की एक बच्चे को भी जन्म देती है जिसके बाप का नाम किसी को भी नहीं पता था। बच्चे को जन्म देने के बाद वह मर जाती है। असल में उसका कत्ल ही किया गया था। लेकिन कोई इस केस का अन्वेषण करने के लिए तैयार नहीं होता । इस केस की ज़िम्मेदारी एक लेड़ी अफसर उठा लेती है। माँ के दूध के लिए तड़पना बच्चा, मानसिक संतुलन खोनेवाले माँ-बाप यह सब देखकर अमृता उन लोगों से कहती है "तुम लोगों को न्याय दिलवाने के लिए मैं आखिरी दम तक....।"[247] इतना कहकर बह सबूत इकट्ठा करने में जी जान से जुड़ जाती है । "मुजरिम समाज

---

[245] शारदा चूलूर- श्रुतिभंगम, पृ.57
[246] शारदा चूलूर- श्रुतिभंगम, पृ.58
[247] श्रीकुमारी रामचंद्रन- पुलच्चिंत, पृ.87

के ऊँचे ओहदों पर विराजमान है । वे लोग अनेक खेल भी खेलेंगे । लेकिन, आज के दिन ढल ने से उनका खेल भी खत्म हो जाएँगे, मैं खत्म करदूँगी ।"[248] वह रुपयों के सामने सिर झुकानेवाली नहीं थी । कई लोग उसे खरीदने की कोशिश करते हैं । लेकिन वह नहीं मानती । वह मुजरिमों को समाज के सामने लाकर खड़ा करना चाहती है । आखिर उससे यह केस वापस लिया जाता है । वह अपनी वर्दी की उपेक्षा करती है, क्योंकि वर्दी पहनने से उन लोगों के सामने कुत्ता बन कर दुम हिलाना पडेगा । वह I.P.S की उपेक्षा कर एक समाजसेविका बनती है और आम लोगों के लिए संघर्ष करती है ऐसा करने से उसे किसी के सामने सिर झुकाना नहीं पडेगा । मंजिल तक पहुँचने के लिए स्त्रियों को बहुत कठिनाईयों का सामना करना पडेगा ।

4.2.4 सांप्रदायिकता के खिलाफ

धर्म और संस्कृति का निर्माण मनुष्य ने एकजुट हो कर, मिल बैठ कर जीने के लिए किया था । लेकिन सांप्रदायिकता उन्हीं का दामन पकड़ कर मनुष्य को मनुष्य के खून का प्यासा बना रही है । यह एक ऐसा विध्वंसात्मक तत्व है जो आदमी को उसकी आदमीयत से अलगकर केवल घृणा पैदा करती है । साम्प्रदायिकता का धर्म से, धार्मिक विचारों से दार्शनिक पहलुओं से कोई लेना-देना नहीं है ।

सांप्रदायिक दंगा कोई घटना नहीं, बल्कि एक विकृत मानसिकता है । वह

मस्तिष्कों में पहले जन्म लेता है बाद में सड़कों पर आ जाता है । वह सिर्फ अपने समुदाय के हितों के बारे में ही सोचता है । सांप्रदायिकता प्राचीन और मध्ययुगीन विचारधाराओं का इस्तेमाल ज़रूर करती है तथा इस के बल पर प्रचारित किया जाता है । लेकिन मूलतः यह एक आधुनिक

---

[248] वही, पृ.87

युग की घृणित विचारधारा और राजनीतिक प्रवृत्ति है, जो आधुनिक सामाजिक आकांक्षाओं को व्यक्त करती है और उनकी राजनीतिक ज़रूरतों को पूरा करती है । इसकी सामाजिक जड़ों तथा सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक लक्ष्यों को भारतीय इतिहास के आधुनिक काल में खोजा जा सकता है ।

यह सांप्रदायिक विद्वेष राजनीतिक हितों के झंडाबरदारों के स्वार्थ का फल है । सांप्रदायिकता का उदय आधुनिक राजनीति के उदय से जुड़ा हुआ है, जिसके पीछे सत्ता हथियाने का लक्ष्य रहा है । सांप्रदायिकता के मूल में धर्म और संस्कृति नहीं, राजनीतिक सत्ता प्राप्ति की हवस है । साधारण जनता की धार्मिक भावना को इस्तेमाल करके राजनीति अपना उल्लू सीधा कर रही है । इसके ज़रिए सत्ताधारी सुख भोगते हैं । सत्ता के साथ जुड़कर ये शक्तियाँ अपना मुखौटा उतारकर हिंसा का रास्ता अख्तियार कर लेती है । इस अमानवीयता से समाज की रक्षा अनिवार्य है । इस सन्दर्भ में साहित्यकार का मानना है कि सांप्रदायिकता से संघर्ष एक रचनात्मक संघर्ष है ।

4.2.4.1 अत्याचार की शिकार

सांप्रदायिकता में कभी कभी निरीहों का अत्याचार ही है खासकर यह स्त्रियों को सहना पड़ता है । स्वतः दुर्बल होने के नाते शारीरिक और मानसिक तौर पर स्त्री और बच्चों पर अत्याचार होते रहते हैं। यह सहने के लिए वे अभिशप्त है ।

नासिरा शर्मा की 'चार बहने शीशामहल' की कहानी में शरीफ की चार बेटियाँ हैं । उसके मन में एक बेटे की ख्वाहिश थी क्योंकि मरने के बाद उसका पुश्तैनी धंधा संभालने के लिए और कोई नहीं था । लेकिन चारों बेटियाँ बडे होते ही उसके धन्धे को संभाल लेती हैं । चारों बेटियाँ इतनी होनहार थी कि पिता की सारी परेशानियों को दूर करने में वे सफल निकलती हैं । एक दिन अचानक उनके इलाके में सांप्रदायिक दंगा फूट पड़ता है । कुछ लोग उनके घर में जबरदस्ती घुसते

हैं। यह देखकर चारों बेटियाँ बन्दूकें लेकर सीना तानकर खड़ी होती है। वे दाँतों से काटने तथा तेज़ नाखूनों से उन लोगों के मुँह नोचने लगती है। इन सब कोशिशों के बावजूद लड़कियाँ उन लोगों के चंगुल से बाहर नहीं निकल पायीं। उन बदमाशों ने अपने ऊपर झपटती उन लड़कियों पर गोलियाँ चलायी पर अपनी आखिरी साँस तक अपने घर एवं माता-पिता को बचाने के लिए लड़कियाँ उन लोगों से जूझती रही।

चित्रा मुद्गल की 'बयान' कहानी में एक लड़की का बलात्कार होता है। उसकी माँ अपनी बेटी को न्याय दिलवाने की कोशिश करती है। लेकिन भरी अदालत में उसकी बेटी के चरित्र पर लाछन लगाया जाता है। तब माँ दरोगा जी से पूछती है "ठहरिए दरोगा जी, हमारे मुँह में जुबान है। क्यों, आपके घर में बेटी नहीं है ?... वो मेरी बेटी है... मेरी बेटी की चलती फिरती लाश। घर जाइए दरोगा साहब और उस बच्ची को गौर से देखिए। मेरी बेटी बरामद हो जाएगी....।"[249] इन दंगाईयों के खिलाफ बयान देने पर भी उसके प्रति कोई कार्रवाई नहीं होती। लेकिन भरी अदालत में उसकी बेटी के साथ जो घटा है, उसे खुलकर बोलने की हिम्मत उसमें है। दंगे की शिकार बननेवाली औरतों के प्रति समाज उपेक्षा का भाव ही रखता है इसको लेखिका ने दर्ज किया है।

मलयालम की लेखिका सितारा एस. की 'साक्षी' कहानी में शाहीन और उसका परिवार सांप्रदायिक दंगे के शिकार होते हैं। दंगे के दौरान उसकी गर्भवती बहन के पेट को छुरे से फाडकर बच्चे को निकाल दिया गया था। बहुत अमानवीय ढंग से उसके परिवारवालों की हत्या भी की गयी केवल शाहीन बच निकलती है। गवाही देने के लिए उसको पुलिस थाने पहूँचते है वहाँ पर उसकी हिफाजत की ड्यूटी आफ्सर कृष्णकान्त को सौंपी जाती है। शाहीन जब बयान देती है तब

---

[249] चित्रा मुद्गल- बयान, पृ.20-21

अपने समुदायवालों के बारे में उसके मुँह से बुराइयाँ सुनना कृष्णकान्त को अच्छा नहीं लगता। वह शाहीन की बातों को अनसुना कर देता है। कृष्णकांत की इस हरकत की वजह शाहीन समझ जाती है तो वह कहती है "मैं जानती हूँ कि तुमने मेरी बातों को बीच में क्यों काटा। सोचकर नहीं वक्त खाल होने से या मेरे दुःख के बारे में इसलिए कि अपने लोगों द्वारा किए गए काले करतूतों के बारे में तुम से सुना नहीं जाता। तुमको मेरा सच बोलना पसंद नहीं आता। अपने प्रिय जनों की मौत का गवाह बनने के लिए अभिशप्त मुझे तुम समझ नहीं पाओगे। मैं ने और मेरे परिवारवालों ने क्या गलती की ? तुम लोगों के गन्दे सोचविचार एवं अन्धविश्वास ही हमें हर युग में बेमौत मार डालते हैं। इस दहशत को आपने नहीं रोका सर। यह वर्दी पहनकर आप यह सब देखते रहे। एक बार घबराकर मैंने बयान बदल दिया था। लेकिन अब नहीं। एक असली मुसलमान बनकर मैं संघर्ष करूँगी। मेरे परिवार को खत्म किए लोगों को सज़ा दिलवाकर ही रहूँगी।"[250] यह कहानी अपने समय की खतरनाक चिंताओं से आ जुड़ती है। शाहीन की इन बातों को सुनकर कृष्णकान्त को बहुत शर्म महसूस होती है क्योंकि वह धर्मांत व्यक्ति नहीं था एक सच्चा हिन्दू था। वह अंत में अपने को एक सच्चा हिन्दू करार करके आत्महत्या करता है। यह आत्महत्या उसका पछतावा ही है। जब हिन्दू धर्म के गलत इस्तेमाल किया जाता है तब सच्चे धार्मिकों के मन में घुटन पैदा होते हैं। इसलिए शाहीन के प्रश्न के आगे कृष्णकान्त हार जाता है। कहानी झूठी धर्मावलंबियों के खिलाफ आवाज़ उठाती है।

मलयालम की लेखिका इन्दुमेनोन की कहानी है 'दिगंबरन'। इसमें कथावाचिका का भाई जयकृष्णन सांप्रदायिक मानसिकता के शिकार है। वह दूसरे धर्म की लड़कियों को अपने प्यार में फँसाकर उनका शारीरिक शोषण करता रहता है। उसका रहस्य अजण्डा यह था कि हरेक लड़की का नाश उसके समुदाय का नाश है। अन्य समुदाय को समाज में नीचा दिखाने के लिए वह अपने हिसाब से प्रयत्न करता रहता है। कथावाचिका का पति भी जयकृष्णन का साथ देता है। यह

---

[250] सितारा एस.- इडम, पृ.36

जानकर कथावाचिका कहती है "भारत माता की जय कहने से कोई फायदा नहीं । भारत माता तुम्हारी सोच से परे हैं । जब उसने हरेक मुस्लिम लड़की को अपने प्यार में फंसाकर, धोखा दिया था तब तुमने मना क्यों नहीं किया ?"[251] वह पति एवं भाई की सांप्रदायिक मानसिकता के खिलाफ खड़ी होती है । आगे जयकृष्णन एड्स का शिकार बनता है । यह जानने के बावजूद जयकृष्णन एक मुस्लिम लड़की से शादी करता है ताकि उसकी यह बीमारी उस लड़की को भी लग जाए । बीमारी से पीडित जयकृष्णन मर जाता है । उसकी लाश को देखने के लिए जब कथावाचिका अपने घर पहुँचती है तब एडस से पीडित उस लड़की की कराहें सुनाई पड़ती हैं । तब जयकृष्णन की माँ कहती है "तुझे और तेरे पति को सब कुछ मालूम था ना । अच्छा हुआ कि यह मर गया । बहुत सारे महापाप किए थे । अगर जिन्दा होता तो इसकी जैसी अनेक लड़कियों को इसका पाप ढोना पड़ता । लोग इस बीमारी से डरते है बेटी । शादी करने से उसकी पत्नी और उसके बच्चे के खून में भी इस बीमारी लग गयी हैं ।"[252] यहाँ एक माँ अपनी कोख से जनमे बेटे को कोसती है । बेटे की करतूतों की वजह माँ को उनकी मौत से दुःख नहीं होता । समाज में विष बोनेवाले ऐसे आदमियों के प्रति घृणा बरतनेवाली स्त्री को प्रस्तुत कर लेखिका ने स्वस्थ समाज सृष्टि के लिए औरत की भूमिका जो है उस पर विचार किया है । चाहे पिता, पति या पुत्र हो दोषी को दोषी ठहराने के लिए आज की स्त्री हिचकती नहीं ।

4.2.4.2 मानवीय संवेदना के पक्षधर

जया जादवानी की ‘मुक्ति’ कहानी में गुरु-महाराज एक ट्रस्ट चलाता है । उसमें अनेक औरतें दीक्षा ग्रहण करने के लिए आती है । वहाँ पर धर्म के नाम चल रहे अनाचारों को देखकर नायिका के मन में अनेक प्रश्न उभर आता है । अपने आपको ईश्वर के प्रतिनिधि समझते धर्म के ठेकेदारों की कार्यवाईयों पर वह प्रश्नचिह्न लगाती है "अगर मानव-मानव से प्रेम नहीं करता तो यह किस

---

[251] इन्दुमेनोन- कथकल,पृ.111

[252] वही, पृ.112

तरह संभव है कि वह यकायक ईश्वर से प्रेम करने लगे। यह ढोंग है ? आज पहले मानव को मानव से प्रेम करना सिखाएँ। दुनिया में इतना झूठ, इतनी नफरत, इतना अन्याय है और आप किस तरह उस सबसे पलायन कर यहाँ आ बैठे हैं ? आप बाहर निकले मैं आपको बताती हूँ कर्म प्रधान जीवन में ईश्वर से रूबरू किस तरह हुआ जाता है। क्या वजह है कि हिन्दुस्तान में जितने धर्म है, उतनी ही भयंकर मारकाट व धार्मिक विषमताएं हैं - जबकि आप स्वयं कहते हैं कि सभी धर्मों का स्वरूप एक जैसा है। सभी धर्म एक ही बात कहते हैं। फिर हिन्दुस्तान में ही धर्म के नाम पर इतना अन्याय क्यूँ ?"[253] मतलब है सभी धर्मावलंबी यही कहते हैं कि धर्मग्रन्थों में कही गई सभी बातें इनसान के हितों की रक्षा के लिए है। वास्तव में ऐसा होता तो आज का वातावरण जो सांप्रदायिक दंगों, एवं मारपीट से भरा हुआ कभी नहीं होता। महात्माओं का ऐसे बैठकर भाषण देने से कुछ नहीं होगा। उन्हें समाज के बीच खडे होकर भ्रष्ट वातावरण को खत्म करने हेतु कार्य करना पडेगा और जनता को जागृत करना होगा।

धर्म के नाम पर खून पीने के लिए आतुर स्वार्थी लोगों के विचारों पर कुठाराघात करती है क्षमा शर्मा की ‘फादर’ कहानी की नायिका। वह कहती है "मैं नफरत करती हूँ धर्मों से। ढोंग से, ईश्वर के दरबार से, जहाँ कहाँ जाता है कि सब बराबर हैं। लेकिन कोई बराबर नहीं। सबसे ज्यादा ऊंच-नीच, छोटा-बड़ा वही होता है।"[254] मतलब है एक धर्मवाले दूसरे धर्मवाले को इज़्ज़त की निगाह से नहीं देखते। उसमें सहभागिता एवं सौहार्द सिखाया नहीं गया है तो ऐसे धर्मों से उसे नफरत है। यहाँ उसकी सांप्रदायिकता विरोधी मानसिकता उभर आती है।

---

[253] जया जादवानी- अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है, पृ.40

[254] क्षमा शर्मा- नेमप्लेट, पृ.56

मलयालम की लेखिका बी.एम. सुहरा की कहानी है 'वेरुते न्जान एप्पोषुम स्वप्नंगल काणुन्नु' । कहानी की नायिका को उसका पिता परिवारवालों के विरोध करने पर भी पढ़ाता है और उसका बौद्धिक स्तर ऊँचा करने का प्रयास करता है । फलस्वरूप नायिका अपने समय की समस्याओं के प्रति बहुत चिंतित दिखाई देती है । पिता की आकस्मिक मौत उसे जड़ से हिला देती है । ऐन मौके पर परिवारवाले उसकी शादी एक अमीर आदमी से करवाते हैं । ससुराल में वह अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर पाती । उस समय देश सांप्रदायिक दंगों से ग्रस्त था । देश की इस हालत को देखकर उसका दिल तड़पने लगता है । दंगईयों के द्वारा स्त्रियों और बच्चों को ज़िन्दा जलाते खौफनाक सपना देखकर वह चिल्लाने लगती है । इनके अत्याचारों के खिलाफ कुछ करने में असमर्थ कानून के प्रति वह चिंतित है । उसकी इस आदत से खिन्न पति उसे पागल कहकर खरी खोटी सुनाता है । पति को छोड़कर वह मायके चली आती है । वह समाज में व्याप्त इस अत्याचार के खिलाफ खुलकर विरोध जताती है ।

सिल्वि वेल्लनाड़ की 'तीक्कुडल' कहानी में मुबीना का पति सांप्रदायिक दंगे के दौरान मर जाता है । तब मुबीना गर्भवती थी । जचगी में नवागत बच्चा मर जाता है और दवाई के अभाव से मुबीना की हालत नाजुक हो जाती है । मरने से पहले वह अपने बेटे से कहती है "बेटा, बदला नहीं लेना । वह भले मानव के लिए उचित नहीं है । प्रतिशोध की भावना नरकवासियों के लिए है । जिन लोगों ने हमें यातनाएं दी है उन्हें तुम माफ करना । तुम्हें ऐसे विजयी बनते देखकर हमेशा मैं खुश रहूँगी । बुराई के सामने कभी भी हारना मत ।"[255] कहने का मतलब है संप्रदायिक दंगा एक सामाजिक बुराई है । अपने परिवार को नष्ट होते देखकर षाहुल के मन में प्रतिशोध की भावना अंकुरित न हो जाएँ । इसलिए मरने से पहले मुबीना इस सामाजिक बुराई के दुष्परिणाम से बेटे

---

[255] सिल्वी वेल्लनाड- मालाखत्तुम्बिकल, पृ.14

को अवगत कराती है । उन लोगों को माफ करने की सलाह देती है । आनेवाली पीढी के मन में प्रतिशोध की भावना अंकुरित न हो जाए यह आकांक्षा रखकर वह मर जाती है ।

बी.एम. सुहरा की ‘पेट्टिच्ची’ कहानी में हाज्यार, कुंजिपात्तु पर बलात्कार करता है । इस पाप की निशानी कुंवारी कुंजिपात्तु की कोख में पलने लगती है । समाज उसके चरित्र पर कलंक लगाता है । एक हिन्दू पेट्टिच्ची उसकी जचगी उठाती है । जचगी के बाद कुंजिपात्तु की हालत खराब हो जाती है । अस्पताल में ले जाने पर उसको खून की आवश्यकता पड़ती है । पेट्टिच्ची का बेटा कन्नन का खून उस पर चढ़ाया जाता है । इस बात पर धर्मान्ध लोग अस्पताल में आकर हल्ला मचाते हैं क्योंकि एक मुस्लिम के शरीर पर हिन्दू का खून चढ़ाया गया था । तब पेट्टिच्ची कहती है "जिस समय उसको तुम लोगों की ज़रूरत थी तब तुम लोगों ने उसको अकेला छोड़ दिया था । अब हक जताने के लिए आए है बाहर निकल हरामियो ।"[256] वह सांप्रदायिक मानसिकता से ग्रस्त लोगों की खिल्ली उठाती है । जचगी के बाद कुंजिपात्तु मर जाती है । उसकी मासूम सी छोटी बच्ची को पेट्टिच्चि अपने हाथों में ले लेती है । कहानी धर्मान्धिता बनाम मानवीयता की आवाज़ को बुलन्द करती है ।

सितारा एस. की ‘तांग’ कहानी में सांप्रदायिकता की शिकार बनने वाला पात्र है अशरफ । एक दंगे के दौरान अपने दोस्त को वह घर में छिपाता है, जिसे पुलिस खोज रही थी । घर में केवल अशरफ की माँ एवं बहन थी । इसलिए वह जानता था कि पुलिस घर की तलाशी नहीं करेंगी । लेकिन अषरफ की बहन दोनों को घर से बाहर निकाल देती है ।

इतिहास साक्षी है कि पुरुष वर्ग ही ज़्यादा सांप्रदायिक चिंताओं से ग्रस्त है । स्त्री हमेशा इसका विरोध करती रहती है । यह तो सच्चाई है कि स्त्री को ही सांप्रदायिकता के दुष्परिणामों का फल भोगना पड़ता है । जब बच्चे भी इसके शिकार हो जाते हैं तब स्त्री मन ही ज़्यादा दुःखता है ।

---

[256] बी.एम. सुहरा- भ्रांत, पृ.73

अपने शरीर को बचाने एवं दूसरों को बचाने के लिए ऐसे अवसरों पर संघर्ष करती हुई महिलाओं को इन कहानियों के द्वारा लेखिकाओं ने पेश किया है ।

4.2.5 उग्रवाद या आतंकवाद का विरोध

क्षेत्रीय, राष्ट्रीय, सीमापारीय, महाद्वीपीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय आतंकवाद मानवता के सामने सबसे बडी चुनौती बन गया है । यह आतंकवाद युक्त कार्यशैली, प्रभाव, क्षमता, कार्यक्षेत्र, संसाधन, नेतृत्व चरित्र, विचारधारा व लक्ष्य एवं समर्थन, दायरा जैसे कारकों पर निर्भर है । भारत में आतंकवाद की त्रासद स्थिति 1984 में प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी की नृशंस हत्या तथा 1991 में उनके पुत्र व पूर्वप्रधानमन्त्री राजीव गाँधी की लिट्टे (LTTE) मानवबम द्वारा उडाए जाने की घटनायें स्पष्ट करती है ।

अरबवासी आतंकवादी अमरीका और यूरोपीय देशों की ही पैदाइश है । साम्यवाद के विरोध में अमरीका ने ही मुजाहिदीन, तालिबान और ओसामा बिन लादेन को पैदा किया था । रामशरण जोशी के अनुसार "आतंकवाद की शक्ल में दृश्य-अदृश्य छाया युद्धों का अन्तहीन सिलसिला चल पड़ा है । आज संपूर्ण मानवता आतंकवाद से त्रस्त है । यह नस्ली, मज़हबी और सांस्कृतिक वर्चस्ववादी तरीके से समाज को आलोडित कर रहा है और समाज की सृजनात्मक ऊर्जा को चकनाचूर कर रहा है ।"[257] इस प्रकार संपूर्ण मानवता आतंकवादी परिवेश से परेशान है । उग्रवादियों या आतंकवादियों के क्रीड़ास्थल के रूप अपने राष्ट्र राज्य को तबदील न करने के लिए स्त्रियाँ आज प्रतिरोध को आजमा रही हैं । समकालीन कहानी की नायिकाएँ हर प्रकार के

---

[257] रामशरण जोशी- सांस्कृतिक विरासत (आतंकवाद और हम), पृ.107

आतंकवाद से मुक्त एक परिवेश का निर्माण करने के लिए संघर्षरत है साथ ही एक नये विश्व का सपना देख रही है ।

मलयालम की लेखिका सी एस चन्द्रिका की कहानी है 'भूमियुडे पाताका' । अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पनपते आतंकवादी माहौल से परेशान है अमेरिका में रहनेवाली कातरीना । अमेरिका द्वारा इराक पर आक्रमण देखकर वह अपने घर के सामने भूमि का झंण्डा लादती है, अमेरिका की नहीं । झंडा लादकर वह कहती है "मिस्टर बुष, हम स्त्रियों को शांति चाहिए, युद्ध नहीं । इराक की मेरी बहनों एवं बच्चों के लिए मैं यह झंडा लहराती हूँ ।" उसके मन में युद्ध से मुक्त एक दुनिया की चाह है । सारी मानवता को शांति दिलवाने वाला एक माहौल वह चाहती है । आतंकवाद को बढ़ावा देनेवाले अपने राष्ट्र एवं प्रशासन ही क्यों न हो उसके खिलाफ आवाज उठाने की ताकत उसमें है । सामाजिक अत्याचार के रूप में आतंकवाद भी स्त्री जीवन को ही अधिक प्रभावित करता है ।

निष्कर्ष

युगों से प्रताडित एवं घर की चारदीवारी में सीमित जिन्दगी बिताने के लिए मजबूर स्त्रियाँ आज यह समझने लगी है कि सही मायने में स्वतंत्रता हासिल करने के लिए आर्थिक स्वतंत्रता की भी सख्त ज़रूरत है । आर्थिक क्षेत्र में पुरुष और स्त्री के समान अधिकार का प्रावधान कानून द्वारा लागू करने के बावजूद इस क्षेत्र में स्त्री की स्थिति आज भी बेहतर नहीं है । आज की शिक्षा प्राप्त स्त्रियाँ घर की भूमिका को लाँघकर बाहर के क्षेत्र में अपनी पूर्ण क्षमता और योग्यता के साथ कार्य करने लगी है । इसके तहत् वे पुरुषवर्चस्ववादी समाज के अत्याचारों से मुक्ति चाहती हैं । अपनी स्थिति में सुधार लाने की उनकी इस पहल में उनके सामने कुछ नई समस्याएँ भी पैदा हुई है । नौकरीपेशा स्त्रियों के साथ सड़क बस एवं आफिस में कामुक इशारेबाजी अपमानजनक भाषा एवं शारीरिक हमले भी बढ गये हैं । अंतर्विरोधों में जीकर, मौलिक ढंग से हल करने की उसकी क्षमता, इन विपरीत परिस्थितियों में स्वयं को बचाने एवं आगे बढ़ने का रास्ता दिखाती है । समकालीन हिन्दी-मलयालम लेखिकाओं ने अपनी कहानियों के ज़रिए, पुरुष केन्द्रित अर्थव्यवस्था में अपने लिए जगह बनाने की कोशिश करती नारियों के चरित्र को अंकित किया है । राजनीति में स्त्रियों को 33 प्रतिशत आरक्षण कानून द्वारा दिलवाने पर भी इस क्षेत्र में स्त्रियों का प्रवेश बहुत कम ही हुआ है । इस क्षेत्र में स्त्रियों के प्रवेश से नारी के प्रति हो रहे अत्याचारों पर सख्त कारवाई होने की संभावना को आज की लेखिकाएँ पहचान चुकी है । साथ ही स्त्रियाँ सांप्रदायिकता एवं उग्रवाद के विष को पहचान लेती हैं । इसलिए उन्होंने एक सजग नागरिक बनकर सत्ता एवं कानून की छद्म मानसिकता पर कुठाराघात करनेवाली स्त्री पात्रों का निर्माण किया है । इसके साथ समाज में स्त्रियों को सचेत बनाने की कोशिश भी हुई है । वे स्वस्थ एवं शांत वातावरण के निर्माण के लिए प्रयत्नरत है ।

पाँचवाँ अध्याय

समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला कहानियों में स्त्री - प्रतिरोध : पर्यावरण संकट एवं अन्य हाशिएकृतों के संदर्भ में

समाज की प्रतिबद्ध इकाई है स्त्री । समकालीन संदर्भ में समाज में सकारात्मक बदलाव लाने के लिए वह प्रयत्नरत है । आत्मबल से युक्त विवेक संपन्न स्त्री अपनी मेधावी व्यक्तित्व को समझने लगी है । यदि स्त्री नेतृत्व में आ जाए तो समाज की बहुत सारी समस्याओं का निवारण

संभव हो पायेगा। अपने इस सपने को साकार करने हेतु वह सामाजिक विषयों में हस्तक्षेप करना अनिवार्य मानती है।

स्त्री स्वभाव की बहुत बड़ी विशेषता होती है उसमें विद्यमान पोषण तत्व विद्यमान है। यह सिर्फ अपने परिवार तक सीमित न होकर पूरे संसार के लिए है। वह अपने दर्द के साथ सब का दर्द महसूस करती है। उसकी पीड़ा में सबकी पीड़ा शामिल है। इसलिए स्त्री मात्र अपने को शोषण से मुक्त करने के लिए प्रतिरोध न करके सभी सामाजिक शोषण का प्रतिरोध करती है "स्त्रियाँ समाज की एक ऐसी इकाई होती है जिनका अपना निजी स्वार्थ नहीं होता। इसे जैविक संरचना कहिए या फिर सामाजिक संरचना, सच तो यह है कि स्त्रियाँ अपने साथ पूरे समाज को लेकर चलती है।"[258] यानि कि उसके इस संघर्ष में समाज के निचले तबके के वंचित जैसे दलित हो, आदिवासी हो सब शामिल हो जाते हैं। वह पर्यावरण संकट पर भी अपना विचार व्यक्त कर रही है। हाशिएकृतों को संविधान ने तो समानता का हक दिया है लेकिन वह सिर्फ शाब्दिक ही रह गया है। आज भी सामाजिक

व्यवहार में उसके साथ असमानता बनी हुई है। इसलिए स्त्री की मुक्ति में सब की मुक्ति है, इस तथ्य पर ज़ोर देना ही होगा।

समकालीन लेखिकाएँ समाज में अपने दायित्वों का निर्वहण करने के लिए कटिबद्ध हैं। वे अपनी इस दुनिया में सबको समा लेने की जद्दोजहद में है। वे अपनी रचनाओं के ज़रिए सत्य की खोज करती है। उसके निवारण हेतु रचना भी करती है। उनकी ईमानदारी से युक्त लेखन मानव समाज के लिए विशेषकर हाशिएकृत लोग एवं पर्यावरण के लिए मिसाल बन गया है। इस संदर्भ में अनामिका का कहना है "आधुनिक स्त्री-लेखन आत्मविश्लेषणात्मक है, और उसके 'मैं' का विस्तार

[258] मृणाल पाण्डेय- पृ.12

इतना बढ़ गया है कि "सारी दुनिया" समा गई है उसमें ।"[259] मतलब यह है कि उनका लेखन मानवीयता से ओतप्रोत है । उनके लिए मनुष्यता ही सबसे बडा मूल्य है । किसी के संकट को समझना मानवता की पहली शर्त है । उनकी रचनाओं में स्थानीय विशेषताओं की ओर लौटना, उन्हें जागृत करना, उनकी रुचियों, भाषाओं और व्यवहार की विविधताओं को बनाए रखने की इच्छा ज़ोरों पर है । रचना की यह प्रतिरोधात्मकता समकालीन समय की मांग है ।

समकालीन हिन्दी-मलयालम लेखिकाएँ अपनी कहानियों के ज़रिए इस मुहिम को लेकर चल रही है । वे अपनी कहानियों में स्त्री के एक सबलीकृत इनसान की छवि पेश करती हैं । विविधता को बनाए रखने का रचनात्मक सुझाव समकालीन कहानी का प्रतिरोध है । इसलिए इनकी कहानियों में स्त्री जीवन के अलावा दलित जीवन, आदिवासी जीवन, लोकजीवन, पारिस्थितिक सजगता जैसी कई प्रवृत्तियाँ बडे पैमाने पर प्रकट हैं । स्त्री कहानी चाहे किसी भी मुद्दे को लेकर लिखी गयी हो प्रतिरोध कहानी से स्वयमेव निकल कर पाठक के हृदय में स्थान बना लेता है । ऐसा लगता है कि दुनिया का स्वर उनके स्वर के साथ घुलमिल गया है ।

5.1 पर्यावरण संकट

प्रकृति और मनुष्य का संबन्ध अतिप्राचीन है । प्रकृति हमेशा से मनुष्य को उसकी ओर आकर्षित करती आ रही है । उसका मनुष्य के भावजगत के संरक्षण और विकास में हमेशा एक महत्वपूर्ण योगदान रहा है । प्रकृति मनुष्य के लिए चुनौती और प्रेरणा एक-साथ दोनों है । मानव और प्रकृति के संबन्ध के इतिहास से यह बोध होता है कि दोनों का शुरू से ही व्यापक तादात्म्य रहा है । प्रकृति और मनुष्य के संबन्ध पर बात करते हुए यह उल्लेख करना प्रासंगिक है "प्राणी

---

[259] अनामिका- मन मांझने की ज़रुरत, पृ.41

जगत् के विकास की तर्कपूर्ण व्याख्या पहली बार डारविन ने विस्तार से किया। डारविन का 'सर्वाइवल ऑफ दि फिटेस्ट' का सिद्धांत आधुनिक जगत में बहुत लोकप्रिय हुआ। इस सिद्धांत के अनुसार, प्राकृतिक जगत् में मजबूत अपने से कमजोर को मिटा देता है। लेकिन डारविन के बाद के प्राकृतिक विज्ञान ने प्रकृति के ऐसे रूप भी देखे, जिनमें सहजीवी होने की प्रकृति ही प्रबल है, दूसरे को मिटाने की नहीं। उत्तर-डारविन विचारधारा मनुष्य और प्रकृति को एक दूसरे के सहयोगी के रूप में देखती है, प्रतिद्वंद्वी के रूप में नहीं।"[260] यह सहयोग एवं तादात्म्य ही दोनों के अस्तित्व के स्थायित्व का प्रमाण है।

पर्यावरण की चिन्ता के अन्तर्गत पूरा विश्व समाहित हो जाता है। मनुष्य प्रकृति का अंग होकर भी प्रकृति का अतिक्रमण करता है। वह अपने चारों तरफ के वातावरण को अपने अनुकूल बनाने के लिए प्रकृति का उपयोग एवं दुरुपयोग करता है। वह प्रकृति में तरह-तरह से काम कर प्रकृति को विकासशील मानव-जीवन के लिए अनुकूल बनाता है। उसने अपनी सुख-सुविधाएँ जुटाने के लिए कई वैज्ञानिक यंत्रों का आविष्कार किया। इनसे हमारे चारों ओर का वातावरण, विशेषतः हमारा पर्यावरण अवश्य प्रभावित हुआ है और इसका दुष्प्रभाव भी सामने आने लगा है।

मनुष्य ने खेती करने के लिए जंगल काटे, पशुओं को पालतू बनाया, घर बनाने के लिए जंगल को सपाट मैदान बना दिया, ऊर्जा प्राप्त करने के लिए अनेक नदियों की दिशा मोड दी और परमाणु भट्टियां बनायी। उसने धरती को खोदकर कोयले एवं हीरे की खानें बना ली और समुद्र के गर्भ से तेल कीमती पत्थर एवं खनिज़ पदार्थ प्राप्त किए। आजकल प्रकृति में हो रही सभी आपदाओं का कारण यह है कि पर्यावरण की गुणवत्ता बिगड़ गई है। यह प्रतिदिन बिगडती जा रही है। यही नहीं भयावह स्थिति यह है कि जीवन के लिए आवश्यक धरती जल और वायु की

---

[260] पूरन चन्द्र जोशी- अवधारणाओं का संकट, पृ.20

मात्राएँ पर्यावरण में कम होने लगी हैं। वन-सम्पदा छिनती जा रही है। धरती का उपजाऊपन कम होता जा रहा है। अनेक पशु-पक्षी लुप्त प्रायः होते जा रहे हैं। वायु की शुद्धता कम हो रही है। जल के स्रोत भी सुखते जा रहे हैं। इन सबके कारण बीमारियां बढ़ रही है।

स्त्री में वात्सल्य भावना इतनी भरी हुई है कि प्रकृति को भी वह इस वात्सल्य रस में संजोये रखती है। इस संदर्भ में अनामिका का कथन है "अपना संसार उन्होंने इतना बडा कर लिया है कि स्त्री-पुरुष संबन्ध उसके जीवन का केन्द्रीय सच रहा ही नहीं, वात्सल्य ही उनके जीवन का केन्द्रीय सच हो गया है - वात्सल्य भी सिर्फ अपने पेट के जाए के लिए सीमित नहीं रहा, उसके अंचल के साए में बने हुए, आत्मीय रिश्तों का पूरा संसार पल रहा है।"[261] सबको बराबर का अवसर, एवं मान-सम्मान दिलवाने का कार्य उसने अपने कंधों पर ले लिया है। इसीलिए किसी भी मूल्य पर वह पर्यावरण को बचाना चाहती है।

स्त्री के इस प्रतिरोध को समकालीन साहित्य की नई शाखा जिसे पारिस्थितिक स्त्रीवाद (eccofeminism) कहा जाता है उसके साथ जोड़कर देखने की आवश्यकता है। इको-फेमिनिज़्म इको और फेमिनिज़्म के योग से बना है। 'इकोलॉजी' पृथ्वी रूपी गृहसंबन्धी शास्त्र का प्रतिपादन करती है। 19वीं शती में प्रमुख पर्यावरणवादी एलन स्वार्ले नामक स्त्री ने घर एवं पर्यावरण के संबन्धों पर सबसे पहले विचार किया था। पारिस्थितिक स्त्रीवाद के संबन्ध में वनजा का कहना है "यह पारिस्थितिक स्त्रीवाद स्त्री और प्रकृति की पारस्परिकता को लेकर ही नहीं बल्कि उनके शोषण और अवमूल्यन को लेकर भी गहन चिंतन एवं उसका परिचिंतन करता है।"[262] यह शाखा स्त्री और प्रकृति को साथ रखकर अपना विचार प्रस्तुत करता है। स्त्री और प्रकृति के विमोचन द्वारा ही मानव-जीवन में संतुलन हो पाएगा। प्रेम पूर्वक आपस में मिलजुलकर रहने से संसार में

---

[261] अनामिका- मौसम बदलने की आहट, पृ.30

[262] के.वनजा- इको-फेमिनिज़्म, पृ.12

शांति और समाधान बना रहेगा। इससे संसार का भला होगा। स्त्रियाँ इस मुहिम को आगे बढ़ाने में कार्यरत है।

प्रकृति के विनाश के बारे में वर्तमान लेखिकाओं ने गंभीरता से सोचा है। बदलती हुई परिस्थितियों ने उन्हें जागरूक बनाया है। समकालीन हिन्दी और मलयालम की लेखिकाएँ अपनी लेखनी के ज़रिए यह प्रयास कर रही हैं कि किसी-न-किसी तरह अपने पर्यावरण को साफ-सुथरा और बेहतर बनाकर रखें । वे अपने प्रदेश में हो रहे पर्यावरण प्रदूषण के प्रति सचेत रहने के साथ साथ विश्व के प्रति भी चिंतित हैं।वे अपनी कहानियों में इन प्रदूषण के बुनियादी कारणों पर गहराई से चिंतन-मनन कर रही हैं साथ ही उनसे बचाव के रास्ते तलाशने मेंलगी हैं।

5.1.1 जीव-जन्तुओं का बचाव

आज जीव-जन्तुओं के साथ मनुष्य का आत्मीय संबन्ध खोता जा रहा है। आज की पूँजीवादी, उपभोक्तावादी बाज़ारवादी संस्कृति में जीव-जन्तुओं का बेहिसाब शोषण हो रहा है। मनुष्य अपने स्वार्थलाभ के लिए इनके हद से ज़्यादा उपयोग कर रहा है। इस उपभोक्तावादी संस्कृति ने मनुष्य से उनके प्रति आत्मीय भावनाओं को छीन लिया है। समकालीन हिन्दी और मलयालम की लेखिकाओं ने इस सच्चाई का उद्घाटन किया है।

पंखुरी सिन्हा की 'तीर्थ, अर्थशास्त्र और ईश्वर' कहानी इस समस्या की ओर इशारा करती है। इसमें 'मुक्ति' नाम की लडकी जीव-जन्तुओं पर मानव द्वारा किए जा रहे शोषण के प्रति चिंतित है। कहानी में एक तीर्थस्थान को दिखाया गया है। तीर्थयात्रियों को मन्दिर की ऊँचाई तक पहूँचने के लिए घुडसवारी की ज़रूरत थी। एक नहीं दिन में कई बार आदमियों को ढ़ोने एवं मन्दिर के चक्कर काटने के लिए घोडे मजबूर हैं। इन जानवरों को आवश्यक चारापानी तक न देकर मनुष्य उनसे बेजोड़ काम करवाते हैं। इस अमानवीय व्यवहार को देखकर मुक्ति मन ही मन सोचती है "जाने कब से हो सकता है अपने लड़कपन से, ये घोड़े तीर्थयात्रियों को उनके इष्ट के निकट पहुँचाकर

और स्वयं इस पवित्र मार्ग के इतने चक्कर काटकर इन घोड़ों ने इतना पुण्य ही नहीं इकट्ठा किया कि आदमी की गुलामी से आज़ाद हो सके ? कि घने जंगलों में विलुप्त हो जाएँ और आदमी के ढूँढने कि तक न

मिलें ।"[263] मुक्ति के मन में उन मासूम, आवाज़हीन जानवरों के प्रति दया जाग उठती है ।

मधु कांकरिया की कहानी भी इस तथ्य की ओर इशारा करती है । इसमें कुलदीप अपनी दीदी से कहती है "जानती हैं दीदी, मेरा ग्वाला कह रहा था कि पहले हमारे बड़के गाय के सिर्फ तीन थन ही दोहते थे.... चौथा थन छोड़ देते थे बछड़े के लिए... और देखो आज हम गाय को इंजेक्शन दे-देकर दूध की एक बूँद भी नहीं छोड़ते... ।"[264] कुलदीप भी इन मासूम जानवरों के प्रति चिंतित है, जिन्हें मनुष्य पैसों के लिए स्वार्थलाभ के लिए अधिकाधिक उपयोग करता है । मलयालम की लेखिका सी.एस. चन्द्रिका की कहानी 'कांजीपुरम' में तारा और देवी दोनों मिलकर कांजीपुरम के सेमल प्रदर्शन कक्ष में जाती है । वहाँ पर बिछी हुई साड़ी पर तड़पते रेश्मी कोड़ों की याद आती है । उस साड़ी में वह उनके जीवन का कंपन महसूसने लगती है । इसलिए वह अपना हाथ तेज़ी से वापस लेती है । उस समय तारा सिलिंगजी को कोसती है । साथ ही उस दिन को वह नफरत करने लगती है जिस दिन सिलिंग्जी की गरम चाय में एक कोक्कून गिर पड़ा था । उस दिन कोक्कून ने जिस रहस्य का उत्घाटन किया था तब से शुरू हुई थी मानव द्वारा उनके शोषण की परंपरा । बी.सी. 2640 में चीन के तीसरा चक्रवर्ती हुयानसांग को सिलिंग्जी की चौदह साल की पत्नी ने एक ओढ़नी उपहार स्वरूप भेंट दिया था । उस ओढ़नी से तारा नफरत करती है क्योंकि उसके लिए हज़ारों कोक्कूनों को अपनी जान त्यागना पडा था । इस प्रकार चन्द्रिका ने

---

[263] पंखुरी सिन्हा- किस्सा-ए कोहनूर, पृ.90
[264] मधु कांकरिया- बीतते हुए, पृ.119

एक ऐसी नारी पात्र का निर्माण किया है, जो इन मासूमों पर हो रहे अत्याचारों के प्रति सचेत है ।

आज मानव इतना सुस्त हो गया है कि काँटे से मछली पकड़ने एवं जाल बिछाने के लिए उनके पास वक्त नहीं बचे हैं । मलयालम की लेखिका सितारा एस. की 'भूमियुडे अवकाशिकल' (भूमि के हकदार) कहानी में आलसी चन्द्रन मछली पकड़ने का काम जल्द-से-जल्द निपटाने के लिए एक उपाय ढूँढ निकालता है । रात में वह मिट्टी से बने तटबंध पर छोटा-सा द्वार डालता है, ताकि खेत का पानी बहकर नज़दीक की नदी में जा मिले । ऐसा करने से गीली मिट्टी में फसकर मछलियाँ बिना हिले-डुले साँस लेने के लिए तक तड़पती रह जायेंगी । इस गीली मिट्टी एवं दलदल में बढनेवाले पौधों को भी वह काट लेता है । इस कुकर्म से मछलियों का मात्र नुक्सान नहीं होता, उनके अण्डे, छोटे-छोटे मेढ़कें, हमारी नज़रों से परे अन्य अनेक सूक्ष्म जल जीवियाँ, जल-सस्य आदि के नाश हो जाते हैं । यहाँ तक कि पूरी आवासव्यवस्था तितर-बितर हो जाती है । दलदल में बढ़नेवाले पौधों को काटने से पानी के साथ मिट्टी भी बह जाती है । स्कूल में इन सबके बारे में ज्ञान प्राप्त दो विवेक संपन्न लड़कियाँ, चन्द्रन की इस अमानवीय प्रवृत्ति पर प्रतिरोध जताती है । पहली लड़की ने कहा "आज असम्ब्ली में टीचर ने हमसे कहा कि दलदल में बढ़नेवाले पौधों को न काटें ।" दूसरी ने कहा "टीचर ने बताया कि तुम्हारे गाँव में अगर इन पौधों को कोई भी काटते हुए देखें तो उन्हें जागरूक बनाओ । ऐसा करने से पर्यावरण का संतुलन बिगड़ जायेगा ।"[265] मतलब यह है कि स्वार्थी मानव अपनी इच्छा के अनुकूल प्रकृति का शोषण करता रहता है । अपनी आवश्यकता के अनुसार वह प्रकृति का उपयोग तो कर सकता है, लेकिन उसके दुरुपयोग करने से पहले मानव को यह सोचना चाहिए कि भूमि का हकदार सिर्फ वह नहीं है भूमि में रहते अन्य

---

[265] सितारा एस. - सितारा की कहानियाँ, पृ.217

जीव-जन्तुओं का भी उस पर समान हक होते हैं। लेखिका पर्यावरण संकट की भीषण परिस्थितियों से मानव को अवगत कराने की कोशिश करती है।

पंखुरी सिन्हा की 'दूर देश में पुराना समय' कहानी में इस समस्या को गंभीरता से उठाया गया है। इसमें कथावाचिका विदेश में काम करती है। वहाँ पास के शहर में 'कंट्री म्यूज़िक' के किसी नामी गायक के 'शो' में भाग लेने के लिए वह दोस्तों के साथ निकलती है। उनकी गाड़ी शहर की सीमा पार कर हाइवे पर पहुँच जाती है। वहाँ पर पुलिस की निरीक्षक गाडियाँ थीं और उनके द्वारा चलान भी काटे जा रहे थे। फिर भी वहाँ से गाडियाँ 100 मील प्रति घंटे की रफ्तार से गुज़रती रहीं। गाड़ी की खिड़कियों से बाहर नज़र डालने पर उसे एक हिरण का क्षत विक्षत शव दिखाई पडा। पूछताछ करने पर पता चलता है कि वहाँ हिरणों की आबादी बहुत अधिक है। साथ ही उनका शिकार करना मना गया है । इसलिए हिरण सड़क के दोनों ओर फैले हुए जंगलों से निकलकर, सड़क पार करते हुए या इधर-उधर भागते हुए गाड़ी के नीचे आकर मर जाते हैं। इस तरह की बनावटी कारणों को वे लोग उसके सामने पेश करते हैं। वह सोचती है कि ऐसी जगहों पर तो गाड़ी को धीरे से चलाने की ज़रूरत है लेकिन इन मासूम जानवरों के मरने या न मरने से गाड़ीवाले और गांववालों का कोई फरक नहीं पड़ता। रात के अंधेरे में जब गाडियाँ वहाँ से तेज़ निकलती है तो इन मासूमों की गाडी के नीचे पड़ना आम बात ही है।

यह कहानी वर्तमान माहौल में नष्ट होते मूल्यों की ओर पाठकों का ध्यान खींचती है। इस तरह बड़ी तादाद में हिरणों का बरबाद होना आगामी पारिस्थितिक संकट पर गंभीरता से विचार करने के लिए उसे मजबूर कर देती है। इन जानवरों के बचाव हेतु अनिवार्य कदम उठाने के बदले उन्हें सुनियोजित ढंग से मारकर खाने के काम में लाए जाने की बात दोस्तों के मुँह से सुनकर कथावाचिका को दुख होता है। उनका खून खौल उठता है। वह इस बात को लेकर उन लोगों से बहस करती है "हिरणों की आबादी सीमा में रहे ताकि

आदमी की आबादी फैलती रहे? ताकि आदमी और जंगल काटता रहे? और हिरणों के मरने का मतलब भी किसके लिए हो? आदमी के लिए । आदमी को क्या हक है कि वह ऐसे खूबसूरत जानवर को अपनी खाद्य सामग्री बना ले ।"[266] मतलब है कि आदमी यह नहीं सोचता है कि बड़ी तादाद में जंगलों की कटाई से इन जंगली जानवरों का वासस्थान नष्ट हो जाता है । इसलिए वे वहाँ से बाहर आने के लिए मजबूर हो जाता है । हिरणों के क्षत-विक्षत विकृत लाशों के बारे में दोस्तों की सड़ी गली मान्यताएँ उसे सताने लगती है । इन अमानवीय, विकृत करतूतों पर गंभीरता से विचार कर अपने प्रतिरोध को सही दिशा देने में लेखिका सिद्धहस्त हुई है ।

इस प्रश्न की ओर संकेत करती है मलयालम की लेखिका कय्युम्मु की कहानी 'ओरमयुड़े पच्चत्तुरुत्तिलूडे' (हरी-भरी यादों से गुज़रते हुए) । कहानी की नारी पात्र एक लेखिका है । वर्तमान दौर में लेखिका, चारों ओर से पृथ्वी पर प्रहार करने वाले मनुष्य के बुरे व्यवहार के प्रति चिंतित है । वह यह महसूस करती है कि उसके बचपन में हरी भरी रही पृथ्वी का चेहरा आज बदल गया है । उसके बचपन की प्रकृति से भिन्न आज की में आये बदलाव उसे बेचैन करता है । बचपन में गाँव में जो तालाब और उसमें जो मछलियाँ थीं आज सब लुप्त हो गयी है । वह याद करती है "बहुत साल पहले तालाब की सीढियों पर बैठकर पानी में देखते वक्त एक के पीछे एक होकर तैर रही छोटी-छोटी मछलियाँ दिखती थीं । कभी-कभी बडी-बडी मछलियों को भी देखा जा सकता था । उस सुन्दर नज़ारे का आनन्द लेने के लिए आज तालाब और सीढियाँ नहीं बची हैं ।" पुरानी स्मृतियाँ तथा आज की भयावह स्थितियाँ कथावाचिका के मन को कचोटने लगती है ।

कहानी में लेखिका के घर के पास एक कसाईघर है । वहाँ से सुबह चार बजे गायों की आवाज़ सुनाई पड़ती हैं । उसे लगता है कि ये उनके जीवन खत्म करने आये कासाइयों को देखकर अपनी जीवन रक्षा हेतु कराह रही हैं । यह सोचकर उसका मन चूर-चूर हो जाता है । वह सोचती

---

[266] पंखुरी सिन्हा- किस्सा-ए-कोहनूर, पृ.91

है कि आज उसके सामने कोई पेड़ नहीं, पंछी एवं फूल नहीं, उसके हाथ में सिर्फ कागज़ और कलम बचे हैं । वह इन औजारों को लेकर आज की इस दुरवस्था के विरोध में अपना मत दर्ज करने की कोशिश करती है । कहानीकार ने आज की इन प्रतिकूल अवस्थाओं में उभरकर आ रही गंभीर समस्याओं से पाठकों को अवगत कराने की कोशिश की है । उन्होंने कहानी में लेखन को प्रतिरोध के सशक्त हथियार के रूप में अपनाया है । अतः ज़ाहिर है कि समकालीन हिन्दी और मलयालम की लेखिकाएं जीव-जन्तुओं के अस्तित्व को लेकर चिंतित हैं । उनके अस्तित्व को बनाये रखने के लिए मानव को सजग बनाने का काम वे अपनी कहानियों के माध्यम से कर रही हैं ।

5.1.2 नदी का बचाव

आज का मानव उपभोक्तावादी संस्कृति के आकर्षण में फँस गया है । उसके प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुन्ध दोहन ने प्रकृति को संकट के कगार पर ला खड़ा कर दिया है । बाज़ारीकरण को बढ़ावा देनेवाली बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने हमारे पेड़-पौधे, मिट्टी, नदी आदि को अपने कब्जे में कर लिया है । हमारे देश की समृद्धि इन प्राकृतिक संसाधनों में परिलक्षित है, जो धीरे-धीरे नष्टप्राय होती जा रही है । इन प्राकृतिक चीज़ों की नैसर्गिक अस्तित्व आज खतरे में पड़ गया है । अत्यधिक स्वार्थी मनुष्य के मन में प्रकृति और पर्यावरण के प्रति चिंता न के बराबर है ।

नदियों को प्रदूषित करना एवं उसका अंधाधुन्ध दोहन आज की सच्चाई है । इस पर ज़ोरदार ढंग से विरोध प्रकट कर रही है समकालीन हिन्दी और मलयालम की लेखिकाएँ । क्षमा शर्मा की ‘ईको फ्रेंडली’ कहानी की नायिका नीना जर्नलिस्ट है । औरतें, बच्चे एवं एनवॉयरमेंट उनके पसंदीदा विषय हैं । वह नदी के पानी को प्रदूषित करनेवाले कारकों को लेकर सर्वे चलाती है और उस पर एक रिपोर्ट भी लिखती है । इससे कुपित एक रेप्यूटड कंपनी का मालिक नीना को अपने काबिन में बुलाता है । वह नीना से पूछता है "एक अच्छा-खासा नाला बन गयी यमुना को कैसे साफ किया जा सकता है?" वह उत्तर देती है ""क्यों नहीं सर.... यदि टेम्स को साफ किया जा सकता है तो

यमुना को क्यों नहीं? मगर बीच में पैसे खाने वाले बहुत हैं। जितना भी कचरा है, चाहे पूजा के फूल हो या तरह-तरह के शैम्पू, डिटर्जेंट सबके सब नदी को बर्बाद कर रहे हैं।"[267] वह बहुराष्ट्रीय कंपनियों की कूटनीतियों पर प्रश्न चिह्न लगाती है। उसकी इस तरह की सूझ-बूझ एवं आदमियों को जागृत करने के काम से इन कंपनियों का मुनाफा घट जाएगा। इसलिए मुनाफा भोगी बाज़ारवादी ताकतें उसके प्रयत्नों पर रोक लगाने की कोशिश करती हैं। अगर नीना शैम्पू और डिटर्जेंट के खिलाफ लिखती रही तो उनका नुकसान होने की संभावना है। इसलिए कंपनी का मालिक उसे बुलाकर धमकियाँ देता है। लेकिन नीना हार माननेवाली नहीं थी। चाहे कुछ भी हो जाए वह पीछे हटनेवालों में नहीं थी। वह नदी के पानी को बचाने की ठान लेती है।आज मानव नदी की गहराईयों में से मिट्टी निकालकर मकान बनाता है। हद से ज़्यादा नदी से मिट्टी निकालने से बाढ़ आने की संभावना है। प्रस्तुत कहानी प्रकृति के अंधाधुन्ध दोहन के प्रति जन जागृति की माँग पेश करती है। मलयालम की लेखिका श्रीकुमारी रामचन्द्रन की कहानी 'ओरु पुतिय तलमुरा' (एक नई पीढ़ी) में इस पर्यावरण ध्वंस के जीवन्त दृश्यों का अनावरण हुआ है। गाँव में बाढ आने पर वहाँ के छोटे बच्चे प्रकृति को दोषी ठहराते है। वे प्रकृति को भला-बुरा कहते हैं। यह सुनकर गाँव का एक बुज़ुर्ग बच्चों को समझाता है कि उसमें प्रकृति का कोई दोष नहीं। यह आपदा मनुष्य की करतूतों का फल है। उन्हें यह भोगना ही पड़ेगा। नदी की गहराइयों में जो मिट्टी पडी है उसे मानव सिर्फ अपने लिए नहीं निकालते है और उस मिट्टी को दूसरी जगहों पर ले जाकर

बेचते हैं। इससे उस मासूम नदी को अपनी तह की ताकत नष्ट हो जाती है। जब पहाड़ में से बरसता पानी बहकर नदी में आता है तब नदी उस पानी को अपने में संजोने में असमर्थ हो जाती है। फलस्वरूप नदी में बहाव आ जाती है। ऐसे में नदी को दोषी ठहराना ठीक नहीं है। ऐसा इसलिए होता है कि मानव नदी के शोषण करने पर उतारू हो गया है। इस वजह से गर्मी में नदी सूख भी जाती है। बाद में पेड़-पौधे धराशायी हो जाते हैं।

---

[267] क्षमा शर्मा- लडकी जो देखती पलटकर, पृ.12

ये सारी बातें सुनकर श्रीकुट्टी, कात्तु आदि बच्चों के मन में नदी को बचाने की इच्छा बलवती होती है। नदी की इस बुरी हालत उनके बर्दाश्त के बाहर था। सारे बच्चे मिलकर मणियन कॉन्ट्रक्टर के पास जाकर कहते हैं "हम नदी की मिट्टी निकालने नहीं देंगे । ...पिछले बरसात में पानी के बहाव, नाणियम्मा के आम का पेड धराशायी होना एवं गर्मी में नदी तथा गाँव की बावुड़ियों का सूख जाना आदि शोषण का परिणाम ही है ।"[268] इतना कहकर बच्चे उन लोगों के सामने खड़े हो जाते हैं। लेखिका इस नयी पीढ़ी के ज़रिए प्रकृति प्रेम का आदर्श प्रस्तुत करती है। कहानी में कल की उदीयमान पीढ़ी को गाँव, ज़मीन एवं भूमि का संरक्षक बनाकर लेखिका ने खड़ा कर दिया है। शोषण करनेवाले मनुष्य के बुरे व्यवहारों पर बच्चों द्वारा प्रहार किया गया है।

मलयालम की लेखिका पी. वत्सला ने अपनी कहानी 'कयम' में इस तथ्य को आधार बनाया है। कहानी में एक बुजुर्ग महिला 'उम्मरत्तम्मा' काफी परेशान दिखती है, क्योंकि उसका कुकआँ सूख गया है और पानी में बाल्टी नहीं डूबती ।वह नदी में नहाने के लिए चली जाती है। तब यह देखकर खबरा जाती है कि नदी की गति रुकी हुई है। वह कहती है "नदी की गति रुकी हुई है। पानी से समृद्ध कुआँ ऐसे ही नहीं सूखता। गाँव दुर्जनों से भरा हुआ है।"[269] यह कहानी भी नदी के साथ हो रहे अत्याचारों की ओर इशारा करती है। वृद्धा के पानी का अन्वेषण मनुष्य के पानी का अन्वेषण है । भविष्य में मनुष्य को पानी के लिए किस प्रकार तरसना पडेगा इस ओर कहानी मानव का ध्यान खींचती है । प्रस्तुत कथन समाज के प्रति उनका प्रश्न ही है । चाहे कुआँ हो या नदी हो आज इनमें पानी ख़त्म होने लगा है । समकालीन पारिस्थितिक समस्या को वृद्धा के ज़रिए दर्ज किया गया है ।

5.1.3 पेड़-जंगल का बचाव

---

[268] श्रीकुमारी रामचंद्रन- ओरु पुतिय तलमुरा, पृ.49

[269] पी.वत्सला- मलयालम की सुवर्णकथाएँ, पृ.11

मकान बनाने के लिए मानव द्वारा पेड़ की कटाई आज बहुतायत में हो रही है। इससे पृथ्वी में ऑक्सीजन कम होती जा रही है। पृथ्वी का सुरक्षा कवच, आज़ोण पर इस वजह से द्वार पड़ने लगा है। क्षमा शर्मा की 'माँ' कहानी में तेज़ आँधी को झेल न सकने से एक कदम्ब का पेड़ जड़ समेत उखड़कर गिर पड़ता है। कथावाचिका बाज़ार में सब्जी खरीदने के लिए जाते वक्त रास्ता रोककर पड़ा हुआ उस पेड़ को देखती है। उसे लगा कि पेड़ अन्तिम साँस ले रहा है। उसे पेड़ को ऐसे ही छोड़कर जाने का मन नहीं होता । वह सोचती है कि सब को जीववायु प्रदान करनेवाला वह पेड़ मर रहा है लेकिन किसी को उसकी चिंता नहीं। लेकिन लेखिका उसको यों मरने देना नहीं चाहती, वह समझती है कि एक पेड़ को ऐसा कद्दावर बनने में दस साल से ज़्यादा लग जाता है। पेड़ को बचाने के लिए कई आदमियों से वह मदद माँगती है।

उसने एक बार पढ़ा था कि उखड़े पेड़ को काट-छाँटकर दुबारा लगाया जा सकता है। लेकिन लोग उसकी यह सोच को पागलपन कहते हैं। तब वह मन हीमन सोचती है "कोई मुझे पागल न समझे, तो क्या इसके लिए पेड़ को मर जाने दूँ... इसने न जाने कितनी ऑक्सिजन दी... कितने कार्बन को सोखा पता नहीं कितने पक्षियों का इस पर घर था कितने तोते इस पर आते-जाते बैठते थे। कितनी गिलहरियाँ इस पर धमा-चौकड़ी मचाती थीं। गिरगिट किसी बूढ़े की तरह अपनी गरदन लम्बी करके हिलाते थे। कितनी बुलबुले इस पर मीठे राग गाती थी...कितनी रंग-बिरंगी तितलियाँ इसका हाल-चाल पूछती थी... और यह आज अकाल मृत्यु तो... तो क्या इसे ऐसे ही खत्म हो जाने दूँ। कोई इसके किए अहसान को याद भी रखे तो भी क्या किसी जीते-जागते को हम यों ही मर जाने देंगे।"[270] मतलब जितना एहसान हम पर इस पेड़ ने किया है सबकुछ मानव भूल गया है। ऐसे उपयोगी वृक्ष को यों मरने देने के हमारा इकोतंत्र संकट में पड़ जाएगा।

---

[270] क्षमा शर्मा- लडकी जो देखती पलटकर, पृ.123

कथावाचिका को लगता है कि घर का कोई सदस्य दर्द से कराह रहा है । उस पेड़ को देखकर उसका मातृत्व जाग उठता है । एक स्त्री प्रकृति को सुरक्षित रखने के लिए एक नया कदम उठा रही है इस तथ्य को लेखिका ने दर्शाया है । 'बाख थेरेपी' से उस पेड़ को बचाने की संभावना है । इस थेरेपी की रेस्क्यू रेमेड़ी ढूँढ़कर पानी में दवा की कुछ बूँदें डालकर उस पानी से पेड़ की जड़ और ताना दोनों को वह भिगोती है, क्योंकि इस थेरेपी के हिसाब से पेड़ को जिन्दा रखने के लिए ऐसा करना ज़रूरी थी । उसने अपने खर्च से दो कामवालों को बुलाकर एक गड्ठा खुदवाकर, तने के निचले हिस्से को वहाँ पर रखवाती है । खाद से मिली मिट्टी से गड्ठा भरवाती है । बाद में रोज़ाना वह उस घायल पेड़ के पास जाकर दवा की बूँदें डालकर उसकी परवरिश करती है । सचमुच एक सुबह उसे तने के चारों ओर से हरे-हरे काँटे दिखाई पड़ता है । जल्द ही वे पत्ते बनने लगते हैं, यानि कि उसकी परवरिश से पेड़ की तबीयत ठीक हो जाती है । रोज वह पेड़ की हालचाल समझने के लिए उसके पास जाती है । उसके तने पर हाथ फेरने पर उसे ऐसा लगता है मानो अपने बच्चे के पीठ पर हाथ फेर रही है, यानि अपने बचेखुचे पेड़-जंगल को बचाना समाज का दायित्व ही है । इस प्रकार एक स्त्री पेड़ को बचाने में सफल हो जाती है । स्त्री में जो मातृत्व की भावना है वह केवल अपने बच्चों तक सीमित न रहकर उसमें सब को लेखिका ने एक गंभीर समस्या से उभर ने की कोशिश इस कहानी के ज़रिए दी है ।

शरद सिंह की कहानी 'किस-किसको कटवाओगे केशु' कहानी में इस तथ्य की झलक देखने को मिलती है । कथावाचिका के घर के पास एक नीम का पेड़ है । जिस पर हमेशा कौवें बैठकर काव-काव करते थे । यह उसके पति केशु को पसंद नहीं था । इसलिए वह पेड़ को काट डालना चाहता है । लेकिन कथावाचिका पति को रोकती है, क्योंकि नीम का पेड़ और कौवों की कांव-काव उसके व्यस्त जीवन को बनावटीपन से मुक्त करते थे । उसके जीवन में प्रकृति का अहसास भी दिलाता रहा । वह पेड़ उसकी संवेदनाओं को स्पंदन प्रदान कर जीने की प्रेरणा देता था । इसलिए कुछ भी हो जाए उस पेड़ को काटने की इज़ाज़त वह पति को नहीं देती ।

जया जादवानी की कहानी 'हिरण भाग रहा है' में कथावाचिका एक बच्ची है। उसके पिता जंगल में बने रेस्ट हाउस का मुजलिम है। वह अपने बचपन से लेकर बनते-बिगड़ते जंगलों को देखती रहती है। यह देखकर उसे बहुत दुःख भी होती है। वह समझने लगती है कि इन जंगलों को पार्क में तबदील करने पर उससे उनका अपनापन नष्ट हो जाता है। वह कहती है "यह बात कोई नहीं समझता कि जब हम किसी बेतरतीब जंगल को तरतीबवार काटछाँट कर सजाकर एक पार्क में तब्दील करते हैं तो दरअसल हम उस पर कोई एहसान नहीं करते, उसकी जंगली सुंदरता को नष्ट करते हैं।"[271] आज के स्वार्थ सुविधा भोगी मानव जंगलों को भी अपने उपयोग की वस्तु बना रहे हैं। प्राकृतिक सुन्दरता को नष्ट कर जीव-जन्तुओं को अपने अधीन रखकर स्वार्थ लाभ के लिए यों पार्क बनाया जाता है। कहानी मानव के कारनामों से प्रकृति पर पड़ी आफत को समझाने एवं उसके विरोध में खुलकर बोलने की क्षमता रखती है। पेड़ और जंगल के बिना मनुष्य जीवन असंभव हो जाएगा। इसलिए पुराणों में एक वृक्ष को दस पुत्रों के समान बताया गया है। लेकिन मानव इस गंभीर समस्या पर अधिक ध्यान नहीं देता। लेखिकाओं ने पेड़ और जंगल के प्रति अपने लगाव को कहानियों के ज़रिए उकेरा है।

5.2 दलित जीवन यथार्थ

समाज में दलितों का संकट एक ओर अर्थ से जुड़ा हुआ है तो दूसरी ओर हिन्दू धर्म के वर्णवाद पर आधारित जातिवाद की जीवित रूढ़ियों से जुड़ा हुआ है। भारतीय समाज मुख्यतः सामंतवाद और ब्राह्मणवाद पर आधारित है। इसके आधार पर वर्णव्यवस्था ने सदियों तक स्त्रियों और शूद्रों को ज्ञान से वंचित रखा। वह ज्ञानजो किसी भी व्यक्ति या समाज को विकास की प्रक्रिया से जोड़ता है। आज भी इस समस्या का हल नहीं हुआ है। दलित समाज का कोई भी युवक या युवति ज्ञान की परंपरा से जुड़कर सामाजिक विकास की प्रक्रिया में शामिल होकर आगे बढ़ना

---

[271] जया जादवानी- मुझे ही होना है बार-बार, पृ.56

चाहता है तो, समाज की केन्द्रीय धारा को संचालित करनेवाली ताकतें उसका विरोध करती है। ज्ञान के क्षेत्र में उनके साथ गुलाम की तरह व्यवहार किया जाता है। रोहित वेमुला और मुत्तुकृष्णन की आत्महत्याएं इसके ताज़ा उदाहरण हैं।

दलित शोषण और अपमान की कष्ट गाथा में दलित नारी के बलात्कार की कहानी हर पृष्ठ पर दर्ज है। दलित नारी का अपमान दलितों के गौरव को पददलित करने का सार्वजनिक बर्बर हथकंडा है। वह सवर्णों की लंपट दृष्टि की शिकार है। कभी कभी इन लोगों के द्वारा उसके कपडे उतार कर उसे खुले आम निर्वस्त्र कर दिया जाता है। उसे भूतनी समझकर हत्या कर दी जाती है। धर्म के नाम पर देवदासी बनाकर उसकी बलि चढ़ाई जाती है। जो दलित स्त्री पढ़ी-लिखी है, नौकरी करती है, कमाती है, वह भी पुरुषप्रधान और जातिप्रथा से जुडी अवहेलना से मुक्त नहीं है। उर्मिला पवार कहती है "पुरुषप्रधान संस्कृति के कारण दलित पुरुष से भी उसका दर्जा नीचा है। परिणामतः वर्णव्यवस्था के कारण आया हुआ दारिद्र्य, जाति के कारण मिला हीनता बोध और स्त्री होने के कारण मिला हुआ सबसे निचला स्थान, यह दलित स्त्री की पहचान है।"[272] यह दलित स्त्रियों का जीवन यथार्थ है। लेकिन आज दलित स्त्रियाँ इस शोषण के हथकंठों को समझने लगी हैं।

आज साहित्य, राजनीति, समाज सब जगह दलित विमर्श ज़ोरों पर है। दलितों ने कभी भी खुद को सवर्ण बनाने की कोशिश नहीं की है। वे दलित बनकर ही अपने उत्थान के लिए संघर्ष कर रहे हैं। दलितों में पहले मानसिक उत्थान संभव हुआ, बाद में उनमें राजनीतिक और सामाजिक उत्थान आये। फिर दलितों ने कॉलेज की राह पकड़ी। उन्होंने अपने वोट की ताकत को पहचान लिया। आज दलित समाज संवाद करने लगा है। आठवें और ठीक से नौवें दशक के प्रारंभ में मंडल

---

[272] उर्मिला पवार- औरत की कहानी (सं. सुधा अरोड़ा), पृ.39

कमीशन लागू होने के बाद वे केन्द्रीय धारा के साथ सीधे-संवाद करने लगे हैं। उनके इस संवाद में अपने होने का बोध सशक्त रूप में प्रकट है।

दलित साहित्य, साहित्य के केन्द्र में अपने वजूद लेकर आ रहा है। दलित अस्मिता के बहाने दलित लेखक उन रूढीवादी मान्यताओं का विरोध एवं गुलामी से मुक्ति की बातें करते हैं, जिन्हें जन्म के कारण उन्हें ढोना पडता हैं। जीवन की मुख्यधारा में हाशिए के समाज को स्थान देने के लिए समकालीन हिन्दी और मलयालम की लेखिकाएँ प्रयत्नरत है। वे उनकी मुश्किलों और तकलीफों को समझने एवं इसे दूर करने के लिए अपनी लेखनी चला रही है। वे इस बात पर ज़ोर दे रही है कि उनकी बात सुनी जाए, और भारतीय समाज दलित समाज को सकारात्मक नज़रिए से देखें।

5.2.1 दलित स्त्रियों का प्रतिरोध

दलित स्त्रियाँ समाज में तिहरे शोषण की शिकार होती है। आर्थिक शोषण, व भारतीय जाति व्यवस्था में निम्न जाति के होने से और सामाजिक दमन एवं सामन्ती मूल्य व्यवस्था के चलते घर के भीतर पुरुष दमन की शिकार भी होती हैं। उनकी सुरक्षा के लिए अनेक नियम बनाए गए हैं साथ ही कई संगठन उनकी उद्धार के लिए कर्यरत है। शिक्षा की कमी की वजह से ये लोग अपने अधिकारों को समझ भी नहीं पाते। इसलिए समकालीन हिन्दी-मलयालम महिला लेखिकाएँ अपनी कहानियों के जरिए उनकी शिक्षा की आवश्यकता पर ज़ोर दे रही है ताकि वे अपने अधिकारों को समझे और उनके लिए संघर्ष करें। लेखिकाओं की दलितों पर केन्द्रित कहानियाँ भारतीय समाज में दलित स्त्रियों की वास्तविक दशा पर केन्द्रित है।

5.2.1.1 परिवार में स्त्री

परिवार में अपने साथ हो रहे शोषण को दलित स्त्रियाँ समझने लगी है। अपनी इच्छा के विरुद्ध जो भी हो वह प्रतिरोध दर्ज करने लगी है। लेखिकाएँ ऐसी स्त्री पात्रों की सृष्टि भी की हैं। नीलम शंकर की कहानी है 'रामबाई' । माँ बाप की परिष्कृत सोच और कुछ अपनी सोच से रामबाई का व्यक्तित्व गढ़ा हुआ था। वह नान्ह जाति की थी। वह बहुत सुन्दर एवं मेहनती थी। उसको अपनी सुन्दरता की कीमत अपमान व उपेक्षा से चुकानी पड़ती है। उसके प्रति पुरुषों की निगाहें और हरकतों में कुछ और था, जिसे वह अपनी नियती मानकर अनदेखा करती थी। सभी लोग उसकी सुन्दरता को कोसती हैं। उनका विचार था कि रामबाई अपनी सुन्दरता से सबको अपनी ओर अकर्षित करके सारे पुरुषों की नीयत खराब करती है। उसके घरवाले परिष्कृत सोच के होने पर भी समाज के भय से बेटी की शादी पन्द्रह बरस होते ही पैंतीस बरस के अधबुढ़े से करवाते हैं। लेकिन उसके साथ जीना रामबाई के लिए दूबर हो जाता है। वहाँ निभ न सकी तो सोते वक्त पति को छोड़कर वह अपने गाँव आ जाती है। बाद में उससे प्यार करनेवाला गूँगा महंगू से शादी करती है। आगे की जिन्दगी अपनी इच्छा से जीने के लिए महंगू के साथ गाँव छोड़कर चली जाती है।

सुशीला टाकभौरे की 'दमदार' कहानी में एक कंजर जाति की महिला के चरित्र का पर्दाफाश किया है। तीन बच्चों की माँ होने पर भी वह दमदार थी। कंजर जाति के लोग बहुत ही निडर साहसी और ताकतवर होते हैं। लड़ाई-झगड़े, खून-खराबी से वे कभी नहीं डरते। अपने शूर वीर पति को भी वह अपने सामने कुछ नहीं समझती थी। वह बड़ी दबंग और हिम्मतवाली थी। उसका पति शराबी एवं छेड़छाड़ करनेवाला था। इसलिए सदा समय जेल में था। वह अपने एवं बच्चों के पेट पालने के लिए दूसरे आदमियों से संबन्ध रखने से भी नहीं चूकती।

मलयालम की लेखिका पी.के. भाग्यलक्ष्मी की कहानी 'कनलनोवुकल' में नायिका का पति शराबी है। पति और सास मिलकर उसपर अत्याचार करते हैं। जब वह गर्भवती होती है तब बच्चे की जाँच करवायी जाती है। लड़की होने की भनक लगने पर भ्रूण हत्या करवायी जाती है। इस

तनावपूर्ण स्थिति से बच निकलने के लिए वह आत्महत्या के बारे में सोचती है । बाद में वह पति की जानकारी के बिना एक बेटी को जन्म देती है । आगे अपनी बेटी को पालने एवं उसे पढाने के लिए नौकरी करने लगती है ।

उण्णिक्कोरन चट्टोपाध्याय कहानी में उण्णिक्कोरन दलित जाती का है । उसका जन्म होने ही पिता मर जाता है । उसकी माँ उण्णूली अपने दम पर बच्चे को पालती है । आगे उण्णिक्कोरन गाँव में शेड्यूल्ड कास्ट का पहला अध्यापक बनता है । इस प्रकार समकालीन हिन्दी और मलयालम की लेखिकाओं में ऐसे दलित स्त्रियों को अपनी कहानी में जगह दी है, जो अपने परिवार में हो रहे अत्याचार से मुक्त होने एवं अपने बच्चों को अकेले ही पालने का मन बना लेती हैं । समाज में अपने अस्तित्व को बनाकर रखने में वे जागरूक दिखायी पडती है ।

5.2.1.2 सत्ता के प्रति विद्रोह

दलित स्त्रियाँ गाँव के मुखिया, सरपंच आदि के जोर जबरदस्ती के शिकार होने के लिए मजबूर हैं । कहीं पर किसी भी वक्त दलितों के साथ अन्याय करना, वे अपना अधिकार समझते हैं । इसके खिलाफ कुछ बोलने की हिम्मत भी उन मासूम लोगों को नहीं थी । ये नामी लोग उनके मर्दों को लालच में फँसाकर या डरा-धमकाकर अपना उल्लू सीधा करते थे ।चित्रा मुद्गल की 'नाम' कहानी में एक ऐसी दलित औरत के चरित्र का पर्दाफाश किया गया है जो अपने साथ हुए अत्याचार का खुलासा करने को हिचकती नहीं । ठाकुर रिछपाल सिंह गाँव में रतिया डोम के साथ बलात्कार करता है । उस पाप की निशानी उसकी कोख में पलने लगती है । वह एक बेटे को जन्म देती है । वह अपने बेटे को शिक्षित करना चाहती है । इसलिए स्कूल में दाखिला करती है । स्कूल में बेटे का नाम देवेन्द्र प्रताप सिंह रखती है । यह सुनकर ठाकुर का खून खौल उठता है । रतिया के घर जाकर वह धमकियाँ देने लगता है । इससे रतिया तनिक भी डरती नहीं । वह ठाकुर से कहती है "बाबूडड, काहे पाँवों में गिर रहे हो लम्बरदार के । तनिक पूछो सरपंच

जी से, ठाकुर के बेटे का नाम मतऊ, दतऊ धरा जा सकता है, जो हम धर लें?...मार डारौं...

खिलादो, डर कर हम साँच के पर नहीं कतर सकते, मालिक। ठाकुर के बेटे का नाम ठाकुरों जैसा न धरें तो क्या डोम-चमारों वाला धर दें।"[273] वह सबके सामने इस रहस्य का खुलासा करती है। रतिया में अपने बेटे के हक के लिए लड़ने की हिम्मत भी है साथ ही स्त्रियों के प्रति सत्ताधारी लोगों के काले करतूतों पर प्रतिरोध की ताकत भी है।

मेहरुन्निसा परवेज़ की 'जगार' कहानी में नारी पात्र गोमती, हरिजन सरपंच बनती है। राजनीति में प्रवेश करते ही वह अपनी जाति के साथ हो रहे अत्याचारों को पहचानने लगती है और वह अपने अधिकारों को समझने लगती है। उसके सरपंच रहने पर एक नीच जात की युवति पर बलात्कार होता है। गाँव के प्रतिष्ठित लोगों ने ही उस युवति के साथ यह घटिया हरकत की थी। उन अत्याचारियों को सजा दिलवाने के लिए गाँव के सरपंच होने के नाते गोमती जल्द से जल्द प्रयास करती है। बरसों पहले उसके साथ भी बलात्कार हुआ था। तब उसको न्याय दिलवाने के लिए कोई नहीं था बलात्कार की शिकार युवति के पति से वह कहती है "इस बार तो हम ज़रूर आएँगे, हमारे जी में भी कल नहीं पड़ रहा है, न्याय तो होना ही है, आज रायती मरी, कल कोई ओर मरेगी।"[274] वह उस युवति को न्याय दिलवाने की कोशिश करती है। उन अत्याचारियों के डराने, धमकाने पर भी वह पीछे नहीं टडती। वह पूरी तरह अपने अधिकार का उपयोग करती है।

---

[273] चित्रा मुद्गल- लपटें, पृ.107

[274] मेहरुन्निसा परवेज़- समर, पृ.

चित्रा मुद्गल की 'पाठ' कहानी में वोट मिलने के लिए मात्र दिखावा करते सरकार की करतूतों पर प्रकाश डाला गया है। सरकार के गिरने के भय से स्वास्थ्य मंत्री आसपास के परिवेश को स्वच्छ रखने की हिदायत देने के लिए बच्चों की कक्षा में जाता है। जाते वक्त जनसेवक, पाठशाला के प्रत्येक विद्यार्थी को एक बट्टी नहाने का साबुन, कपड़ा धोने का साबुन, तौलिया आदि उपहार स्वरूप देता है। महीने भर के बाद जनसेवक मुआयने के लिए स्कूल आता है। तब भी उनके कपड़े मैले थे, उससे दुर्गन्ध छूट रही थी। कारण तलाशने पर उनकी माओं का कहना था "बट्टी अऊर अँगोछे के दाम सी दू रोज़ का पिसान आएगा।" उन गरीब लोगों के पास एक वक्त की रोटी खाने तक के लिए रुपया नहीं है, फिर वे साबुन खरीद के नहायेंगे कैसे। इसलिए बच्चों की माँएं जानसेवक द्वारा दिया गया सामान को बेचकर बच्चों के लिए रेशन लेती है, ताकि वे एक वक्त की रोटी भरपेट खा सकें। इन गरीबों की बदहालत में सुधार लाना इन नेताओं का उद्देश्य नहीं है। वह केवल दिखावे के लिए ही ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन करते हैं।

सुशीला टाकभौरे की कहानी 'सिलिया' की नारी पात्र सिलिया सांवली, सरल व गंभीर स्वभाववाली लड़की है। वह ग्यारहवीं कक्षा में पढ़ती है। एक दिन अखबार में एक विज्ञापन छापता है कि मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल के जाने माने युवा नेता सेठी जी समाज के सामने एक आदर्श रखने के लिए एक अछूत कन्या के साथ विवाह करना चाहता है। उसकी केवल एक शर्त थी कि लड़की कम से कम मेट्रिक पास हो। गाँव में इस जाति में केवल सिलिया ही मेट्रिक पास थी। इसलिए गाँववाले सिलिया की माँ को सलाह देते हैं कि इस शादी की बात को आगे बढाए । सिलिया की माँ यह पहचानती है कि यह सब समाज में ऊँचा दर्जा प्राप्त करने के लिए इन नेताओं का ठोंग है। इसलिए वह अपनी बेटी को परीक्षण की वस्तु नहीं बनाना चाहती। वह लोगों को अच्छी तरह समझाकर कहती है "नहीं भैय्या, यह सब बड़े लोगों के चोचले हैं। आज समाज को और सबको दिखाने के लिए हमारी बेटी से शादी कर लेंगे और कल छोड़ दिया तो....?

हम गरीब लोग उनका क्या कर लेंगे। अपने इज्ज़त अपने समाज में रहकर भी हो सकती है। उनकी दिखावे की चार दिन की इज्ज़त हमें नहीं चाहिए। हमारी बेटी उनके परिवार और समाज में वैसा मान-सम्मान नहीं पा सकेगी। न ही फिर हमारे घर की ही रह जायेगी। न इधर की न उधर की। हम से भी दूर कर दी जायेगी। हम तो नहीं देंगे अपनी बेटी को।"[275] इस तरह वह अपनी बेटी को इस ठोंगी नेताओं की भलाई के लिए बलिदान देना नहीं चाहती। इस शादी को वह साफ-साफ मना कर देती है। सिलिया इसके बारे में खुद सोचती है कि अब भी गाँव में अस्पृश्यता और छुआछूत बरकरार है। गाँव के इस हालत में बदलाव नहीं आया है। यह सब इन लोगों का ढोंग है बाह्याडंबर है। वास्तव में वे समाज की परंपरा को बदलने एवं सामाजिक बदलाव में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना नहीं चाहते। उसे अपनी जाति के अस्तित्व का प्रश्न कचोटने लगता है। वह सोचती है "और फिर दूसरों की दया पर सम्मान....? अपने निजत्व को खोकर दूसरों की शतरंज का मोहरा बनकर रह जाना... बैसाखियों पर चलते हुए जीना....? नहीं, कभी नहीं....। हम क्या इतने भी लाचार है, आत्मसम्मान रहित? हमारा अपना भी तो कुछ अहंभाव है। उन्हें हमारी ज़रूरत है, हमको उनकी ज़रूरत नहीं। हम उनके भरोसे क्यों रहें.... अपना सम्मान हम खुद बढ़ायेंगे...।"[276] सत्ताधीशों को वोट के लिए दलितों की ज़रूत हैं। इसीलिए वे लोग ऐसा ढोंग रच रहे हैं। लेकिन पिछड़े समझने वाले लोगों में भी अपने अस्तित्व एवं अस्मिता को लेकर जागृति प्रकट है इस तथ्य को कहानी रेखांकित करती है।

5.2.1.3 जाति संस्कृति का विरोध

सुशीला टाकभौरे की कहानी 'छौआ माँ' में छौआ माँ सवर्णों के घर में काम करती है खासकर वहाँ की स्त्रियों की जचकी उठाती है। यह धंधा वह उन बहु-बेटियों के प्रति उसका कर्तव्य

---

[275] सुशीला टाकभौरे- संघर्ष, पृ.44
[276] सुशीला टाकभौरे- संघर्ष, पृ.48

मानकर ही करती है। उन स्त्रियों को ऐसी तकलीफों से मुक्त कराने के लिए ही सिर्फ वही प्रस्तुत है। कभी-कभी डॉक्टर द्वारा घबरा जानेवाली जचगी उठाने के लिए उनको बुलाया जाता है। ममता, त्याग और परोपकार के भाव से ही वह यह काम करती है। इसपर वह गर्व भी महसूस करतीहै। उसकी बेटी को यह काम पसंद न था। वह माँ की इन बातों को दुत्कारती हुई कहती है "अपनो कैसा गाँव? गाँव का काम करने के लिए अपनो गाँव है और किस बात के लिए अपनो गाँव?... चुपचाप सब काम करते रहो.... सबसे डरते रहो... सबका दलिद्दर उठाते रहो तो अच्छा है, नहीं तो कौन पूछे अपन को? मैं नहीं करूं गाँव का काम, न मेरे मोडा मोड़ी करेंगे। हमें नहीं अच्छे लगे ये सब गन्दे काम, अपमान भरी इस नरक, ज़िन्दगी से बाहर निकलो, इनसान बनकर जीना सीखो।"[277] इस धंधे को आगे बढ़ाने से वह साफ-साफ इनकार कर देती है। नई पीढ़ी यह समझ गयी है कि यह काम से अगर छुटकारा नहीं मिला तो पीढी-दर-पीढी को इसे ढोना पड़ेगा।

छौआ माँ ने यह धंधा बेटी से नहीं करवाया। मन ही मन वह भी चाहती थी कि यह काम उसके साथ ही खत्म हो जाए। लेकिन एक दिन उसकी गैर हाज़िरी में गाँव वाले तुलसी से यह काम ज़बरदस्ती करवाते हैं। यह सुनकर छौआ माँ सदमे में आ जाती है। वह अपनी आपा खो बैठती है। उसकी बेटी के चरित्र पर इतना बड़ा लांछन वह सह नहीं पायी। उसे मालूम होता है कि इतने बदलाव के बावजूद गाँववाले समझते हैं कि गन्दगी उठाने का काम नीच जात को ही करना है। वे लोग कहते हैं कि माँ के बाद बेटी को ही दाईपन का काम करना होगा। उनके इस खटिया सोच को जानकर उसके मन में शोले भडकने लगता है। वह कहती है "मेरे ईमान धरम को यही ईनाम दिये है सबने?... गाँववाले ऐसी कहे है मेरी बेटी बामन बनिया की छोरी है। इनके मुंह में आग लग जाए, इनको शरम नहीं आये? मोहे पाप लगाये है.... इनको सत्यानाश हो... बड़े

---

[277] सुशीला टाकभौरे- संघर्ष, पृ.72

कहलाने वाले.... गाँव की गरीब बेबस लड़कियों और औरतों पर अत्याचार-बलात्कार करनेवाले ऊँची जात के कितने पापी पाखण्डियों को मैं जानू हूँ। ....बहुत करली मैंने तुम्हारी सेवा, अनहीं करूँगी। तुम मेरे नहीं तो मैं भी किसी की नहीं। तुम्हारे पाप धोते-धोते मैं पापन हो गई।"[278] छौआ माँ अपना काम छोड देती है। इस प्रतिरोध की कीमत उसे अपनी जान देकर चुकानी पड़ी।सुशीला टाकभौरे की कहानी 'बदला' में छौआ माँ भंगी जात की है। सवर्णों के घर के गूँ-मूत्र की सफाई ही उसका काम है। वह जानती थी कि गाँव-वाले छुआछूत-भेदभाव को मानते हैं फिर भी उसे पूरा विश्वास था कि पूरा गाँव उसकी इज्ज़त करता है। एक दिन छौआ माँ को गाँववाले गालियाँ देते हैं। यह सुनकर उसकी बेटी अपनी आक्रोश प्रकट करती है "इतनी बूढ़ी आदमन को तुम कैसी-कैसी कह रही हो?... तुमको शरम नहीं आई?.... काम के बखत तो बड़ी मीठी-मीठी बोलो हो, छौआ माँ और छौआ माँजी कहो हो, आज इतनी चढ़-उतर के बोल रही हो। कल को कोई बखत आन दो, मैं भी मेरी माँ को तुम्हारे घर नहीं जान दऊंगी। मैं भी देखूंगी, फिर कैसे होते हैं तुमरे काम? फिर नहीं कहना कि हम खराब हैं। आज कैसी बुरी-बुरी कह रही हो....?"[279] जाति-संस्कृति के खिलाफ वह आवाज़ उठाती है। आज दलित लोग समझने लगे हैं कि उन्हें भी समानता के अधिकार है और समाज में उनकी भी इज्ज़त होती है। पहले के समान गाँव को स्वच्छ रखने के लिए वे बाध्य नहीं है। बेइज्ज़ती का जीवन जीना भी अब उसे पसंद नहीं।

मलयालम की लेखिका के.आर. मल्लिका की कहानी है 'जातीयम्'। कहानी की नायिका प्रमीला के मन में एक सवाल उठती है कि समाज में एक तान्डार का जन्म कैसे होता है? क्योंकि प्रमीला तान्डार जाति की थी। समाज के द्वारा उस जातिवालों के प्रति होनेवाले अत्याचारों को वह पहचानती है। वह मानसिक रूप से अपने को ऊँचा दिखाने के लिए सवर्णों के जैसे कपड़े

---

[278] सुशीला टाकभौरे- संघर्ष, पृ.83-84
[279] सुशीला टाकभौरे- संघर्ष, पृ.48-49

पहनने लगती है। जाति भेद से बचने के लिए वह एक मुस्लिम युवक से प्रेम करती है और उससे शादी करना चाहती है। लेकिन उसका प्रेमी उसे छोड़कर चला जाता है। बाद में वह समझ लेती है कि अपनी जाति में रहकर अपनों की प्रगति के लिए काम करना ही बेहतर है। इसलिए कहानी के अंत में प्रमीला 'वनिता विमोचन' की सदस्या सुमना के साथ मिलकर समाज सेविका बन जाती है।

5.2.1.4 शिक्षा का महत्व

दलित स्त्रियों की बदनियति का कारण शिक्षा का अभाव है। शिक्षा ही उनकी मुक्ति का मार्ग है। शिक्षा से आत्मसम्मान बढ़ेगा और इससे अस्मिता बोध भी जागृत हो जाएगा। साथ ही वर्णव्यवस्था और पितृसत्ता के खिलाफ वे लड़ भी सकेंगे। समकालीन लेखिकाएँ इस सच्चाई से दलित स्त्री को अवगत कराना चाहती है। इसलिए वे अपनी कहानियों के द्वारा उन्हें प्रेरणा एवं प्रोत्साहन देने का कार्य कर रही हैं।

सुशीला टाकभौरे की 'सिलिया' कहानी में सिलिया और उसकी माँ यह पहचानती है कि अपनी जाति की इस तंगहाली का कारण शिक्षा का अभाव है। इसलिए कहानी में माँ बेटी को पढ़ाने एवं बेटी स्वयं पढ़ने की ठान लेती है। वह अपनी बच्ची को जल्द-से-जल्द शादी भी नहीं कराना चाहती। बेटी को शादी करवाने के लिए ज़ोर देते गाँववालों से सिलिया की माँ कहती हैं "हमीं उसको खूब पढ़ायेंगे लिखायेंगे। उसकी किस्मत में होगा तो इससे ज़्यादा मान-सम्मान वह खुद पालेंगी....अपनी किस्मत वह खुद बना लेगी।"[280] माँ की इन बातों से सिलिया के मन में आत्मविश्वास जाग उठता है। सिलिया शिक्षा प्राप्त करके अपने समुदाय को उन्नत एवं अपमानजनक ज़िन्दगी से मुक्ति दिलवाने की कोशिश करती है। सिलिया मन-ही-मन दृढ़ संकल्प ले लेती है "मैं बहुत आगे तक पढ़ूँगी, पढ़ती रहूँगी। उन सभी परंपराओं के मूल कारणों का पता

---

[280] सुशीला टाकभौरे- संघर्ष, पृ.44-45

लगाऊँगी, जिन्होंने हमें समाज में अछूत बना दिया है। मैं विद्या, बुद्धि और विवेक से अपने आपको ऊँचा साबित करके रहूँगी। किसी के सामने झुकूंगी नहीं। न ही कभी अपना अपमान सहन करूँगी।"[281] वह अपने इस दर्दनाक हालात के प्रति चिंतित हो उठती है। वह समझ लेती है कि उनकी जाति के सिर पर ऐसे कुछ काम थोपे गये है जैसे झाडू पोंछा, धोबी का काम, सारे मैलों को ठोने का काम आदि। ये काम अपने लोगों को जानवरों से भी बदत्तर जीवन जीने के लिए सवर्णों द्वारा बनाया गया है। वह इसके खिलाफ कुछ करना चाहती है। बीस वर्ष के बाद सिलिया दलित मुक्ति आन्दोलन की सक्रिय कार्यकर्ता, विदुषी, समाजसेवी, कवयित्री, एवं साहित्य जगत की प्रसिद्ध लेखिका बन जाती है। वह जीवन भर यह प्रयास करती रहती है कि अपनी जाति के लोग, उनके साथ हो रहे शोषण के मर्म को जाने, सम्मान और अपमान के भेद को समझें, और सही रूप में सम्मान का हकदार बनें। समाज में उनकी देन को मद्दे नज़र रखते हुए उन्हें देश की राजधानी के सबसे प्रख्यात सभागृह में एक प्रतिष्ठित साहित्य संस्था द्वारा सम्मानित भी किया जाता है। मलयालम की लेखिका पी.के. भाग्यलक्ष्मी की कहानी 'कनलनोवुकल' में नायिका परिवारवालों के मर्जी के खिलाफ जाकर अपनी बेटी को पढाती है। अपनी बेटी को पढाने के लिए वह काम भी करने लगती है। 'उण्णिक्कोरन चट्टोपाध्याय' कहानी में उण्णूली अपना बेटा उण्णिक्कोरन को पढ़ाना चाहती है। उण्णिक्कोरन का पिता मर चुका था। वह अकेले ही बेटे को पठाकर मास्टर बनाती है। कहानी में उण्णूली शिक्षा के महत्व को पहचानती है और अपने बेटे को पढ़ाने के लिए जी जान से मेहनत करती है। जातिगत भेदभाव के कारण अपमान सहने के लिए आज स्त्री तैयार नहीं। जाति से जूड़कर काम को देखना वह पसंद नहीं करती।

5.2.1.5 अस्मिता की तलाश

[281] सुशीला टाकभौरे- संघर्ष, पृ.48

आज दलित अस्मिता की तलाश कर रहे है । सुशीला टाकभौरे की कहानी 'मुझे जवाब देना है' की कथावाचिका एक लेखिका है। उसकी जाति और समुदाय पिछड़े हैं। उसके समुदाय में ज्ञान और वैभव दुर्लभ है । इसलिए उसके समुदाय को उस पर गर्व है। लेकिन शादी के बाद घर के कामधाम में उलझकर वह दलितों की सामाजिक जागृति, उत्थान और परिवर्तन हेतु उद्देश्यपूर्ण बातों से हट जाती है। दलित एवं पिछड़ी जातियों की समस्याओं के निवारण के लिए काम करने का मौका उसे नहीं मिलता। कहानी में एक लेखक महोदय, जिसे लेखिका भाई साहब कहती है, कथावाचिका की प्रतिभा को यों मरते देख, उसको अपना कर्तव्य का एहसास दिलवाता है। वह अपने कर्तव्यों को पहचानने लगती है। उसको अपनी मिटती जा रही अस्मिता का बोध होता है। उसे लगने लगता है "यह महंगा फ्लैट, यह घर की साज-सज्जा सब बेकार है। जीवन का उद्देश्य घर सजाना, सुख भोग करना, मात्र धन जोड़ना नहीं है। इससे कम, बहुत कम समय से भी काम जब चल सकता है तब इतना समय, इतना धन इस व्यर्थ की साज-सज्जा पर क्यों खर्च करें? इसका उपयोग समाज के लिए हो सकता है। ...मुझे कुछ करना है, पूरे दलित पिछड़े समाज के लिए, मानव समाज के लिए, साधारण जीवन से ऊपर उठकर, अपने जीवन का मूल्य समझना है... ।"[282] वह अपनी अस्मिता को पहचान कर दलित एवं पिछडे समाज को मानव होने का अधिकार दिलवाने को ठान लेती है।इनकी 'दमदार' कहानी में जग्गू ठाकुर चरित्रहीन और एक नम्बर का गुण्डा-बदमाश है। वह बहुत ही निर्दयी एवं दुष्ट है। नीच जाति के लोग उसे देखें तो, उसमें उसको बड़ा अपमान नज़र आता है। वह औरतों पर सरे-आम गुण्डागर्दी पर उतर आता है। जग्गू के इन करतूतों के बारे में सुनकर कंजर जाति की महिला उसे एक सबक सिखाने के लिए अपनी ओर वशीकृत करती है। जग्गू रात में उसके घर आने लगता है। एक दिन सुमन को एक

---

[282] सुशीला टाकभौरे- संघर्ष, पृ.94

होटल के सामने नीचे बैठकर चाय पीते देखकर जग्गू उसकी जाति को गाली देता है। अपने को और अपनी जाति को सरे-आम अपमान करते देखकर वह तनकर खड़ी होती है। वह कहती है "क्या कहा?.... कंजरनी....? अरे कंजर, तू तो कंजरों से भी गया बीता है। दिन में आने से डरता है। रात में मेरे घर में घुसा रहता है। चार महीने से मुझे चाट रहा है....आज मैं तुझे नीच कंजरनी दिख रही हूँ?... अरे, तू तो कंजरों के पांव की धूल भी नहीं है। काहे का पहलवान है तू....?"[283] मतलब है कि सवर्ण लोग दिन में नीच जाति को अस्पृश्य एवं अछूत समझते हैं। लेकिन रात में इन औरतों से नाज़ायज़ संबन्ध जोड़ते वक्त इनकी अस्पृश्यता गायब हो जाती है। जग्गू उसके बाल पकड़कर मारने की कोशिश करता है। लेकिन रोज़ मटन, मुर्ग, मछली, अंडे, डटकर शराब पीती, मेहनती सुमन के शरीर में बहुत ताकत है। गुस्सा उसकी ताकत को और भी बडा देती है। सुमन के सामने वह निर्बल दिख रहा था। जग्गू के आगे बढ़ते हाथ को सुमन ने एक ही झटके में पकड़ लिया और उसे ज़मीन पर गिरा दी । उसकी छाती पर बैठकर उसके दोनों हाथों को अपने घुटनों के नीचे दबा लेती है। वह अपने दोनों हाथों से उसकी छाती, मुंह और सिर पर मारती है। वह उसके फुलपेन्ट को निकालकर उसे सरे- आम नंगा करती है और आक्रोश प्रकट करती हुई कहती है "अभी तक आदमी ही सरे-आम औरतों को नंगा करके मारते आये हैं। क्या, औरत आदमी को नंगा करके नहीं मार सकती।"[284] अभी तक उसके जातवाली औरतों को जिन-जिन अत्याचारों का सामना करना पडा, सबका वह बदला लेती है । कुछ औरतों ने भी अपना आक्रोश प्रकट किया जिसको जग्गू की निर्दयता की शिकार बननी पडी थी । जग्गू का हौसला पस्त हो जाता है। उस दिन से उसका आतंक समाप्त हो जाता है। लोगों को यह भी समझ में आता है कि पहलवान किसे कहना चाहिए एवं दमदार किसे । आज तक समाज की यह धारण रही कि केवल पुरुष में ही

[283] सुशीला टाकभौरे- संघर्ष, पृ.134
[284] सुशीला टाकभौरे- संघर्ष, पृ.135-136

ताकत है । स्त्री को सबकुछ सहने के लिए बनाया गया है । कहानी समाज की इस चिंता को चुनौती देती है । सुशीला टाकभौरे की 'बदला' कहानी में छौआ माँ भंगी जात की है। एक दिन सवर्ण लोग उनका पोता कल्लू पर चुपके से वार करते हैं। यह पता लगने पर छौआ माँ उन्हें

गालियाँ दे-देकर रणचण्डी का रूप धारण करती है।उसकी आँखों से लाल अंगारें बरसने लगते हैं। मन में ज्वालामुखी फूट पड़ती है और उन्हें शाप देने लगती है। छौआ माँ की इस हालत को देखकर बदला लेने के लिए गाँव के दलित एकजुट हो जाते हैं। इतने सारे लोगों को एक साथ देखकर सवर्ण लोग घबरा जाते हैं। छौआ माँ कहती है "अब हम किसी से नहीं डरेंगे ।....हम भी ईंट का जवाब पत्थर से देंगे। ....वे शेर है तो हम सवाशेर बनकर रहेंगे। एक दिन ऐसा आयेगा कि लोगहमसे डरेंगे। मेरो कल्लू इसी गांव में रहेगो, शेर बनकर ।"[285] यह घटनादलितों को आत्मविश्वास से भर देती है। वे लोग अपनी सामूहिक ताकत को पहचानने लगते हैं। वे समझ लेते हैंकि उनके एकजुट होने से किसी भी कठिनाईसे पार निकलना आसान है।

नीलम शंकर की 'रामबाई' कहानी में रामबाई बहुत हिम्मतवाली है। गूँगा महंगू से शादी करके वह जाति भेद से भरे अपने गाँव को छोड़कर निकल पड़ती है। दोनों मिलकर ईंट-भट्ठे पर काम करने लगते हैं। महंगू उसका सम्बल-स्वाभिमान बन जाता है। एक दिन मालिक उसके हाथ गलत इरादे से पकड़ता है। वह अपने हाथ की सारी ईंटें मालिक पर उंडेलती है। वह ज़्यादा रुपयों के लिए अपने आपको बेचने के लिए तैयार नहीं थी। उसने मालिक के सामने न गिड़गिड़ायी, न दया एवं क्षमा की भीख माँगी। उसी शाम वह महंगू और बच्चों समेत नये काम की तलाश में निकल पड़ती है। अपने अस्तित्व एवं अस्मिता को बचाए रखने के लिए इन पिछड़ी हुई स्त्रियों को किन-किन यातनाओं से गुज़रना पड़ता है। इसका सटीक चित्रण इन कहानियों में हुआ है।

---

[285] सुशीला टाकभौरे- संघर्ष, पृ.63

5.3 आदिवासी जीवन यथार्थ

आदिवासियों का अपना इतिहास है, संस्कृति है, सभ्यता है एवं भाषाएँ हैं। आदिवासी संस्कृति में प्रकृति प्रमुख है, जिसके साथ वे जीते, पलते, बढ़ते हैं और फिर खत्म हो जाते हैं। आदिवासी सभ्यता समानता की सभ्यता है। उनका आचरण ही समानता, भाईचारा और आज़ादी पर आधारित है। यह वर्चस्ववादी सभ्यता कभी नहीं रही। आदिवासी जीवनशैली में मनुष्य और प्रकृति तथा उसके जीव-जन्तु साथ-साथ जीते हैं, साथ-साथ कष्ट झेलते हैं। उनकी रक्षा करना ये लोग अपना कर्त्तव्य मानते हैं। उनका यह दृढ़ विश्वास है कि प्रकृति उन्हें पालती-पोसती है। अपना धर्म वे किसी पर नहीं थोपते। इस प्रकार उनकी अपनी एक लोकतांत्रिक व्यवस्था है।

जंगलों पर निर्भर इस कौम को भारत की तथाकथित मुख्यधारा के स्थापित लोगों ने अपनी जगहों से विस्थापित करके मौन रहने को मजबूर किया। उन्हें अपनी सभ्यता से बाहर कर दिए गए। देश के इतिहास में उनके योगदान को नकार दिया गया। आदिवासियों की सबसे बड़ी मुसीबत है 'घुसपैठ' । इन घुसपैठियों ने आदिवासी औरतों को वस्तु में तब्दील कर दिया। उन लोगों ने आदिवासी की धरती और औरत पर कब्जा किया। नृत्य में स्त्री की भागीदारी, उनकी संस्कृति का एक अनिवार्य अंग है, लेकिन उनकी इस स्वतंत्रता को मैदानी लोग स्वच्छंदता मानकर उन्हें कुत्सित नज़रों से देखते हैं। हाथ में आने पर स्त्रियों का बलात्कार भी करते हैं। उनकी स्वतंत्रता पर इस प्रकार बंदिशें लगने लगे एवं उनको लालच में बहकाकर हथियाने भी लगे।

आदिवासी साहित्य आत्मालोचना करने के लिए प्रेरित करता है तथा समाज की मानसिकता को बदलता है। साहित्य के ज़रिए ये लोग अपनी सभ्यता से विस्थापित करने के षड्यंत्र को समझने लगे हैं। वे अपने समाज को आगाह करने लगे हैं। इसप्रकार सबसे बड़ी बात यह है कि आदिवासी साहित्य प्रतिरोध का साहित्य है। अपने पतन एवं जड़ परंपराओं के खिलाफ

भी आदिवासी साहित्य प्रतिरोध करते हैं। रमणिका गुप्ताजी का कहना है "अपने जीवन के 40 वर्ष उन्हीं के बीच रहकर, उन्हीं की समस्याओं और सपनों के लिए मैं आन्दोलनरत रही हूँ, इसलिए मैंने उनके दृष्टिकोण के प्रति अपने लेखों के माध्यम से समाज, देश और सरकार को चेताने व जगाने की कोशिश की, ताकि आदिवासियों के प्रति दृष्टिकोणात्मक बदलाव लाया जा सके। एक संवाद शुरू हो और इस अनदेखे भारत को शेष भारत से रू-ब-रू किया जा सके।"[286] उनका मतलब है कि सब लोग आदिवासियों के विकास हेतु काम करें। उन्हें मुख्यधारा में शामिल करने का प्रयास करें। समकालीन हिन्दी और मलयालम की लेखिकाएँ अपनी कहानियों में उनके जीवन यथार्थ को प्रस्तुत किया है। आदिवासी स्त्रियों पर हो रहे शोषण और इसके खिलाफ उनके प्रतिरोध को गंभीर विषय के रूप में लेखिकाओं ने लिया है।

5.3.1 आदिवासी स्त्रियों का प्रतिरोध

5.3.1.1 प्रकृति और आदिवासी स्त्री

मलयालम की लेखिका पी. वत्सला की कहानी 'मट्टोरु ग्रामम् पिरक्कुन्नु' कहानी में सरकार द्वारा जंगल जप्त करके पेड़ों की कटाई कर, शहर में ले जाकर बेचे जाते हैं। कहानी में पुट्टन की पत्नी प्रकृति के साथ हो रहे इस शोषण के प्रति सचेत है। वह कहती है "जंगल हमारा बगीचा था। अब सब सरकार ने जप्त कर दिया है। वे पेड़ काटते हैं, लॉरी में चटाते हैं, शहर में ले जाकर बेचते हैं। राजधानी में महलें बनवाते हैं। किससे पूछा? जंगल की रखवाली करने के लिए दूर शहर से युवकों को नियुक्त करते हैं। कौन है पूछने के लिए? अपने सगे संबन्धियों को शिकार करने का अवसर प्रदान करते हैं। कौन है पूछने के लिए? धोखे से पेड़ों को काटकर बेचते हैं।"

[286] पी. वत्सला- ग्राउंड जीरो, पृ.25

आदिवासियों का जीवन प्रकृति से इतना जुड़ा हुआ है कि प्रकृति के बिना उनका कोई अस्तित्व ही नहीं । इस जागरित स्त्री की कराह में प्रकृति की पीड़ा अन्तर्भुक्त है । लेखिका ने अपनी इस कहानी के ज़रिए आदिवासियों को जागृत

करने का प्रयास किया है । ताकि वे अपने ऊपर और प्रकृति के साथ हो रहे अत्याचारों को समझ सकें ।

5.3.1.2 विस्थापन से मुक्ति

मलयालम की लेखिका सि.एस. चन्द्रिका की 'कबनी' कहानी में 'चीता' नाम की आदिवासी स्त्री विस्थापन की समस्या को लेकर चिंतित है । उसकी अपनी ज़मीन से विस्थापित करने की कोशिश में अनेक आदिवासियाँ मर भी जाते हैं । तब वह पूछती है "क्या मेरे जाति के लोग ओर भी मारे जायेंगे? अपने लोगों पर हो रहे अत्याचार एवं उसके दारुण अवस्था उससे देखा नहीं जाता । वह अपने लोगों के अस्तित्व के प्रति जागरूक है वह जानती है कि अपने ज़मीन से अलग होने का मतलब है अपनी जड़ों को उखाड़ फेंकना ।

5.3.1.3 शारीरिक शोषण

आदिवासी स्त्रियों एवं लड़कियों का, बाहर के लोगों के हाथों शारीरिक शोषण आज आम बात बन गया है । 'अवक्षेप' मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानी है । कहानी में आदिवासी लड़कियों के विकास एवं उन्हें शिक्षा दिलवाने हेतु बनावाये गये सरकारी छात्रावास में चल रहे क्रूरताओं का खुलासा किया गया है । पद्मा नाम की मेडिकल विद्यार्थिनी भील जनजाति की लड़कियों पर सर्वे करने केलिए छात्रावास में जाती है । तब छात्रावास में चल रहे इन अत्याचारों का पोल खुलता है । वहाँ पर सारी लड़कियों को डरा-धमकाकर रखा गया था । इसलिए खुलकर बोलने के लिए वे लड़कियाँ खबराई हुई थी । छात्रावास के कर्मचारी एवं पुलिसवाले तक उनके शारीरिक शोषण

करते थे। बेनुडी नाम की एक आदिवासी लड़की जो एथलट है, दूसरों की अपेक्षा कुछ बॉल्ड थी। वह पद्मा से कहती है "पैले के दो महीने की छात्रवर्ती इंचारज ने अटका रखी है। पाँच सौ पूरे तो कभी देता ही नहीं। खा पी के दो सौ टिकाता है, फेर भी चार सौ बनते हैं, मिलते ही दे दूँगी।... बताया नहीं आपको पैले-छोटकी चिरमी... दस बरस की... इंचारज के पास फीस के पैसे लेने आयी और पूरी चड्डी लाल। ...पुलिस? वो हमारे यहाँ की दोनों कंजडिनें है न, उनको ले जाके इंचारज पुलिस को खुश रखता है। ...वो रंडी तो पैसे के बदले अपनी बेटी बेच दे।"[287] आदिवासी लड़कियों के विकास के लिए निर्मित योजनाओं की आड में पुलिस हो या छात्रावास के इन्चारज नाइन्साफी ही करते हैं। ज़िन्दगी पहले से बदत्तर बन जाती है। कहानी में बेनुडी वहाँ की पैशाचिक माहौल से तंग आकर छात्रावास से भाग निकलती है और अपने कोच से वह शादी भी करती है। शादी के बाद वह पढ़ाई में तल्लीन हो जाती है। पढाई के बाद वह भील जनजाति की पहली आर.पी.एम. का गरिमामय स्थान प्राप्त करती है।

मलयालम की लेखिका श्रीकुमारी रामचन्द्रन की 'पुलिचिन्त' कहानी में एक आदिवासी स्त्री का पति मर जाता है। आदिवासियों का विश्वास है कि अगर मरे हुए लोगों के शरीर को दिन ढलने के अन्तर जलाया नहीं गया तो उसकी आत्मा को कभी भी मोक्ष नहीं मिलेगा। आत्मा प्रेत बनकर दिन-रात भटकते रहेंगी। वे सिरपर हाथ रखकर बद्दुवा देंगे। ऐसा अगर हुआ तो सात पीढ़ियों तक यह शाप बना रहेगा। लेकिन लकड़ी लेने के लिए उस स्त्री के पास पैसे नहीं थे। वह अकेली एवं असहाय औरत सब लोगों से भीख माँगती है। लेकिन कोई भी उसकी सहायता करने के लिए तैयार नहीं होता। अपने प्रिय पति की लाश श्मशान के सामने रखकर पत्नी विलपने लगती है। श्मशान के सामने बैठी उसको श्मशान के पहरेदार चुडलमाडन बुरी नज़र से देखने लगता है। उसकी इस गलत इरादे को पहचानकर वह औरत उसके मुँह पर थूकती है। वह सोचती है "पति की चिता का मूल्य पत्नी का मान यह कहाँ की नीति है? क्या औरत का स्त्रीत्व एक

[287] मनीषा कुलश्रेष्ठ- कठपुतलियाँ, पृ.93

खिलौना है, जिससे कोई भी खेल सके ।"[288] उसकी इस निस्सहायता को देखकर भूमि हिलने लगती है एवं आसमान थर्रा उठता है । प्रकृति उसकी इस हालत पर अपनी प्रतिरोध प्रकट करती है । वह आखिरी पल तक कोशिश करती रहती है कि किसी प्रकार पति का दाह संस्कार हो जाए । लेकिन कोई भी उसकी मदद करने के लिए तैयार नहीं होता । अंत में वह अपना सबसे बडा धन शरीर को दाव पर लगा देती है । वह अपने सोते हुए बच्चे को पति की लाश के पास छोड़कर चुडलमाडन के साथ चली जाती है ।

5.3.1.4 पारिवारिक संघर्ष

मंजु ज्योत्सना की कहानी 'प्रायश्चित' में कथावाचिका के पडोसी आदिवासी परिवार का चित्रण किया गया है । उस घर में डोमना नामक एक आदिवासी युवक है । वह शादी करके अपनी स्त्री को घर ले आता है । आदिवासी दुल्हन बद्सूरत और बेसुरी थी लेकिन घर के काम में सुघड । वह जल्द से जल्द घर के काम निपटाती थी । वह बाँझ थी घर में खाली बैठे रहना उसे पसंद नहीं था । वह कुछ काम करना चाहती है ताकि घर की आर्थिक स्थिति सुधर जाए । लेकिन डोमना को पत्नी का काम पर जाना अच्छा नहीं लगता था । उनके बीच इस बात पर बहस भी होती रही । लेकिन बहस में पत्नी जीत जाती है और खुद कमाई करने लगती है । लेकिन जब पति ने उसे बाँझ कटकर दुत्कारना और पीटना शुरू किया जो उससे सहा नहीं जाता । वह उसे अपने स्त्रीत्व का अपमान समझती है । वह रातों रात मायके चली जाती है । आखिर वह आत्महत्या कर लेती है । सब लोगों की सहानुभूति वह आदर्शमयी औरत के प्रति थी ।

5.3.1.5 दिकुओं के खिलाफ

मलयालम की लेखिका पी. वत्सला की कहानी है 'पेंपी' । पेंपी एक आदिवासी स्त्री है । उच्चवर्ग के गोपालन नायर शहर में अपनी पत्नी एवं बच्चों को छोड़कर काम की तलाश में जंगल

---

[288] श्रीकुमारी रामचंद्रन- पुलिच्चिंत, पृ.41

पहुँचता है। जंगल का काम छोड़कर फिर से शहर लौटना उसके लिए मुश्किल हो जाता है। अपने पेट एवं शरीर की भूख को मिटाने के लिए वह पेंपी को अपने साथ रखता है। व्यावहारिकता के तौर पर वह उसके गले में मंगलसूत्र डालता है। पेंपी उसको अपना पति समझकर अपनी जिन्दगी गोपालन नायर के नाम कर देती है। सोलह साल तक साथ रहने के बाद गोपालन नायर शहर वापस जाने का फैसला लेता है, क्योंकि उसने कभी भी पेंपी को पत्नी नहीं माना था। यह खबर लगते ही पेंपी खुद उसे छोड़कर चली जाती है। गोपालन नायर द्वारा तौफे में दिए गए सामान जैसे गहना, चूडी साडी एवं रुपया आदि को वह लौटाती है। अचानक पेंपी के चले जाने से गोपालन नायर को सदमा लगता है। यहाँ पर चेतना संपन्न आदिवासी स्त्री को दर्शाया गया है जिसको हराया नहीं जा सकता। आदिवासी संस्कृति में स्वार्थ की भावना बिल्कुल नहीं है। आदिवासी तो उतनी लालची नहीं होते। वे सभ्य समाज से परे हैं । धन कमाना वे लोग जीवन का अन्तिम लक्ष्य नहीं मानते। संबन्धों को वे इससे परे मानते हैं।

सितारा एस. की कहानी है 'पष़य तरिशुकले चोल्ली' (पुरानी बंजर ज़मीन के नाम पर)। कहानी में बाहर से आया हुआ शिवरामन आदिवासी स्त्री पार्वती से शादी करता है। पार्वती की पैतृक ज़मीन जो बेकार थी, वहाँ पर शिवरामन चाय की दूकान खोलता है। पार्वती और शिवरामन के बीच झगड़ा होने पर पार्वती अपनी पैतृक ज़मीन को वापस लेने की कोशिश करती है। लेकिन शिवरामन ज़मीन वापस करने को तैयार नहीं था। तब पार्वती शिवरामन को ललकारती है "अगर बड़ी काली की बेटी हूँ तो, एक स्त्री हूँ तो, जो कुछ मुझसे छीना गया, उसे वापस लेकर ही रहूँगी।"[289] वह समझ चुकी थी कि शिवरामन अपने के लिए ही उससे शादी की थी। उसकी धोखेबाजी को समझने के बाद वह अपना चार माह के गर्भ को मिटा देती है। उस कपटी इनसान की निशानी को अपने पास रखने के लिए वह तैयार नहीं थी। एक निडर आदिवासी औरत का चित्र कहानी पेश करती है। आदिवासी समाज में स्त्री-पुरुषों के बीच समानता है। लेकिन बाहर के लोगों के

---

[289] पी.वत्सला- ग्राउंड जीरो, पृ.57

साथ संबन्ध जोड़ने से आदिवासी स्त्रियों का यह अधिकार नष्ट हो जाता है । बाहर से आकर संबन्ध जोड़ते ये लोग उनकी जायज़ाद को हडपना ही चाहते हैं । लेकिन कहानी की नायिका किसी भी हालत में अपनी धरोहर को किसी को सौंपना नहीं चाहती ।

5.3.1.6 कानून के खिलाफ

मलयालम की लेखिका सितारा एस. की कहानी है 'करुत्तकुप्पायक्कारी' (काले कपड़े वाली) । कहानी की आदिवासी स्त्री का नाम है 'दलिता' । वह एक आदिवासी युवक राजीवन से प्रेम करती है । अचानक एक दिन पुलिस द्वारा राजीवन को आतंकवादी घोषित कर दिया जाता है । यह खबर सुनकर वह पुलिस से छिपकर रहने लगता है । पुलिस उसकी तलाश में दलिता के घर पहुँचती है और उसे पकड़कर ले जाती हैं । पुलिसवाले उसे अनपढ गँवार औरत मानकर हँसी उठाने के लिए अंग्रेजी में पूछते हैं कि "Are you also a terrorist?" इस सवाल को सुनकर तीन साल तक कॉनवेन्ट स्कूल में पढ़ी, अंग्रेज़ी के बल पर वह उन लोगों के सामने सीना तानकर खड़ी होती है और कहती है "You are wrong sir, those times are gone when you could shatter a man’s confidence by calling him a terrorist...."[290] यह सुनते ही पुलिस वाले गालियाँ देकर उसके पेडू में लात मारने के लिए आते हैं । ""मैं सोते हुए सूर्य की रंगत से भरी, जंगली के

उसके हाथियों के झुण्ड के समान शक्तिशाली, खून में बुजुर्गों के विरासत को सुरक्षित रखनेवाली जंगली औरत । अपनी हरियाली को बचाने के लिए आखिरी दम तक लड़नेवाली, उसी जंगली औरत की शारीरिक लचीलेपन के साथ मैं सामने से हट गयी ।"[291] वह एक कुर्सी उठाकर फेंकती

---

[290] सितारा एस. - कथकल, पृ.187

[291] सितारा एस. - कथकल, पृ.187

है । कोई उसे कुछ करे, उससे पहले वहाँ से जंगल की उस रास्ते की तरफ वह भाग निकलती है जिस रास्ते को सिर्फ वह ही जानती थी । उसके काले कदमों की ऊर्जा को हराने में कोई भी पुरुष कामयाब नहीं होगा इस का उसे पक्का विश्वास था । वह बच निकलकर राजीवन की निभृत स्थान पर पहुँचने में कामयाब हो जाती है । अपनी जाति के लोगों के साथ सत्ता द्वारा किए जा रहे शोषण को पहचानती एक शक्तिशाली औरत की संघर्षगाथा को चित्रित कर लेखिका ने प्रतिरोध के एक नये आयाम को पाठकों के सामने रखा है ।

5.3.1.7 शिक्षा का महत्व

मलयालम की लेखिका वत्सला की कहानी है 'दुर्गा' । उसकी जाति में वह पहली लड़की थी जो दसवीं पास थी । आगे वह एक ज्वलंत भविष्य के इरादे से नर्सिंग पढने के लिए चली जाती है । अपने समाज के विकास के लिए वह शिक्षा की ज़रूर तो पहचान लेती है । आदिवासी समाज की संस्कृति, मुख्यधारा समाज से बिल्कुल भिन्न है । उनके गाँव में विद्यालय की कमी की वजह से वे लोग पढ़ नहीं सकते थे । कहानी की नायिका दुर्गा यह समझ लेती है कि शिक्षा के ज़रिए ही वह एक गरिमामय जीवन जी सकेगी । इसलिए वह शिक्षा प्राप्त करके आत्मसम्मान के साथ जीकर अपने जाति के लोगों को भी शिक्षा की आवश्यकता को समझाने की कोशिश करती है ।

इसप्रकार बाहर को लोगों की बेदखली, उनके लूट से हो रही हानि, हाशियेकरण की प्रक्रिया, विस्थाप की समस्या, शारीरिक शोषण एवं शिक्षा के महत्व को ये आदिवासी स्त्रियाँ पहचानने वाली हैं । सभ्य समाज के द्वारा बहिष्कृत आदिवासी समाज के शोषण का चित्रण करते हुए आदिवासियों की ताकत और उनकी गरिमा को उजागर करने की कोशिश इन कहानियों के द्वारा प्रस्तुत हुई हैं ।

निष्कर्ष

आज की स्त्रियाँ अपने हित के लिए मात्र न सोचकर पूरे समाज के हित के बारे में सोचती हैं। वे समाज की मुक्ति हेतु प्रयत्न भी करती है। वे आज के असंतुलित पर्यावरण के प्रति चिंतित है। प्रकृति पर मानव के समान पेड-पौधे और जीवजालों का भी हक बनता है। अपने इच्छानुसार जीने की स्वतंत्रता उन्हें भी मिलनी चाहिए। इस तथ्य को पहचानती स्त्रियाँ हाशिएकृतों के हक के लिए प्रयत्नरत हैं । समकालीन लेखिकाएँ इस मुद्दे को मद्दे नज़र रखते हुए अपनी कहानियों में ऐसी नारी पात्रों का निर्माण किया है जो पर्यावरण रक्षा हेतु संघर्षरत है। पर्यावरण का नाश मानव राशी का नाश है इस बात को गौर से समझती लेखिकाएँ आगे की पीठी के लिए एक स्वस्थ प्रकृति को बनाए रखना अपना कर्तव्य समझती है। आज हाशिएकृतों में भी अपने अधिकारों के प्रति जागृति दिखाई देती है। दलित एवं आदिवासी स्त्रियाँ आज परिवार वालों से बाहर के लोगों से या कानून से उन पर होनेवाले अत्याचार को समझने लगी हैं। समकालीन लेखिकाओं ने हाशिएकृतों के ज़रिए ही उनकी समस्याओं को पाठकों के सामने रखा है। ये सजग नारी पात्र अपनी जाति के लोगों के प्रगति लिए संघर्ष करती दिखाई पड़ती हैं।

उपसंहार

समाज में मौजूद असंतोष एवं उससे उत्पन्न अस्वीकार से ही वर्तमान स्थिति से पृथक नए परिवेश की कल्पना जन्म लेती है। बदलाव की यह तीव्र इच्छा ही प्रतिरोध का मूल तत्व है। प्रतिरोध प्रायः सत्ता और जन विरोधी नीतियों के विपक्ष में है। यह हमेशा से मनुष्य की गरिमा का समर्थन करता आ रहा है। हिंसा प्रतिरोध का लक्षण नहीं है और ऐसे प्रतिरोध में वर्चस्व व भेदभाव नहीं होता। कोई भी रचना अपने समय के प्रतिरोध को स्वीकारे बिना आगे नहीं बढ़ सकती, क्योंकि रचना की संस्कृति प्रतिरोध की है, प्रतिपक्ष की है। साहित्य हमेशा मानववादी रहा और सत्ता के विरोधी भी। इसलिए बेशक साहित्य प्रतिरोध जगाने का काम कर रहा है। चाहे किसी भी युग का साहित्य हो, वह अपने काल की अभिजनवादी व्यवस्था के विरोध प्रस्तुत करता है एवं समाज को बदलना भी चाहता है।

साहित्यकार बिना डरे, बिना समझौते के सत्ता के प्रति असहमति व्यक्त करता है क्योंकि लेखक के अपने जीवन और जीवन-दृष्टि से प्रतिरोध का सीधा संबंध है। वह प्रतिरोध को आज़माकर पूरी सामाजिक व्यवस्था को बदलना चाहता है। इसके लिए उसे गहरी आत्मालोचना की ज़रुरत है। स्वतन्त्रता और नए मूल्यों को अर्जित करने के लिए जिस मानसिक प्रौढ़ता की आवश्यकता है, वह महिला लेखन में दिखाई पड़ती है। एक स्त्री, स्त्री होते हुए जब स्त्री-संसार के बारे में स्त्री-दृष्टि से विचार करने लगती है तब लेखन अत्यधिक संवेदनशील होता है। महिला लेखन द्वारा स्त्री की दुनिया तथा उसकी चिंताएँ, अभिलाषाएँ, आकाक्षाएँ, दैहिक प्रश्न सब पाठकों के सामने आते हैं। महिला लेखन सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रों में स्त्री की ठोस भागीदारी और वाजिब हक़ को सुनिश्चित करने के लिए संघर्षरत है। उसके प्रतिरोध में धीरे-धीरे सख्य भाव पनप रहा है, जिसमें सकारात्मक एवं समरसता का भाव निहित है।

स्त्री स्वभाव की बहुत बड़ी विशेषता उसमें निहित पोषण तत्व है। इसलिए स्त्री, मात्र अपने शोषण से मुक्त होने के लिए प्रतिरोध न करके समग्रता के लिए करती है। उसके इस प्रतिरोध

में दलित, आदिवासी, पर्यावरण, समाज के निचले तबके के लोग सब शामिल हो जाते हैं। हमारी बदलती परिस्थितियों में सामंजस्य ज़रूरी है । समानता का अधिकार हर मानव के मूलभूत अधिकारों में एक है । भारतीय संविधान में समानता के अधिकार को प्रमुखता मिलने पर भी स्त्रियाँ एवं अन्य हाशिएकृत इससे वंचित हैं । इसलिए लेखिकाएँ समाज में सब लोगों के समानाधिकारों पर टिके एक संतुलित समाज की परिकल्पना करती हैं।

समकालीन महिला लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह प्रतिरोध है। समकालीन समय में हिन्दी में हो या मलयालम में कहानीकारों की दो पीढ़ियाँ एक साथ अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रतिरोध जताने में सक्रिय हैं। इसमें वरिष्ठ और प्रसिद्ध कहानीकार हैं- हिन्दी में कृष्णा सोबती, शिवानी, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, शशिप्रभा शास्त्री, ममता कालिया आदि । मलयालम में माधविक्कुट्टी, पी. वत्सला, सारा जोसफ, सारा तोमस, अषिता, के . आर. मल्लिका, पी. आर श्यामला, बी. एम. सुहरा आदि। इन लोगों ने समकालीन साहित्य में अपनी पहचान को कायम रखा है। दूसरी पीढ़ी में हिन्दी में दीप्ति खंडेलवाल, मृणाल पाण्डे, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, राजी सेठ, मंजुल भगत, मणिका मोहिनी, प्रतिमा वर्मा, सुधा अरोड़ा, सूर्यबाला, मेहरुन्निसा परवेज़, इन्दुबाली, मालती जोशी, कृष्णा अग्निहोत्री, चन्द्रकान्ता, कुसुम चतुर्वेदी, मैत्रेयी पुष्पा, नमिता सिंह, उषा किरण खान, कमलकुमार, नासिरा शर्मा, ऋता शुक्ल, गीतांजली श्री, लवलीन, मुक्ता, अलका सरावगी, अरुणा सीतेश, मीराकांत, क्षमा शर्मा, शरद सिंह, कविता, ऊर्मिला शिरीष, अल्पना मिश्र, नीलाक्षी सिंह, दीपक शर्मा आदि आती हैं। मलयालम में मानसी, चंद्रमती, गीता हिरण्यन, श्रीकुमारी रामचंद्रन, प्रिया ए. एस., सितारा एस., के. पी. सुधीरा, सिल्विकुट्टी, सी.एस. चंद्रिका, के. आर. मीरा, इंदु मेनोन, तनूजा एस. भट्टतिरी, लता लक्ष्मी आदि प्रमुख है।

वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्तर पर स्त्रियाँ आज पुरुष सत्तात्मक समाज के शोषण की शिकार हैं। यह पहचानती समकालीन हिन्दी-मलयालम लेखिकाएँ अपनी कहानियों के माध्यम से स्त्रियों को इन शोषणों से मुक्ति दिलवाने की कोशिश कर रही हैं। समाज में एक व्यक्ति की हैसियत से स्त्री को पुरुष के बराबर स्वतन्त्रता,

समानता और गरिमा के साथ अपनी ज़िंदगी गुज़ारने का पूरा हक़ है । फिर भी समाज इसे स्वीकारने के लिए तैयार नहीं होता । समकालीन हिन्दी-मलयालम लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में ऐसी नारी पात्रों को जन्म दिया है, जो अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के लिए संघर्षरत हैं । हिन्दी लेखिका मालती जोशी की 'पीया पीर न जानी', 'मुक्तिपर्व' और मलयालम की लेखिका सारा तोमस की 'ओरमकलुड़े वेलिच्चत्तिल' आदि कहानियों की नायिकाएँ अपनी जीवनसाथी का चयन खुद करना चाहती हैं । मलयालम की लेखिका चंद्रिका 'इनि नी परयुका', लता लक्ष्मी मेनोन की 'माट्रिमोणियल डॉट्स कॉम' और पी. वत्सला की 'तेरेसयुड़े कल्याणम्' आदि कहानियों की नायिकाएँ वैवाहिक जीवन की झंझट में न पड़कर अकेले जीने का फैसला लेती हैं । हिन्दी की लेखिका कविता की 'फुर्सत के चार दिन', लता शर्मा की 'मदयंतिका', ममता कालिया की 'बोलनेवाली औरत' और मलयालम की कहानीकार सिल्विक्कुट्टी की 'मष्ा' , कहानी की नायिकाएँ अपने अस्तित्व व अस्मिता के लिए संघर्षरत दिखलाई पड़ती हैं ।

परिवार में स्त्री की अनेक भूमिकाएँ होती हैं जैसे माँ, बेटी, पत्नी आदि । अपने आपको पहचान दिलवाने के लिए स्त्री को परिवार में एक खुला वातावरण मिलना चाहिए । इस बात को पहचानती हिन्दी और मलयालम की लेखिकाएँ स्त्रियों के लिए अपनी आवाज़ बुलंद करती हैं । वे अपनी कहानियों में ऐसी माताओं का चित्रण करती हैं, जो परिवार में अपनी बेटियों के हक़ के लिए संघर्ष कर रही हैं । हिन्दी लेखिकाओं में मीराकांत की 'गली दुल्हनवाली' कविता की 'उलटबाँसी', मालती जोशी की 'गतांक से आगे', लता शर्मा की 'तीसरी बेटी के नाम ये ठंडे, सूखे, बेजान शब्द', नासिरा शर्मा की 'अपनी कोख' और मलयालम लेखिका माधविक्कुट्टी की 'पारितोषिकम्' आदि कहानियाँ इस तथ्य पर आधारित हैं । स्त्री वैवाहिक संस्था में छिपे षड्यंत्र को आज समझ रही है । एक पत्नी के रूप में अपने अधिकारों को जानने की कोशिश करती स्त्री हिन्दी में नासिरा शर्मा की 'कैद घर', ममता कालिया की 'बोलनेवाली औरत', सिम्मी हर्षिता की 'कब्रगाथा' और मलयालम में जानकी की 'पञ्चक्कुतिरकल एत्तुम्बोल' अषिता की 'शिवेन सहनर्तनम' पी. वत्सला की 'अनुपमयुड़े कावल्कारन' आदि कहानियों में दिखाई पड़ती हैं । पति

के साथ निभा न सकी तो तलाक की माँग करनेवाली स्त्रियाँ नासिरा शर्मा की ‘शामी कागज़’, ऊर्मिला शिरीष की ‘धूप से भी बड़ा’ और मलयालम लेखिका तनूजा. एस. भट्टतिरी की ‘गायत्री मंत्रम् चोल्ली’ आदि कहानियों में दिखाई देती हैं ।

स्त्री-पुरुष के सामाजिक संबंध में पुरुष हमेशा स्त्री पर वर्चस्व स्थापित करना चाहता है । सड़क पर एक स्त्री का अकेला चलने तक समाज को हज़म नहीं होता । गाडी में हो या सड़क पर अपने साथ हो रही कामुक हरकतों के प्रति स्त्रियाँ सचेत हैं । हिन्दी लेखिकाओं में अल्पना मिश्र की ‘मुक्ति प्रसंग’, कविता की ‘फुर्सत के चार दिन’ और मलयालम लेखिकाओं में सरस्वती शर्मा की ‘मनस्सिन्टे मुरिवुकल’ एवं सिल्वि वेल्लनाड की ‘स्नेहसोपानम्’ कहानी की नायिकाएँ इस कोटी की हैं । नासिरा शर्मा की ‘बिलाव’, चित्रा मुद्गल की ‘गिल्टी रोजेस’, ‘प्रेतयोनी’, लता शर्मा की ‘वो नहीं भूल सकते’, मलयालम की लेखिका सितारा एस. की ‘अग्नि’, इंदु मेनोन की ‘रक्तकाली भद्रकाली’, कय्युम्मु की ‘प्रतिकारम्’ आदि कहानियाँ स्त्रियों पर किए जा रहे जघन्य अपराध , बलात्कार के सन्दर्भ में विचार करने योग्य हैं । इन कहानियों की नायिकाओं की हिम्मत को बलात्कार के ज़रिए तोड़ा नहीं जा सकता । आज की सबसे बड़ी त्रासदी है दहेज । मालती जोशी की ‘मुक्तिपर्व’, सूर्यबाला की ‘कौमुदी : एक प्रश्न’, ऊर्मिला शिरीष की ‘तीसरी मोड़’, नीलम सिन्हा की ‘पच्चीस हज़ारी दूल्हा’ और सारा तोमस की ‘पुरुष धनम्’ कहानियों में दहेज विरोधी स्वर प्रतिध्वनित है । क्षमा शर्मा की ‘भूख’, मेहरुन्निसा परवेज़ की ‘खेलवाडी’, अषिता की ‘ओत्तुतीर्प्पुकल’ और सरस्वती शर्मा की ‘मरियम’ कहानियों की नायिका वेश्याएँ अपने आपको वैवाहिक रिश्ते में बंदी स्त्रियों से ज़्यादा स्वतंत्र समझती हैं ।

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में महानगरों में पनप रहे ‘लिव इन रिलेशन’ के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्ष आज हमारे सामने हैं । स्त्रियाँ संबंधों में स्वतंत्रता तलाशते-तलाशते इसमें जा फंसती हैं । समकालीन हिन्दी-मलयालम लेखिकाओं ने ‘मेरी नाप के कपडे’, ‘बोधी’ और ‘अम्मयुड़े मकन’ कहानियों के ज़रिए इसका जिक्र किया है । यौन संबंधों में पुरुष की आक्रामकता

को सहन नहीं करती स्त्रियाँ आज समलैंगिकता को स्वीकार रही हैं । इस तथ्य को केंद्र में रखकर लिखी गई मलयालम कहानियाँ हैं इंदु मेनोन की 'जलत्तिलूड़े नडक्कुन्न कन्यकमार', वत्सला की 'दुष्यन्तनुम् भीमनुमिल्लात्त लोकम्', सी.एस. चंद्रिका की 'कांजीपुरम्' और सितारा एस. की 'स्पर्शम्' । विधवाओं के जीवन पर प्रतिरोध प्रकट करती हिन्दी कहानियाँ हैं- मेहरुन्निसा परवेज़ की 'जीवनमंथन', लता शर्मा की 'मनी प्लांट', मनीषा कुलश्रेष्ठ की 'रंग-रूप-रस-गंध', नासिरा शर्मा की 'शामी कागज़' एवं मलयालम कहानियाँ हैं चंद्रिका की 'मरुपडि प्रतीक्षिक्कुन्नु', पी. वत्सला की 'अरुंधति करयुन्निल्ला' आदि । परिवार द्वारा फालतू सामान समझा जाने पर जिन्दगी की अंतिम मोड़ में प्रतिरोध प्रकट करती अनेक स्त्री पात्रों को कहानियों में देख सकते हैं । हिन्दी कहानियाँ , क्षमा शर्मा की 'धूप है कि खिल उठी', कविता की 'उलटबाँसी', लता शर्मा की 'मनी प्लांट', नीलम सिन्हा की 'अंतिम घड़ी', शिवानी की 'दो सखियाँ' आदि और मलयालम कहानियाँ हैं - गीता हिरण्यन की 'विषुप्प', वत्सला की 'प्रतिसन्धि', गिरिजा के.मेनोन की 'स्वातंत्र्यत्तिन्टे निरभेदंगल' आदि इस मुद्दे की ओर इशारा करती हैं । शिक्षा प्रतिरोध की बुनियाद है । इसे समझकर शिक्षित होने एवं शिक्षित कराने के लिए प्रयत्न करती नायिकाओं को मीराकांत की 'गली दुल्हनवाली', मालती जोशी की 'पंख-तौलती चिड़िया', चित्रा मुद्गल की 'नतीजा', नासिरा शर्मा की 'शर्त' आदि हिन्दी कहानियों में देख सकते हैं ।

सदियों से स्त्रियों को आचार एवं अनुष्ठान व रीतिरिवाज़ के नाम पर पुरुषवर्चस्ववादी समाज ने अपने ढाँचे में जकडकर रखता है । सांस्कृतिक क्षेत्र में एक नकारात्मक दृष्टिकोण ही स्त्रियों पर हज़ारों सालों से अपनाता आ रहा है । सांस्कृतिक वर्चस्व के मूल में छिपे शोषण को स्त्री आज पहचानने लगी है एवं जमकर प्रतिरोध भी जताने लगी है । ऋता शुक्ल की 'रामो गति, देहु सुमति', ऊर्मिला शिरीष की 'उसका अपना रास्ता' और क्षमा शर्मा की 'आवाजें' आदि हिन्दी कहानियाँ नव उपनिवेशवादी संस्कृति पर प्रश्न करती हैं । धर्म के नाम पर भी आज स्त्रियाँ शोषण सहने के लिए अभिशप्त हैं । समकालीन हिन्दी-मलयालम लेखिकाएँ धर्म के नाम पर चल रहे रीति-रिवाज़ों की निरर्थकता पर प्रकाश डालती हैं । मंजुल भगत की 'अजूबा', चन्द्रकान्ता की 'न सोहणी

न हीर', मालती जोशी की 'मुक्ति पर्व', जया जादवानी की 'फिर-फिर लौटेगा', ममता कालिया की 'खानपान', नासिरा शर्मा की 'खुदा की वापसी' आदि हिन्दी कहानियाँ और सितारा की 'वेयिल', सुहरा की 'अवने नरकाग्नियिल एरिक्कुविन' आदि मलयालम कहानियाँ इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं।

आज की स्त्रियाँ यह समझ गयी हैं कि आर्थिक स्वावलंबन के बिना कितनी भी स्वतंत्रताएँ उन्हें मिले वे लेश मात्र ही हैं। आर्थिक स्वावलंबन स्त्रियों में स्वाभिमान पैदा करता है। आर्थिक रूप से सक्षम होने का मतलब है गैर-बराबरी एवं घरेलू हिंसा से जूझने में आसान। क्योंकि एक नौकरी के बल पर कुछ फैसले वे खुद ले सकती हैं। हिन्दी में मालती जोशी की 'पीर पर्वत हो गयी', दीपक शर्मा की 'माँ का दमा', लता शर्मा की 'रिमोट कंट्रोल', चन्द्रकान्ता की 'लगातार युद्ध', जया जादवानी की 'पलाश का फूल' और मलयालम में वत्सला की 'निलम्मा', अषिता की 'आत्मगतंगल', सबिया की 'धर्म संकडम्', सुहरा की 'आत्महत्ययुड़े पोरुल तेडरुत', गिरिजा के. मेनोन की 'वनवासम् कष़िन्जप्पोल' और चंद्रिका की 'चारनिरम्' कहानी की नायिकाएँ खुद निर्णय लेने में सक्षम हैं। कानूनी तौर पर पैतृक संपत्ति में हक़ मिलने पर भी स्त्री को वह अधिकार प्राप्त नहीं होता है। मेहरुन्निसा परवेज़ की 'लकीर', नासिरा शर्मा की 'नयी हुकूमत', 'दूसरा कबूतर' आदि कहानियों में पैतृक संपत्ति में हो या पति की संपत्ति में स्त्री अपना हक़ माँग बैठती है।

33 प्रतिशत आरक्षण मिलने पर भी स्त्रियाँ आज भी राजनीति की मुख्यधारा में शामिल नहीं हो पायीं। राजनीति के क्षेत्र में पुरुष अपना वर्चस्व खोना नहीं चाहता। स्त्रियाँ अगर नेतृत्व में आ जाएँगी तो इस क्षेत्र में उसका वर्चस्व डगमगाने लगेगा। इस क्षेत्र में हो रहे अन्याय के खिलाफ स्त्री एक आम सजग नागरिक बनकर अपना प्रतिरोध प्रकट करती है। हिन्दी में शरद सिंह की 'मरद', जया जादवानी की 'क़यामत का दिन उर्फ़ कब्र से बाहर' और मलयालम में इंदु मेनोन की '1975 ले पोस्ट चेय्ता ओरु कथा' रेखा की 'आरुड़ेयो ओरु सखाव', सी.एस. चंद्रिका की 'कांजीपुरम्' आदि इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय कहानियाँ हैं। अगर स्त्री सत्ता में आ जाएगी तो समाज में स्त्री या अन्य हाशिएकृतों के प्रति होनेवाले शोषण में कटौती होने की संभावना है।

मेहरुन्निसा परवेज़ की 'जगार' कहानी की नायिका गोमती सत्ता का उपयोग जनता के हित के लिए करती है।

कानून जनता के हित के लिए बनाया गया है। लेकिन आज क़ानून भी सत्ता का हित ही चाहता है। समकालीन हिन्दी-मलयालम लेखिकाएँ अपनी-अपनी कहानियों के ज़रिए क़ानून के इस कालेपन के खिलाफ प्रतिरोध प्रकट करती हैं। हिन्दी में लता शर्मा की 'बदला हुआ बयान', चित्रा मुद्गल की 'बयान' और मलयालम में शारदा चूलूर की 'कस्तूरी', चंद्रिका की 'भूमियुड़े पताका' और श्रीकुमारी रामचंद्रन की 'अमृतवर्षिणी' भी इस तथ्य को केंद्र में रखकर लिखी गयी कहानियाँ हैं। आज की स्त्रियाँ सांप्रदायिक दंगों के खिलाफ हैं। वे इन दंगों पर प्रतिरोध जताकर एक स्वच्छ व स्वस्थ समाज की स्थापना करना चाहती हैं। इन दंगों में अत्याचार के शिकार तो स्त्री एवं बच्चे ही होते हैं। नारी आज इस तथ्य को पहचानती है। हिन्दी में चित्रा मुद्गल की 'बयान', जया जादवानी की 'मुक्ति' और मलयालम में सितारा एस. की 'साक्षी', इन्दु मेनोन की 'दिगंबरन', बी.एम. सुहरा की 'वेरुते न्जान एप्पोषुम स्वप्नंगल कानुन्नु', सिल्वि वेल्लनाड की 'तीक्कडल', और सितारा एस. की 'तांग' कहानियों की नायिकाएँ सांप्रदायिक दंगों के खिलाफ सचेत दिखाई देती हैं।

समाज की एक प्रतिबद्ध इकाई होने के नाते स्त्रियाँ समाज में सकारात्मक बदलाव लाना चाहती हैं। स्त्रियाँ अपने साथ पूरे समाज की मुक्ति के प्रति चिंतित हैं। खुद को एवं आनेवाली पीढ़ी को इस पृथ्वी पर स्वस्थ ज़िंदगी बिताने के लिए प्रकृति की आवश्यकता पर वे ज़ोर दे रही हैं। इसलिए वे जीवजंतु, नदी एवं पेड़-पर्वत के बचाव हेतु समाज में कार्यरत हैं। हिन्दी में पंखुरी सिन्हा की 'तीर्थ, अर्थशास्त्र और ईश्वर', 'दूर देश में पुराना समय', क्षमा शर्मा की 'माँ', शरद सिंह की 'किस-किसको कटवाओगे केशू', जया जादवानी की 'हिरण भाग रहा है' और मलयालम में सितारा एस. की 'भूमियुड़े अवकाशिकल', वत्सला की 'कयम्' आदि कहानियों में लेखिकाएँ पर्यावरण विनाश के कारणों को दर्शाकर समाज को उसके प्रति जागरूक कराने की कोशिश कर रही हैं।

आज की लेखिकाएँ समाज में हाशिए में रहने के लिए अभिशप्त लोगों के प्रति संवेदनशील हैं। धर्म एवं जाति के नाम पर इन हाशिएकृत लोगों के साथ मुख्यधारा समाज भेदभाव बरत रहा है। दलित लोग आज अपने प्रति हो रहे शोषण को समझने लगे हैं। आज दलित स्त्रियाँ परिवार, सत्ता, जाति आदि का विरोध कर रही हैं। वे लोग शिक्षा के महत्त्व को पहचान रहे हैं। हिन्दी में नीलम शंकर की कहानी 'रामबाई', सुशीला टाकभौरे की 'दमदार', 'छौआ माँ', 'सिलिया', चित्रा मुद्गल की 'नाम', 'पाठ' और मलयालम में पी.के. भाग्यलक्ष्मी की 'कनलनोवुकल' आदि दलितों के उद्धार के लिए लिखी गयी कहानियाँ हैं।

आदिवासियों के प्रति हो रहे शोषण के प्रति लेखिकाएँ आज सचेत होने लगी हैं। आदिवासियों की अलग एक संस्कृति है, जिसमें स्त्रियों को समानता का अधिकार भी प्राप्त है। लेकिन मुख्यधारा समाज इन्हें हाशिए में बनाए रखना चाहता है। लेखिकाएँ इनमें चेतना जागृत कराने की कोशिश कर रही हैं। अपनी कहानियों के ज़रिए विस्थापन , शारीरिक शोषण, पारिवारिक संघर्ष, मानवाधिकार एवं शिक्षा के महत्त्व पर वे ज़ोर दे रही हैं। हिन्दी में मनीषा कुलश्रेष्ठ की 'अवक्षेप' और मलयालम में पी. वत्सला की 'मत्टोरु ग्रामम् पिरक्कुन्नु', 'पेंपी', 'दुर्गा', सी.एस. चंद्रिका की 'कबनी', श्रीकुमारी रामचंद्रन की 'पुलिच्चिंत', सितारा एस. की 'पष़य तरिश्शुकले चोल्ली', 'करुत्त कुप्पायक्कारी' जैसी कहानियों में ऐसी आदिवासी स्त्रियों का चित्रण किया गया है जो अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत हैं। लेखिकाएँ ऐसी आदिवासी स्त्रियों का निर्माण कर आदिवासियों को चेतना संपन्न बनाने की कोशिश में हैं।

आज की स्त्री शिक्षित है। शिक्षा उसे चेतना से संपन्न करती है। वह प्रतिरोध की आवश्यकता को भी पहचान चुकी है। आज की स्त्री जीवन के सभी स्तर पर अपना हक़ जमाने लगी है। वह अपने साथ पूरे संसार को जागृत करना चाहती है। वह प्रकृति एवं हाशिएकृत लोगों को भी अपने साथ मुक्ति की राह दिखाना चाहती है। समकालीन हिन्दी-मलयालम लेखिकाएँ अपनी कहानियों के ज़रिए इस मुहिम को लेकर आगे बढ़ रही हैं। आज लेखिकाएँ समाज में ऐसी योजनाएँ चाहती हैं जहाँ स्त्री-पुरुष एक साथ हालात को सुधारने की कोशिश करें जिससे समाज

में सद्भावना व सहयोग पर आधारित संतुलित रिश्ते बनें। शोषित लोगों में ही वह योग्यता होती है जो समाज में ऐसे कार्य करें जिससे समाज का हित हो। इसके लिए आपसी समझदारी एवं सम्मानपूर्वक व्यवहार पर लेखिकाएँ ज़ोर दे रही हैं जिसके तहत एक साथ रहने का स्वच्छ वातावरण बनें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ

हिन्दी कहानी-संग्रह

1. अंतिम बयान	मंजुल भगत भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली-110003 सं. 2001
2. अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है	जया जादवानी वाणी प्रकाशन नई दिल्ली-110002 सं. 2002
3. अब्बू ने कहा था	चन्द्रकान्ता भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली-110003 सं. 2005
4. आख़िरी नाम अल्लाह का	लता शर्मा मेधा बुक्स दिल्ली-110032 सं. 2003
5. आदि अनादि भाग-1,2,3	चित्रा मुद्गल सामयिक प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली-110002

सं. 2007

6. उलटबाँसी — कविता
भारतीय ज्ञानपीठ
नई दिल्ली-110003
सं. 2008

7. औरत एक रात है — मालती जोशी
परमेश्वरी प्रकाशन
दिल्ली-110092
प्रकाशन 2001

8. औरत की कहानी — सं. सुधा अरोड़ा
भारतीय ज्ञानपीठ
नई दिल्ली-110003
सं. 2008

9. कहानी की तलाश में — अल्का सरावगी
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली-110002
तीसरी आवृत्ति 2005

10. काला शुक्रवार — सुधा अरोड़ा
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली-110002
सं. 2006

11. किस्सा-ए-कोहनूर — पंखुरी सिन्हा
भारतीय ज्ञानपीठ

	नई दिल्ली-110003
	सं. 2009
12. खुदा की वापसी	नासिरा शर्मा
	भारतीय ज्ञानपीठ
	नई दिल्ली-110003
	दू.सं. 1999
13. गली दुल्हनवाली	मीराकांत
	सामयिक प्रकाशन
	दिल्ली
	सं. 2010
14. गौरा गुनवंती	सूर्यबाला
	भारतीय ज्ञानपीठ
	नई दिल्ली-110003
	सं. 2010
15. घोडा एक पैर	दीपक शर्मा
	भारतीय ज्ञानपीठ
	नई दिल्ली-110003
	सं. 2009
16. छावनी में बेघर	अल्पना मिश्र
	भारतीय ज्ञानपीठ
	नई दिल्ली-110003
	सं. 2008
17. जंगल का जादू तिल-तिल	प्रत्यक्षा

		भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली-110003 सं. 2009
18.	ढाल तथा अन्य कहानियाँ	रश्मि मल्होत्रा नेहा प्रकाशन दिल्ली-110002 सं. 2004
19.	तिली-तिली आग	शरद सिंह सुनील साहित्य सदन नई दिल्ली-110002 सं. 2010
20.	दो सखियाँ	शिवानी राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली-110002 प्र.सं. 2007 आवृत्ति 2013
21.	निर्मोही	ममता कालिया वाणी प्रकाशन नई दिल्ली-110002 सं. 2004
22.	निर्वासन	ऊर्मिला शिरीष भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली-110092

सं. 2001

23. पिया पीर न जानी — मालती जोशी
परमेश्वरी प्रकाशन
नई दिल्ली-110003
सं. 2001

24. प्रतिनिधि कहानियाँ — नासिरा शर्मा
किताबघर प्रकाशन
सं. 2013

25. बदलते हालात में — चन्द्रकान्ता
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली-110002
सं. 2002

26. बनजारन हवा — सिम्मी हर्षिता
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नई दिल्ली
सं. 2000

27. बयान — चित्रा मुद्गल
भारतीय ज्ञानपीठ
नई दिल्ली-110003
दूसरा सं. 2005

28. बीतते हुए — मधु कांकरिया
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली

		दूसरा सं. 2017
29.	बोलनेवाली औरत	ममता कालिया वाणी प्रकाशन नई दिल्ली-110002 सं. 1998
30.	भीतर का वक्त	अल्पना मिश्र भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली-110003 दू.सं. 2006
31.	मानुषगंध	सूर्यबाला किताबघर प्रकाशन सं. 2005
32.	मेरी नाप के कपडे	कविता भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली-110003 सं. 2006
33.	लकीर तथा अन्य कहानियाँ	ऊर्मिला शिरीष आर्य प्रकाशन मण्डल दिल्ली-110031 सं. 2011
34.	लडकी जो देखती पलटकर	क्षमा शर्मा वाणी प्रकाशन

नई दिल्ली

सं. 2009

35. लपटें — चित्रा मुद्गल
भारतीय ज्ञानपीठ
नई दिल्ली-110003
सं. 2004

36. ललमणियाँ — मैत्रेयी पुष्पा
किताबघर प्रकाशन
नई दिल्ली 02
सं. 1996

37. शामी कागज़ — नासिरा शर्मा
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली-110003
सं. 2009

38. संघर्ष — सुशीला टाकभौरे
शरद प्रकाशन
नागपुर 22
सं. 2006

39. समर — मेहरुन्निसा परवेज़
ग्रन्थ अकादमी
नई दिल्ली
सं. 1999

40. स्वप्नदंश — मणिका मोहिनी

विक्रांत प्रकाशन
फरीबाद
सं. 1977

41. सूरज उगने तक — चंद्रकांता
भारतीय ज्ञानपीठ
नई दिल्ली-110003
सं. 1994

मलयालम कहानी-संग्रह

1. अन्नयुड़े अत्ताष्न विरुन्न — चंद्रमति
डी.सी. बुक्स
कोट्टयम्
सं. 2006

2. अन्नयुम कर्त्तावुम — सिल्विक्कूट्टी
करंट बुक्स
सं. 2004

3. अम्म एन्नोड़ परंज नुणकल — ग्रीन बुक्स
तृच्चूर
सं. 2008

4. अरुणयुड़े विशेषंगल — गिरिजा के. मेनोन
भावना पब्लिकेशन्स

सं. 2008

5. इडम् — सितारा एस.
डी.सी. बुक्स
कोट्टयम्
सं. 2006

6. उच्चवेयिल — ललिता एस.
परिधि बुक्स
सं. 2011

7. ओरोर्मयुड़े पच्चत्तुरुत्तिलूड़े — कय्युम्मु
पायल बुक्स
कन्नूर
सं. 2009

8. कथकल — इंदु मेनोन
डी.सी. बुक्स
कोट्टयम्
प्र.सं. 2010
त्रि.सं. 2014

9. कुहू कुहू — बी.एम. सुहरा
पूर्णा पब्लिकेशन
कोष़िक्कोड़
सं. 2007

10. गिल्लट्टिन — के.आर. मीरा
करंट बुक्स

तृच्चूर

प्र.सं. 2010

द्वि.सं. 2011

11. गीता हिरण्यन्टे कथकल — गीता हिरण्यन

करंट बुक्स

तृच्चूर

सं. 2008

12. ग्राउंड जीरो — पी. वत्सला

प्रियदर्शिनी पब्लिकेशन्स

सं. 2009

13. चुम्बनशब्द तारावली — इंदु मेनोन

डी.सी. बुक्स

कोट्टयम्

सं. 2011

14. तष़प्पाविलोरुरक्कम — सरस्वती शर्मा

मातृभूमि पब्लिकेशन

कोषिक्कोड

सं. 2008

15. तीक्कलि वेट्टंगल — बीना जार्ज

z लाइब्रेरी

सं. 2006

16. निन्गलेन्ने फेमिनिस्टाक्की — निर्मला

करंट बुक्स

तृच्चूर

सं. 2006

17. निलाविंटे नाट्टिल — अषिता

डी.सी. बुक्स

कोट्टयम्

सं. 2002

18. पच्चक्कुतिरकलुन्तुम्बोल — जानकी

पायल बुक्स

सं. 2010

19. पुतुरामायण कथकल — सारा जोसफ

करंट बुक्स

तृच्चूर

सं. 2006

20. पुलच्चिंत — श्रीकुमारी रामचंद्रन

पूर्णा पब्लिकेशन्स

कोषिक्कोड़

सं. 2008

21. भ्रांत — बी.एम. सुहरा

डी.सी. बुक्स

कोट्टयम्

सं. 2005

22. मरुपडी प्रतीक्षिक्कुन्नु — सी.एस. चन्द्रिका

		डी.सी. बुक्स कोट्टयम् सं. 2006
23.	मलयालत्तिन्टे सुवर्ण कथकल	पी. वत्सला ग्रीन बुक्स तृच्चूर प्र.सं. 2007 आवृत्ति 2013
24.	रेखयुड़े कथकल	रेखा के. करंट बुक्स तृच्चूर प्र.सं. 2010 आवृत्ति 2012
25.	श्रुति भंगम्	शारदा चूलूर उन्म पब्लिकेशन्स सं. 2006
26.	सितारयुड़े कथकल	सितारा एस. डी.सी. बुक्स कोट्टयम् सं. 2013
27.	सेबिययुड़े कथकल	सेबिया ऐ.एल.ए बुक्स सं. 2006

28. स्त्री पक्ष कथकल — सारा तोमस
करंट बुक्स
कोट्टयम्
सं. 2011

29. संचारिकलुड़े ताणुपोय वीड — सावित्री राजीवन
मातृभूमि बुक्स
सं. 2008

30. सिलिक्का — लता लक्ष्मी
मातृभूमि पब्लिकेशन्स
सं. 2011

31. हंसध्वनि — माधविक्कुट्टी
ओलिव पब्लिकेशर्स
प्र.सं. 2001,आवृत्ति 2008

आलोचनात्मक ग्रंथ

1. अशोक के फूल — हज़ारीप्रसाद द्वेदी
सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली
सातवां संस्करण-1962

2. आदिवासी अस्मिता संकट — रमणिका गुप्ता
सामयिक प्रकाशन
नई दिल्ली-110002
सं.2015

3. आदिवासी कौन — सं. रमणिका गुप्ता

राधाकृष्ण प्रकाशन
सं 2008

4. इको फेमिनिज़्म — डॉ के वनजा
वाणी प्रकाशन
सं 2013

5. उपनिवेश में स्त्री
(मुक्ति -कामना की दस वार्ताएँ) — प्रभा खेतान
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र सं 2003,आवृत्ति 2009

6. औरत अपने लिए — लता शर्मा
सामयिक प्रकाशन
नई दिल्ली-110002
सं 2010

7. औरत इतिहास रचा है तुमने — कुसुम त्रिपाठी
कल्याणी शिक्षा परिषद
नई दिल्ली ,सं 2010

8. औरत केलिए औरत — नासिरा शर्मा
सामयिक प्रकाशन
नई दिल्ली-110002
सं 2003

9. औरत तीन तस्वीरें — शरद सिंह
सामयिक प्रकाशन

नई दिल्ली-110002
सं 2014

10. खुली खिडकिय़ॉ — मैत्रेयी पुष्पा
सामयिक प्रकाशन
नई दिल्ली-110002
सं 2006

11. चुकते नहीं सवाल — मृदुला गर्ग
सामयिक प्रकाशन
नई दिल्ली-110002
सं 2007

12. दलित चेतना ; साहित्य एवं सामाजिक सरोकार — रमणिका गुप्ता
शिल्पायन
नई दिल्ली-110032
सं 2000,आवृत्ति 2010

13. दुर्ग द्वार पर दस्तक — कात्यायनी
परिकल्पना प्रकाशन
लखनऊ-226010
प्र सं 1997

14. दुनिया का सबसे हसीन औरत — संजीव
यात्री प्रकाशन
दिल्ली सं1990

15. नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दे — सं साधना आर्य,निवेदिता मेनन

हिंन्दी माध्यम कार्यांवयन निदेशालय
दिल्ली विस्वविद्यालय, सं 2001

16. नवजागरण और संस्कृति — कमैन्दू शिशिर
आधार प्रकाशन
सं 2000

17. नष्ट लडकी न्ष्ट गद्य — तस्लीमा नसरीन
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली -110002
प्र सं 1995, आवृत्ति 2000

18. परिधी पर स्त्री — मृणाल पाण्डेय
राधाकृष्ण प्रकाशन
नई दिल्ली -110002
सं 1998

19. परिवेश — मोहन राकेश
भारतीय ज्ञानपीठ
नई दिल्ली
दूसरा सं 2011

20. पल्लव — सुमित्रानंन्दन पंत
राजकमल प्रकाशन
आवृत्ति 2008

21. बाज़ार के बीच बाज़ार के खिलाफ — प्रभा खेतान
वाणी प्रकाशन्

नई दिल्ली -110002

सं 2004

22. भारतीय समाज में प्रतिरोध की परंपरा — मैनेजर पांडेय

वाणी प्रकाशन्

नई दिल्ली -110002

सं 2013

23. मन मॉझने की ज़रूरत — अनामिका

सामयिक प्रकाशन

नई दिल्ली-110002

स 2008

24. मेरे साक्षात्कार — मैत्रेयी पुष्पा

किताबघर प्रकाशन

नई दिल्ली

सं 2010

25. शाश्वती — अज्ञेय

राजपाल एण्ड संज़

कश्मीरी गेट

सं1979

26. शृंखला की कडिय़ॉ — महादेवी वर्मा

लोकभारती प्रकाशन

इलहाबाद

सं 2008

27.	सपनों की मंडी	गीताश्री वाणी प्रकाशन नई दिल्ली-110002 सं2013
28.	समकालीन कला-साहित्य सरहदें और सरोकार	रोहिणी अग्रवाल आधार प्रकाशन , सं 2007
30.	समकालीन सिद्धांत और साहित्य	विस्वंभरनाथ उपाध्याय दी मैकामिलन कंपनी ऑफ इंडिया नई दिल्ली सं1976
31.	समकालीन हिन्दी कहानी यथार्थ के विविध आयाम	जानवती अरोरा हिन्दी बुक सेंटर सं1994
32.	समकालीन हिन्दी उपन्यास	डॉ एन मोहनन वाणी प्रकाशन सं 2013 आवृत्ति 2015
33.	साहित्य का परिवेश	सच्चिदानंद नाषनल पब्लिषिंग हाऊस सं 1985

34. साहित्य का समाज शास्त्र — नगेन्द्र
नाषनल पब्लिषिंग हाऊस
सं 1982

35. साहित्य के नए प्रश्न — प्रभाकर क्षोत्रीय
सामयिक बूक्स
नई दिल्ली -110002
सं 2004

36 .सीमंतिनी उपदेश — सं डॉ धर्मवीर
वाणी प्रकाशन
मूल सं 1882
आवृत्ति 2004

37. स्त्री उपेक्षिता — प्रभा खेतान
हिन्दी पॉकेट बूक्स
सं 2002

38. स्त्री संघर्ष का इतिहास — राधाकुमार
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली, सं 2002

39. हिन्दी साहित्य का पुनरालेकन — विद्यानिवास मिश्र
प्रभात प्रकाशन
दिल्ली ,सं 2000

मलयालम पुस्तकें

1. केरलत्तिले स्त्री मुन्नेत्तंगलुडे चरित्रम — सी एस चन्द्रिका, केरल साहित्य अकादमी ,तृच्चूर ,सं 1998
2. आत्मरोषंगलुम व्याकुलतकलुम — सारा जोसफ, ग्रीन बूक्स , तृच्चूर, प्र सं 2009 , आवृत्ति 2013
3. चरित्रवषिकलिले स्त्रीकल — एम जी बिनुकुमार, साहित्य प्रवर्तक सहकरण संघम, नषनल बुक स्टाल ,कोट्टयम, सं 2011
4. पेण्णेषुत्त — सं एन जयकृष्णन, केरल भषा इंस्टिट्यूट, प्र सं 2002 , आवृत्ति 2011
5. भगवदगीतयुडे अडुक्कलयिल वेविक्कुन्नत — सारा जोसफ, लिपि पब्लिकेषंस

पत्र – पत्रिकाएँ

हिन्दी पत्र – पत्रिकाएँ

1. अकार – अकार प्रकाशन
   सिविल लाइंस
   कांपूर

2. आलोचना – अप्रैल – जून 2005

3. नई धारा –अप्रैल –मई 2013

4. मधुमति- सितंबर 2009

5. मलयालम लेखिका विशेषांक – भारतीय अनुवाद परिषद अप्रैल –जून 2009

6. वागर्थ 2012

7. सम्मेलन पत्रिका 2007

8. हंस – मार्च 1999

9. हंस –अप्रैल 2002

10.हंस अगस्त 2007

11.हंस सितंबर 2009

मलयालम पत्र –पत्रिकाएँ

1. अन्वेषणम जनवरी 2008

2. मातृभूमि जून 2001 अप्रैल

3. मातृभूमि जून 2011

4.माध्यम अक्तूबर 2003

5. मलयालम 1178 तुलाँ 15

6 समकालिक केरलम 2003

कोश ग्रंथ

1. अंग्रेज़ी- हिन्दी-मलयालम शब्दकोश,सिसो बूक्स

2.हिन्दी- हिन्दी- अंग्रेसी – मलयालम शब्दकोश् , कंप्यूटेक पब्लिशेस

परिशिष्ट

शोध छात्रा के प्रकाशित शोध लेख

1. आदिम सुगंध की चाह : खुशबू के शिलालेख के विशेष सन्दर्भ में, अनुशीलन, जुलाई 2013, कुसाट

2. चित्रा मुद्गल की कहानियों में प्रतिरोधी चेतना, समकालीन हिन्दी साहित्य और महिला लेखन, नवंबर 2013, काथेलिकेट कॉलेज, पत्तनमतिट्टा

3. समकालीन लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त प्रतिरोध की भाषा, अनुशीलन, जुलाई 2016, कुसाट

प्रपत्र प्रस्तुति

1. प्रतिरोध के सन्दर्भ में : चित्रा मुद्गल की कहानिययाँ, त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी, काथेलिकेट कॉलेज, पत्तनमतिट्टा, सितम्बर 2013

2. समकालीन लेखिकाओं की कहानियों में भाषाई प्रतिरोध, त्रिदिवसीय अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, कुसाट, दिसंबर 2015

3. समकालीन हिन्दी-मलयालम कहानियों में स्त्री प्रतिरोध, द्विदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी, श्री. शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, प्रादेशिक केंद्र पन्मना, फरवरी 2014

4. समकालीन हिन्दी महिला कहानियों में वृद्धों के प्रतिरोध, द्विदिवसीय अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, एस.एस.वी कॉलेज वलयनचिरंगरा, जनवरी 2018.